स्मृत्यादि सिद्धान्त युक्त

वेद सिद्धान्त रहस्य

(हिन्दी भाषा टीका सहित्त)

ग्रन्थ कर्ताः

राजपीपला निवासी

स्वामी शंकरानंदगिरि

प्रकाशक :

राजपीपला निवासी काछीयजाति कुलभूषण

व्रजलाल द्वारकादास

सम्वत् १९९४] शक १८५९

प्रति २०००

॥ वेद सिद्धान्त रहस्य ॥

(हिन्दी भाषा टीका सहित)

ग्रन्थ कर्ता :

राजपीपळा निवासी

स्वामी शंकरानन्दगिरि

*

प्रकाशकः

राजपोपळा निवासि काछीय जातिकुलभूषण

व्रजलाल द्वारकादास ॥

विक्रम संवत् १९९४ ॥

मूल्य १-८-०

अ. सौ. श्रीमती रंगुदेवी

॥ प्रस्तावना ॥

विदर्भ (वराड़) देशके अन्तर्गत रुक्मीकी राजधानी भोजकूट (आकोट) के समीप, हिवरखेड ग्राममें, मैंने वि० सं० १९९३ में, चातुर्मास किया। उस चातुर्मासमें, शान्तिपर्वकी समाप्ति के अनन्तर, एक वैदिक धर्मपिपासु, भरद्वाज गोत्रोत्पन्न आऊवा निवासि, ब्राह्मण आत्माराम शर्मांकी पुत्री, रङ्गुदेवीने ये प्रश्न किये ॥

१. रुद्र, उमा, गणेश, ब्रह्मा, अग्नि, वायु, सूर्य, इन्द्र, वरुण, विष्णु, यम, आदि देवताओंमें सृष्टि आदि कर्ता मुख्य कौन है, और एक ही नाम कितने देवताओंका वाचक है ॥

२. अपनी पुत्रीपर प्रजापति मोहित हुआ, इसका क्या तात्पर्य है ॥

३. ब्रह्माकी उत्पत्ति और स्वरूप कैसा है ॥

४. वर्णाश्रम धर्म वैदिक वा अवैदिक है ॥

५. नरक, स्वर्ग, इस लोकसे भिन्न है, या नहीं ॥

६. वैदिक प्रजाका आचार विचार और आदिनिवास कहाँ था ॥

७. ऋषि वेदमंत्रद्रष्टा थे, तो, उनकी पुत्री, पत्नी मंत्रद्रष्टा थीं कि नहीं ॥

८. मायाका स्वरूप कैसा है, और जीव और ब्रह्म एक है या भिन्न है ॥

९. इन सब प्रश्नोंका उत्तर वेद, स्मृति, पुराणोंसे होना चाहिये ॥

इन नौ प्रश्नोंका उत्तर मैंने दो भाग युक्त वेद सिद्धान्त रहस्य और तीसरे स्मृत्यादि सिद्धान्तमें दिया है। इस ग्रन्थमें रुद्र, उमा, गणेश, प्रणवरूप लिङ्ग, चार प्रलय, विद्या अविद्या, क्षर, अक्षर, मृत्यु, अमृत, विराट्, हिरण्यगर्भ, अव्याकृत, महेश्वरकी समाधि, मुण्डमाला, श्मशान वास, ब्रह्मांड उत्पत्ति और ब्रह्माका स्वरूप, महासृष्टि और कल्पसृष्टि, सूर्यका अन्तर्य्यामी रुद्र, अग्नि, वायु, सूर्यकी उत्पत्ति ब्रह्मासे, मनु, शतरूपा, पुष्कर आप, सत्, असत्, ब्रह्मा, अण्ड, आकाशादिके अनेक अर्थ, अदिति कश्यप, कूर्म, नारायण, विष्णु आदिके अनेक अर्थ, चारवर्ण, चार आश्रम धर्म, अग्नि होत्र, उपासना, आर्योंका निवास,

सरस्वती नदीकी प्राचीनता, माया स्वरूप, जीव ब्रह्मस्वरूप, ब्रह्मलोक आदि बहुत गुप्त शब्दोंका अर्थ है। और स्मृत्यादि सिद्धांतमें भी पूर्वोक्त विषय ह। इस ग्रन्थ के वांचने से वेद, पुराणोंकी जटिल समस्या जानने में आयगी। मैं आशा करता हूँ कि भारतीय गण, वेद सिद्धान्त रहस्यको आदि अन्त तक पठन करेंगे ॥

आश्विन सुद १८
सं. १९९४

निवेदक
स्वामी शंकरानन्दगिरि
श्रेयस्सत्र (नाना मठ) राजपीपला
वाया अंकलेश्वर (गुजरात)

लेखकके पतेपर सी नीचे लिखे हुई हिन्दी भाषामें छपी हुई:पुस्तकें भी प्राप्त हो सकती हैं ॥

	किंमत
१ चतुर्वेदीय रुद्रसूक्त भा. टी.	रू. २–४–०
२ वेद सिद्धान्त रहस्य भा. टी.	रू. १–८–०
३ चतुर्वेदीय संध्या भा. टी.	रू. ०–६–०

सबका डाक खर्च अलग होगा ॥

चारों वेदोंकी रुद्री भा. टीका सहित एक वर्ष के बाद प्रगट की जायगी ॥

वेद सिद्धान्त रहस्य के दूसरे खण्डके अन्तर्गत यतिसंध्या संन्यासियोंके उपयोगी होने से पृथक् छापी है ॥

वेद सिद्धांत रहस्यकी संकेत सूची

ऋग्वेद–ऋग्
ऐतरेय ब्राह्मण–ऐ० ब्रा०
शांखायन ब्राह्मण–शां० ब्रा०
ऐतरेयारण्यक–ऐ० आर०
शांखायन आरण्यक–शां० आर०
कौषीतकि आरण्यक–कौ० आर०
कृष्ण यजुर्वेदीय कपिष्ठल कठशाखा–कपि०–शा०
कृ. यजु. मैत्रायणी शाखा–मै० शा०
कृ. यजु. काठक शाखा–काठक शा०
कृ. यजु० तैत्तरीय शाखा–तै० शा०
तैत्तरीय ब्राह्मण–तै० ब्रा०
चरक ब्राह्मण (काठक गृहसूत्र.)
तैत्तरीयारण्यक–तै० आर०
मैत्रायणी उपनिषद्–मै० उ०
कठोपनिषद्–कठ० उ०
कैवल्योपनिषद्–कै० उ० .

जाबालोपनिषद्-जा० उ०
श्वेताश्वेतरोपनिषद्-श्वे० उ०
आरुणेयोपनिषद्-आरुणे० उ०
शुक्लयजुर्वेदीय काण्वशाखा-काण्व० शा०
शु० यजु० माध्यन्दिनी शाखा-मा० शा०
शतपथ ब्राह्मण-श० ब्रा०
बृहदारण्यकोपनिषद् बृ० उ०
सामवेदीय कौथुमी शाखा-साम० कौ० शा०
ताण्ड्य ब्राह्मण-तां० ब्रा०
ताण्ड्यारण्यक-तां० आर० (छांदोग्योपनिषद्)
षड्विंश ब्राह्मण-ष० ब्रा०
सामविधान ब्राह्मण
सामसंहिता ब्राह्मण
संहितोपनिषद् ब्राह्मण
देवताऽध्याय ब्राह्मण
आर्षेय ब्राह्मण
जैमिनीयारण्यक-जै० आर०
दैवत ब्राह्मण
अथर्वणवेदीय शौनकीय शाखा-अ०

शौनेकेयारण्यकका उपनिषद् भाग मुण्डकोपनिषद् है.
पिप्पलादीयारण्यक का भाग प्रश्नोपनिषद् है
माण्डूक्य आरण्यक का भाग माण्डूक्योपनिषद् है
पिप्पलादीय शाखाका ब्राह्मण गोपथ है
गोपथ ब्राह्मण पूर्वभाग-उत्तर भाग-गो० ब्रा० पू०-उ० ॥

यास्क निरुक्त । कौत्सनिरुक्त । शाकपूणी निरुक्त । बि० सं० ४ की सालमें स्कन्द स्वामी का जन्म है। उद्गी-

थाचार्य का जन्म वि० सं० ५ की सालमें। रावण ब्राह्मणो का जन्म दारुकवन (निजाम राज्य के दारुका वनवासी ज्योतिर्लिंग नागेश्वर) के औंढे ग्राम में वि० सं० १३०० की सालमें हुआ। निरुक्तांके सहित इन भाष्यकारोंका भी प्रमाण है। और सायणाचार्य तो प्रसिद्ध है ही॥

अष्टादश पुराणोंके सहित रामयण, भारत, मनुआदि स्मृतियोंके प्रमाणोंसे स्मृत्यादि सिद्धान्त लिखा गया है, संकेत सूची॥

महाभारत–म० भा०

वाल्मीकी रामायण–वा० रा०

मनुस्मृति–मनु०

स्कन्द पुराणखण्ड, उपखण्ड–स्कन्द पु० २ (६)

॥ सूचीपत्र ॥

प्रथम खण्ड

॥ दूसरा खण्ड ॥

॥ स्मृत्यादि सिद्धान्त सूची (परिशिष्ट)

परमहंस परिव्राजक स्वामीश्री शंकरानन्दगिरि—राजपीपला.

॥ अथ वेद सिद्धान्त रहस्य ॥

निराकारं दिव्यं निगमगदितं क्लेशरहितं,
चिदानन्दं नित्यं किलनिखिललोकैकपितरम् ॥
उमाकान्तं रुद्रं भवविषयभोगैर्विरहितं, नमामि
श्रीकण्ठं परमसुखदं मोक्षसदनम् ॥ १ ॥

ब्रह्माणमीशं परमेष्ठिनञ्च प्रजापतिं पूर्ण-
मनादिदेवम् ॥ दैत्यामरैः सेवितपादपद्मं
नमामि धातारमनेकरूपम् ॥ २ ॥

ॐ तमुष्टुहीति मंत्रस्य भौमऋषिस्त्रि-
ष्टुप्छन्दः ॥ रुद्रोदेवता, सर्वसुखार्थे विनियोगः ॥
ॐ तमुष्टुहिय: स्विषुः सुधन्वाः यो विश्वस्य
क्षयति भेषजस्य ॥ यक्ष्वामहे सौमनसाय रुद्रं
नमोभिर्देवमसुरं दुवस्य ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः
शान्तिः ॥

ऋग्वेद, ५-४२-११ ॥

हे आत्मा, तू रुद्र देवकी स्तुति कर, जिस देवका धनुष बाण सुन्दर है, और जो रुद्र समस्त पापोंका नाशक है, सो ही सम्पूर्ण सुखका स्वामी है। उस रुद्रका यजन कर, और महान् मोक्ष आदि सुखके लिये प्रकाशित है तथा हवियोंसे युक्त नमस्कारोंके द्वारा उस माया प्रेरक–बल–प्राणदाता रुद्रका ध्यान कर॥

इस मंत्रका तीनवार पाठ करने से अष्टाध्यायी रुद्रीका फल मिलता है। ओम् त्र्यम्बकमिति मंत्रस्य वसिष्ठ ऋषिरनुष्टुप्छन्दः। रुद्रो देवता पूर्ण आयु-आदि सुखार्थे विनियोगः॥

ॐ त्र्यबकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्॥
उर्वारुकमिवबन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात् ॥
ॐ शान्तिः ३ ॥ ऋग्० ७–५९–१२॥

अव्याकृत, सूत्रात्मा, विराट् इन तीनोंकी अधिष्ठातृ देवी अम्बिका है, सोही त्र्यम्बका माता है। इस शक्तिका स्वामी त्र्यम्बक है, और अग्नि (ब्रह्मा) भूलोकवासी, वायु (विष्णु) अन्तरिक्षवासी, सूर्य (महेश) द्युलोकनिवासी, इन तीन नेता (नेत्र) रूप महिमाका पिता (पालक) चतुर्थ रुद्र है, तथा जगत्की उत्पत्ति, स्थिति, लय, अनुग्रह, तिरोधान, ये पाँच सुगन्धिमय कीर्ति विस्तृत है, और उपासकोंकी समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला, अणिमा–आदि–ऐश्वर्यवर्द्धक प्रपितामह त्र्यम्बकका हम, यज्ञ, उपासना, ज्ञानके द्वारा यजन करते

हैं। जैसे खर्बूजा, फूट, काँकडी, आदि फल अपने उत्पत्ति स्थानसे भिन्न होकर फिर नहीं बेलमें लगते हैं, तैसेही वह रुद्र हमको जन्म मरणके बन्धनरूप मृत्यु से छुडावे, तथा अपनी सायुज्य मुक्ति देकर अजर अमर करे, पुनरागमनके चक्रमें न डाले, यही हमारी वारंवार प्रार्थना है ॥

अम्बी वैस्त्रीभगनाम्नीः॥ तस्मात् त्र्यम्बकः॥

मै० शाखा १-१०-२० ॥ काठक शाखा ३६-१४ ॥

सर्वैश्वर्य्यसम्पन्न नामवाली अम्बी ही स्त्री है, इसलिये स्त्री और अम्बी मिलकर, त्र्यम्बका है । सकारका लोप होकर त्री-अम्बका रूप बनगया, और त्र्यम्बक सिद्ध हुआ, जो स्त्री अम्बिकाका स्वामी होवे सो ही त्र्यम्बक रुद्र है ॥

प्रबभ्रवे वृषभायेति मंत्रस्य गृत्समद ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः॥ रुद्रो देवता॥ सुखार्थे विनियोगः॥

प्रबभ्रवेवृषभायश्वितीचे महोमहीं सुष्टुतिमिरयामि ॥ नमस्या कल्मलीकिनं नमोभिगृणीमसित्वेषं रुद्रस्य नाम॥ ॐ शांतिः ३॥

ऋग्० २-३३-८ ॥

हे प्रणवस्वरूपी, निर्मल शुद्ध स्वरूपवाले उपासकोंके मनोरथ पूर्ण करनेवाली प्रणवकी चतुर्थमात्राको ध्यानमें धारणकर अकार, उकार, मकारको तुरीयमें लय करके श्रेष्ठ स्तुतिरूप प्रणवका हम जपरूप उच्चारण करते हैं । हे स्तोतागण तुम

नमस्कार और हवियोंके द्वारा स्वयंप्रकाशी रुद्रका यजन करो, हम उपासक उसके प्रसिद्ध तेजस्वी ॐके सहित गायत्री मंत्ररूप नामका जप करते हैं ॥

स्थिरेभिरङ्गैरिति मंत्रस्य गृत्समद ऋषि स्त्रिष्टुप्छन्दः ॥ रुद्रो देवता, रुद्रस्वरूपज्ञानार्थे विनियोगः ॥ स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रो बभ्रु शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः ॥ ईशानादस्य भुवनस्य भूरेर्नवउयोषद्रुद्राद सूर्यम्। ॐशांतिः३ ॥

ऋग्० २-३३-९ ॥

हे रुद्र, तू निर्मल प्रकाशित नक्षत्रमय अलंकारोंसे अति सुन्दर शोभा पाता है, और हे अनन्तरूपधारी रुद्र, तू उमाके नित्य अनन्त ज्ञानरूप अवयवोंसे युक्त है, तथा रुद्र इन समस्त भुवनोंका उत्पादक, रक्षक, संहारकर्त्ता स्वामी है, और उमा अनन्त शक्तिमय बल, ईश्वर रुद्रसे भिन्न नहीं है, इसलिये ही रुद्र नित्य ज्ञानस्वरूप अद्वितीय है ॥

ऋतं सत्यं परं ब्रह्म पुरुषं कृष्ण पिङ्गलं॥ ऊर्ध्वरेतं विरूपाक्षं विश्वरूपाय वै नमः ॥

तै० आर० १०-१२-१ ॥

जो उत्तम रुद्र चेतनघन व्यापकस्वरूप ऋत है और सत्यरूप उमा है, सोही चेतन ऋत, और सत्यज्ञानकी अभेद अवस्थाही पुरुष—महेश्वर है, उसके कण्ठमें, कृष्ण—अज्ञानात्मक

माया है और वामभागमें पिङ्गल-सुवर्ण आभूषित अम्बिका है। उस रुद्रका चिदाभास वीर्य किसी भी अवस्थामें परिणामको प्राप्त न होता हुआ रुद्र ही स्वरूप है; सो ही रुद्र ऊर्ध्वरेता है। विविध रूपोंसे व्यापक अग्नि, वायु-सोम, सूर्य ही जिसके नेत्र हैं, वे ही तीन नेता चराचर रूपसे व्यापक हैं। इन अकार, उकार, मकार रूप अग्नि, वायु, सूर्यको धारण करनेवाले विवर्तरूपसे जगत्स्वरूप रुद्रके लिये मेरा वारंवार प्रणाम हो ॥

सर्वो वै रुद्रस्तस्मैरुद्राय नमो अस्तु ॥ पुरुषो वै रुद्रः सन्महो नमो नमः॥ विश्वं भूतं भुवनं चित्रं बहुधा जातं जायमानं च यत् ॥ सर्वोह्येष रुद्रस्तस्मै रुद्राय नमो अस्तु ॥

तै० आर० १०-१६-१ ॥

जो रुद्र अम्बिकापति है सोही जीवरूपसे सब शरीरोंमें विराजमान है, उस रुद्रको मेरा प्रणाम हो, और जो सूर्यमण्डलमें विराजमान है उस रुद्रको मेरा प्रणाम हो, जो ब्रह्मारूप पुरुष है उस रुद्रके निमित्त नमस्कार हो, जो ब्रह्मा सत् स्वरूप है सोही विराट्रूप है। उस विराट्मय रुद्रको नमस्कार हो। जो सब जडात्मक स्थावर है और जो सब प्राणिमात्र है, इस प्रकार चराचर रूपसे विचित्र जो ब्रह्माण्ड है उसमें जो जगत् पहिले उत्पन्न हुआ, तथा जो वर्तमान जगत् है, और जो उत्पन्न

होयगा, सो सवही प्रपंच यह रुद्र ही है, जैसे, जलरूप ही बुद्बुदा है, जलसे भिन्न बुद्बुदा कोई वस्तु नहीं है; तैसेही विवर्तरूप प्रपंच अधिष्ठान रुद्रसे भिन्न कोई वस्तु नहीं है, जैसे रज्जुमें सर्पका विवर्त है, तैसेही अधिष्ठान महेश्वरसें अधिष्ठित माया-मय जगत् विवर्त है। उस सर्वस्वरूप रुद्रको मेरा वारंवार प्रणाम हो॥

कद्रुद्राय प्रचेतसे मीढुष्टमायतव्यसे॥ वोचेमशं तमꣳ हृदे॥ सर्वो ह्येष रुद्रस्तस्मै रुद्राय नमो अस्तु॥

तै० आर० १०-१७-१॥

जो प्रशंसनीय रुद्र है, उस अनन्त शक्तिज्ञानस्वरूप रु उपासकोंके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले, अति वृद्ध—अनादि, सूर्यमण्डलमय हृदयमें वास करनेवाले, और प्रत्येक प्राणि-योंके हृदयमें वसनेवाले उस अनन्त ज्ञानशक्तिस्वरूप रुद्रके लिये सुखरूप मंत्रोंको पठन करते हैं, यह समस्त रूपधारी रु है, उस रुद्रको मेरा वारंवार प्रणाम हो॥

असौ वा आदित्यो हृदयं॥

श० ब्रा० ९-१-२-४०॥

यह सूर्य ही हृदय है॥

शरीरं हृदये॥ तै० ब्रा० ३-१०-८-७॥

देह ही हृदय में स्थित है॥

भूर्भुवः स्वरोंमहन्तमात्मानं प्रपद्ये ॥ हिरण्यमयंतद्देवानाꣳ हृदयानि ॥ प्रचेतसे सहस्राक्षाय ब्रह्मणः पुत्राय नमः ॥ सहस्र बाहुर्गौपत्यः स पशूनभिरक्षतु ॥ मयि पुष्टिं पुष्टिपतिर्दधातु ॥ आकाशस्यैष आकाशो यदे-तद्भाति मण्डलं ॥ यज्ञेन याजयित्वा ॥

सामवेदीय मंत्र संहिता ब्राह्मण, द्वितीय प्रपाठक, कण्डिका ३ ॥

जो चतुर्थ मात्रारूप रुद्रके सहित मकार सूर्य, उकार वायु, अकार अग्नि, ये चारों सब देवताओंके हृदय हैं। मण्डल-मध्यवर्ती उस तुरीय, महाव्यापक तेजोमय रुद्रको मैं अभेद रूपसे प्राप्त होता हूँ, और अनन्त शिर, नेत्र, हाथ, पगवाले किरणसमूहपालक, अतिज्ञानस्वरूप सूर्यस्थ ब्रह्माके पुत्र रुद्रको प्रणाम करता हूँ। वह रुद्र उपासकोंके पशुओंकी सर्वत्र रक्षा करे। और मेरेमें ऐश्वर्यको तथा ऐश्वर्यके स्वामीपनेको स्थापन करे। जो यह सूर्य प्रकाशित है, सोही यह मण्डल आकाशका भी आकाशरूप श्मशान है, इस श्मशानमें रुद्र स्थित है, यज्ञके द्वारा हम यजन करके रुद्रको प्रसन्न करें ॥

ये यज्ञेषु प्रोक्तव्यास्तेषां दैवत उच्यते ॥

देवताध्याय ब्राह्मण २ ॥

जिन देवताओंको अश्वमेध सोमयज्ञादियोंमें आहुति दी जाती है, उनका नाम देवता है ॥

ॐ अस्य शान्ति मंत्रस्य अथर्वाङ्गिरस ऋषिः॥ त्रिष्टुप्छन्दः॥ ज्ञानस्वरूपी रुद्र देवता, सर्वसुखप्राप्त्यर्थे विनियोगः॥

ॐ यो रुद्रो अग्नौ यो अप्सु य ओषधिषु यो वनस्पतिषु॥यो रुद्रो विश्वा भुवना विवेश-तस्मै रुद्राय नमो अस्तु देवाः॥ ॐ शान्तिः ३॥

काठक शाखा, ४०-५।

जो रुद्र—अव्याकृत, हिरण्यगर्भ, विराट्रूप जलोंमें, जो रुद्र अग्नि, वायु, सूर्यरूप अग्निमें, जो रुद्र पुष्पयुक्त फलवाली औषधिमात्रमें, जो रुद्र पुष्परहित फलवाले वट, अश्वत्थ, उदम्बरादि वनस्पतियोंमें व्यापक है, जिस मायिक महेश्वरने समष्टिस्वरूप ब्रह्माको रचा उस ब्रह्माने ब्रह्माण्डमें अनेक शरीरोंको रचा, फिर व्यष्टि शरीरोंमें चेतनरूपसे प्रविष्ट हुआ, वे सब ब्रह्माकी विभूतिरूप देवता, उस परम पिता रुद्रको प्रणाम करते हैं, मेरा भी उस रुद्रके लिये वारंवार नमस्कार हो॥

रुतस्य॥ मा. शा. १६। ४९॥ कपि. शा. २७। ६॥ काठक शा. १७। १६॥ मै. शा. २। ९। ९॥ ऋतस्य॥ काण्व शा. १७। ४९॥ रुद्रस्य॥ तै. शा. ४। ५। १०। १॥ रुत-ऋत, पद भी रुद्रका पर्य्यायवाची है॥

रुत् चेतनघनमें र—अर्धाङ्गना रूपसे रमण करनेवाली नित्यज्ञानमाता उमा है। उमा अनन्ताकाश ज्ञानशक्ति है,

और रुद्र अनन्ताकाशव्यापी है। जैसे अग्नि और अग्निकी दाहक शक्ति है, तैसेही रुद्र और रुद्रकी उमाशक्ति है। यही ज्ञानस्वरूप रुद्र है। सर्व शक्तिपूर्ण ही रुद्र सर्वाङ्गस्वरूप श्वेतवर्ण है, किन्तु विकारी मायाको धारण करनेसे नीलकण्ठ है, और महाप्रलयमें माया निर्विशेष रूपसे रहती है, इसलिये रुद्र शितिकण्ठ है॥

अचिन्त्यमव्यक्तमनन्तरूपं शिवं प्रशान्तममृतं ब्रह्मयोनिम्॥ तमादिमध्यान्तविहीनमेकं विभुं चिदानंदमरूपमद्भुतम्॥ उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तं॥ ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं समस्त साक्षिं तमसः परस्तात्॥ कै० उ० ६-७॥

अशुद्ध मनसे अगम्य, अप्रकट अनन्त सुखरूप सर्व उपाधि शून्य अखण्ड व्यापक धाम, वह आदि, मध्य, अन्तरहित एक अद्वैत ज्ञानस्वरूप, आनन्दघन निराकार, महेश्वर है। उमाके सहित परमेश्वर समर्थ है, विराट्, हिरण्यगर्भ, अव्याकृत, ये जगत्के कारण तीन नेताही तीन नेत्र जिस सृष्टिसंकल्पमें स्थित हैं, वह संकल्प महेश्वर, संकल्पी आधारमें आश्रित है, सोही भाग नीलकण्ठ है। विकारी बीज सत्ताको एक भागमें धारण करता हुआ भी, इसके सब धर्मोंसे रहित नित्य अनन्त ज्ञानस्वरूप है, इसप्रकार जो संन्यासी विचारकर जानता है,

वह मुनि, अज्ञानसे परे सबका कारण साक्षीरूप रुद्रको प्राप्त होता है ॥

तुरीयमद्भुतं ॥ ऋग्० १ । १४२ । १० ॥

चतुर्थ महेश्वर ही न उत्पन्न हुआ, उत्पन्न हुआसा प्रतीत होवे सोही अद्भुत है ॥

नेत्राः ॥ मा० शा० ९ । ३६ ॥

नेत्रका अर्थ नेता, स्वामी है ॥

उमाँ हैमवतीं ॥ जै० आर० ४ । १० । १२ ॥

सर्व अज्ञान रहित प्रशान्त तुरीय रुद्रकी पत्नी उमा नित्य स्वयंप्रकाशी ज्ञान स्वरूप है ॥

नमो हिरण्यबाहवे हिरण्यपतयेऽम्बिका पतय उमापतये नमो नमः ॥ तै० आर० १०–१८–१

तेजोमय सूर्यमण्डलके स्वामीको, और हिरण्यगर्भ देहधारी ब्रह्माके पिता रुद्रको नमस्कार हो। विराट्, हिरण्यगर्भ, अव्यक्त, इन तीन भागोंकी समष्टि शक्ति सृष्टिसंकल्प है, उस संकल्प भगरूप व्यापक शक्तिकी अधिष्ठातृ देवी ही अम्बिका है, उस जगदम्बाके स्वामी मायिक संकल्पीको, तथा नित्य अखण्ड ज्ञानमाता उमाके स्वामी रुद्रको वारवार प्रणाम करता हूँ ॥

आत्मा वै यज्ञः ॥ श० ब्रा० ६–२–१–७.

यज्ञो भगः ॥ मा० शा० ११–७.

त्रिवृद्धि यज्ञः ॥ श० ब्रा० १–१–४–२३.

आत्माही यज्ञ है, व्यापक आत्माही भग है, यह भगरूप अम्बिकादेवी तीनरूपसे जगत्‌की वृद्धि करती है ॥ भगवः ॥ मा. शा. १६ । ९ ॥ हे भगवन्, जो भगरूप ऐश्वर्य्यका स्वामी है सो ही भगवान् महेश्वर है । निर्विशेष बीज सत्ताकी देवता उमा है, और सविशेष अवस्थाकी उमाही अम्बिका नामसे देवता है । निर्विशेष सविशेष बीजसत्तासे रहित तादात्म्य ज्ञान स्वरूप है, सोही रुद्र निर्विशेष बीज शक्तिको धारण करनेवाले बिन्दुरूप उमा महेश्वर है, उमाकी बीजशक्ति ही महाप्रलयमें महेश्वरका शितिकण्ठ है, शिति शब्दका अर्थ श्वेत और नील है । जो सृष्टिकालमें विकारी थी सो ही महाप्रलयमें निर्विकारीके समान रहती है सो ही शितिकण्ठ है, यही बलशक्ति सृष्टिके कुछ पहिले, महेश्वर अधिष्ठानके एक भागरूप कण्ठमें विकारी रूपसे भासती है, इससे श्वेतकण्ठ नीलकण्ठ हो जाता है ।और अनन्त ज्ञान समुद्र उमा है, उस अनन्तशक्ति समुद्रके एक भागमें जगत्‌का कारण बीज शक्तिरूप विष है, इस विषकी सत्ता अनन्तज्ञान राशि समुद्रसे भिन्न नहीं है, तथा ज्ञानशक्ति चेतनरुद्रसे भिन्न नहीं है, अनन्तज्ञान स्वरूप रुद्रने एक विकारी माया विषको जिस भागमें धारण किया है, सो ही भाग, महाप्रलयमें शितिकण्ठ है, और सृष्टिमें नीलकण्ठ है । यह उमाकी विकारी दृष्टि न होती तो, अनन्त ज्ञानस्वरूप रुद्रकी महिमाको कौन अनुभव करता, और कराता । इस अनुभवके द्वारा ही अनन्त ज्ञानस्वरूप सुखरूप है, और एक विकारीदृष्टिका विकासही संसार दुःखरूप है॥

नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च ॥

कपि० शा० २७-३.

जगत्‌रूप विकारी माया विषको धारण करनेवाले, नील-कण्ठके लिये और जगत्‌व्यापाररहित महाप्रलयमें स्थित बीज-शक्ति धारण करनेवाले शितिकण्ठ महेश्वरके लिये मेरा वारंवार प्रणाम है ॥

बीजशक्तिको धारण करनेवाला महाप्रलयमें जो ० बिन्दुरूप उमामहेश्वर था, सोही बिन्दुप्रलयके अन्त और विश्वरचनाके कुछ पूर्व विकारी शक्तिके द्वारा ज्ञानस्वरूप ० बिन्दु ही सृष्टिसंकल्पी और संकल्प ज्ञानक्रिया हुआ।

• संकल्पी महेश्वर है ॥

◡ संकल्प क्रियाकी देवी अम्बिका है॥

ॅ इस अर्द्धमात्रा ज्ञानरूप अम्बिका देवीकी, जड संकल्प अज्ञान क्रिया चेतन संकल्पीके द्वारा (मैं एक चेतन अपनी अम्बिका ज्ञानशक्तिके सहित हूँ, इस ज्ञानकी एक अज्ञान शक्तिके द्वारा अनन्तरूप धारण करनेवाला ब्रह्मा होऊँ) शब्दरहित अस्पष्ट अव्याकृतके रूपमें प्रगट हुई। अर्द्ध मात्रारूप अम्बिका देवीकी त्रिविध अव्याकृत योनिमें अधिष्ठान मायिक महेश्वर ही बहुभावसे अधिष्ठित हुआ चिदाभास है, यही चिदात्मा, अव्याकृत क्षेत्रसे ढका हुआ, अपनेको क्षेत्रज्ञ मानता है। मैं एक ही मायाका अधिष्ठान हूँ, और इस मायाके द्वारा बहुत रूपधारी अधिष्ठित चिदाभास क्षेत्रज्ञ होऊँ।

जो वर्तुलाकारके ऊपर ज्योति है सोही तुरीय अधिष्ठान महेश्वर है, जो महेश्वरका चिदाभास वर्तुलाकार अव्याकृतसे ढका है सोही समष्टि क्षेत्रज्ञ पुरुष ब्रह्मा है। मकार अव्याकृत, उकार हिरण्यगर्भ, अकार विराट् है ॥
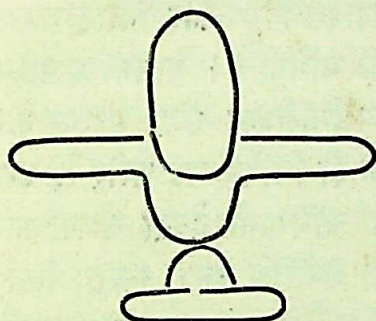
यही चिह्न पाँचोंका समष्टिस्वरूप है ॥

यो वेदादौ स्वरः प्रोक्तो वेदान्ते च प्रतिष्ठितः ॥ तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः स महेश्वरः ॥ तै० आर० १०–१०–२४.

जो प्रणव वेदके आदिमें है, और उपनिषद्के अन्तमें स्थित है। जिस प्रणवका (प्र) विशेष (कृतिः) जाल, अकारको उकारमें, उकारको मकारमें, अव्यक्तको अर्द्धमात्रामें लय करे, उस लीन हुए प्रणवके परे जो बिन्दु है सोही महेश्वर है ॥

एष ते रुद्र भागः सहस्वस्राम्बिकया तञ्जुषस्व स्वाहा ॥ एषते रुद्र भाग आखुस्ते पशुः ॥ काण्व शा० १–३–८–१

हे रुद्र, आपका यह भाग है, इस भागको अपनी वहिन अम्बिकाके साथ सेवन करो। हम स्वाहा शब्दके द्वारा आहुति देते हैं सोही भागको स्वीकार करो। हे रुद्र, आपका यह भाग है, सो ही आपका आखु-चोर पशु है। अर्द्धमात्रारूप अम्बिका स्वयं ही त्रिविध, अव्यक्त मकार, हिरण्यगर्भ उकार, विराट् अकार रूपसे प्राप्त होती है सोही स्वसा भगिनी है। ज्ञानशक्ति वहिन और चेतन भाई है। यही अर्द्धनारीश्वर उमा महेश्वर है। उमाका मैल एक विकारी शक्ति ही त्रिविध जड शरीर है, उस जड प्रणवमें रुद्रका चिदाभास अभिमानी देवता गणपतिरूप पशु है, यही समष्टि पशु व्यष्टि शरीरोंके द्वारा खाता, पीता, देखता है, इसलिये ही पशु है। जैसे तलवार म्यानसे ढकी रहती है, तैसेही प्रणव म्यानमें तुरीय महेश्वर छिपा है, इस हेतुसे ही प्रणव आखुरूप चोर है। ओंकारयुक्त स्वाहाकारके संग ही जो आहुति देनेमें आती है, सो ही उमामहेश्वरकी प्रसन्नता करनेवाला भाग है ॥

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतं ॥ पतिं पतीनां परमं परस्ता द्विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥ न तस्य कार्यं करणञ्च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते ॥ परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञान-बल क्रिया च ॥ न तस्य कश्चित्पतिरस्ति लोके

न चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम् ॥ सकारणं करणाधिपाधिपो न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः ॥ श्वे० उ० ६-७-८-९.

वह ब्रह्मा आदि ईश्वरोंका भी उत्तम महेश्वर है सो ही इन्द्रादि देवताओंका भी परम पूज्य देवता है, विराट् अभिमानी आदि प्रजापतियोंका भी प्रजापति है, अव्यक्त से पर तुरीय भुवनोंके स्वामी पूजनीय रुद्रको हम जानते हैं। उस तुरीय रुद्रके कार्यरूप विराट् देह, प्राणरूप अमृत हिरण्यगर्भ देह, और अव्याकृत देह भी नहीं है, उसके समान और उससे अधिक भी दूसरा कोई देखनेमें तथा सुननेमें नहीं आता है, उस रुद्रकी अनन्तशक्ति अनेक प्रकारकी सुननेमें, और अनुभव में आती है। रुद्रकी वह पराशक्ति स्वतःसिद्ध अनादि ज्ञान उमा है, उस उमाकी एक जगत्बीज शक्ति ही वल—अव्यक्त, क्रिया—हिरण्यगर्भ, और कार्य विराट् है। इस ब्रह्माण्डमें उस रुद्रका न कोई स्वामी है, उसके ऊपर आज्ञा चलानेवाला कोई नहीं है, वह निराकार है उसका न कोई चिन्ह है—जिसको चर्म चक्षुसे देख सकें। सोही सबका कारण और अधिदैव अध्यात्म इन्द्रियोंका स्वामी है, और उसको उत्पन्न तथा पालन करनेवाला कोई नहीं है ॥

यस्तूर्णनाभ एव तन्तुभिः प्रधानजैः स्वभावतः ॥ देव एकः स्वमावृणोति स नो दधातु ब्रह्माव्ययम् ॥ श्वे. उ० ६-१० ॥

जैसे मकड़ी अपनेसे तन्तु जालको उत्पन्न करके फिर उस जालेमें छिप जाती है, तैसेही प्रलयसृष्टिधर्मयुक्त अनादि सान्त प्रवाहरूप स्वभाववाली बीज सत्ताको अव्यक्तके स्वरूपमें प्रगट किया, जो महेश्वर ही चिदाभास रूपसे अव्यक्तमें प्रवेशकर, उस अव्याकृतके कारण, क्रिया, कार्यमय मुख्य समष्टि धर्मोंको तादात्म्य रूपसे मानकर अपनेको आच्छादित करता है, सोही अद्वितीय देव, हम व्यष्टि देह उपाधिक जिज्ञासुओंको सब प्रकारके परिणाम रहित व्यापक स्वरूपमें धारण करे। अर्थात् मायाके आवरणको हटा दे, जिससे स्वस्वरूपकी प्राप्ति हो॥

एकोदेवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्व भूतान्तरात्मा॥ कर्माध्यक्षः सर्व भूताधिवासः साक्षी चेताः केवलो निर्गुणश्च॥

श्वे० उ० ६-११॥

एकही रुद्र उत्पन्न होनेवाले सब पदार्थोंमें अतिसूक्ष्म सर्व व्यापी है, सब प्राणधारीयोंका मन उपाधिक जीव है, और कर्मोंका स्वामी, सर्वभूतरूप स्थावर जंगममें, सामान्य विशेष स्वरूपसे निवास करता है, वही सबका साक्षी उपाधिरहित केवल चेतन ज्ञानस्वरूप निराकार है। बीज सत्ताकी दो अवस्था, एक स्थूल कार्य, मृत्यु आधार है, दूसरी सूक्ष्म क्रिया अमृत आधेय है, जहाँपर अमृत प्राणको जड कार्यने पूर्णरूपसे ढाँक लिया है, वेही पदार्थ स्थावर हैं, और प्राणके सामान्य रूपसे

चेतन भी सामान्य है। और जहाँ पर प्राणशक्ति अपने कार्य आधारको दबाकर विशेषरूपसे प्राणक्रिया है, तहाँपर ही सामान्य चेतन विशेष जीव रूपसे प्रकाशित हो रहा है। आवरणात्मक व्यष्टि समष्टि स्थूल देह ही अविद्या है। और प्रकाशात्मक व्यष्टि समष्टि सूक्ष्म शरीर ही विद्या है। बीज-शक्तिकी विद्या अविद्या भेदसे ही, एक रुद्र अबीजी होने पर भी, बीजी नामको धारण करके, अनेक नामसे भास रहा है ॥

एकोवशी निष्क्रियाणां बहूनामेकंबीजं बहुधा यः करोति ॥ तमात्मस्थं येऽनुपश्यंति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥

श्वे० उ० ६-१२ ॥

जो एक अधिष्ठान महेश्वर, एक अधिष्ठित बीज शक्तिको त्रिविध भेदसे बहुत करता है, और क्रियारहित उन जड असंख्य पदार्थोंको वशमें करके हृदयमें स्थित है, उस बुद्धि-गुहामें रहनेवालेको, जो ज्ञानी अनुभव रूपसे साक्षात करते हैं, उन ज्ञानियोंको तुरीयस्वरूप अक्षय सुख प्राप्त होता है, और दूसरे शिश्नोदरपरायणोंको सुख नहीं मिलता है ॥

छन्दांसि यज्ञाः क्रतवो व्रतानि भूतं भव्यं यच्च वेदा वदन्ति ॥ अस्मान्मायीसृजते विश्वमे-तत्तस्मिँश्चान्यो मायया सन्निरुद्धः ॥

श्वे० उ० ४-९ ॥

सप्त छन्दात्मक वेद, हवियज्ञ, अश्वमेधादिक पशुयज्ञ, चान्द्रा
यण आदि व्रत, भूत, भविष्यत् और जो वर्तमान जगत् है, जि
सबका वेद कथन करता है उनको सम्पूर्णको महेश्वर इस माया
रचता है, और उस मायामें दूसरा अधिष्ठित पुरुष माया
ढका है ॥

मायान्तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरं।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ॥

श्वे० उ० ४-१०।

मायाको ही प्र—अति, कृति—जाल जाने और जाल
स्वामीको महेश्वर जाने। उस महेश्वरकी मायाके अव्याकृ
सूत्रात्मा, विराट्, समष्टि अङ्गमय स्वरूपोंसे, यह सब व्यष्टि
जगत् व्याप्त है ॥

यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येको यस्मिन्निदं
संचतिचैति सर्वम् ॥ तमीशानं वरदं देवमीड्यं
निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति ॥

श्वे० उ० ४-११।

जो एक रुद्र प्रत्येक त्रिविध समष्टि कारणका अधिष्ठा
रूपसे स्थित है, जिसमें यह सब समष्टि व्यष्टि जगत् संहारकाल
लय होता है, और उसीसे यह सब सृष्टिकालमें विविध नाम
वाला जगत् उत्पन्न होता है, उस मोक्षदाता स्तुतियोग्य
देवको स्वानुभवरूपसे साक्षात करके, इस पुनरावृत्ति रहि
शान्तिको पाता है ॥

योदेवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रोमहर्षिः ॥ हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥

श्वे० उ० ४-१२ ॥

जो ज्ञानस्वरूप सर्वज्ञ समष्टि व्यष्टि जगत्‌की उत्पत्ति पालन-कर्ता, सबका स्वामी है उस रुद्रने सब देवताओंकी उत्पत्तिके पहिले समष्टि पुरुषको प्रगट किया। उत्पन्न होनेवाले ब्रह्माजीको देखो जिनके द्वारा हम सब प्रगट हुए हैं। रुद्र ही ब्रह्मारूपसे सृष्टि रचता है, सो रुद्र देव हमको उत्तम ज्ञानात्मक बुद्धिसे संयुक्त करे ॥

य एको जालवानीशत ईशनीभिः सर्वाँ-ल्लोकानीशत ईशनीभिः ॥ य एवैक उद्भवे सम्भवे च य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्य इमाँल्लोकानी-शत ईशनीभिः ॥ प्रत्यङ्जनाँस्तिष्ठति सञ्चु-कोपान्तकाले संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः ॥

श्वे० उ० ३-१-२ ॥

जो एक अद्वितीय जालवान् महेश्वर मायाजालकी त्रिविध शक्तियोंके द्वारा समस्त ब्रह्माण्डोंका शासन करता है, उन प्रत्येक लोकोंके शासक अधिदैवरूप प्रजापतियोंका भी शक्तियोंके द्वारा

प्रभुत्व करता है, अर्थात् अव्यक्तादि शक्ति अधिष्ठानमें स्थित हैं, उन शक्तियोंकी अधिदैव रूप देह ही विभूति हैं, उन शरीरोंमें ब्रह्माही चेतन देवतारूपसे विराजमान है, और अग्नि इन्द्र सूर्यादि विभूतियोंके सहित समष्टि पुरुष ब्रह्माजी महेश्वरका ही स्वरूप है, इसलिये ही सब अधिष्ठानमें अधिष्ठित हैं। जो एक रुद्र ही ब्रह्मारूपसे आविर्भाव होता है, सो ही रुद्रात्मक ब्रह्माजी कल्प सृष्टि, पालन और संहार करते हैं। जो ज्ञानी व्यष्टि समष्टि चेतनका स्वरूप इस महेश्वर को ही जानते हैं वे अमर होते हैं, जैसे लोहपिण्डमें जो दाहक शक्ति है, सोही अग्निकी है। तैसे ही त्रिविध समष्टि देहमें जो तादात्म्ययुक्त चेतन ब्रह्मा है, सोही रुद्रस्वरूप है। इसलिये ही उत्पत्ति–पालनमें रुद्र ही कारण है॥

ब्रह्म ब्रह्माऽभवत्स्वयं ॥ तै. ब्रा. ३–१२–९–१ ॥

ब्रह्मवास्तोष्पतिं ॥ ऋग् १०–६१–७ ॥

ब्रह्म आपही ब्रह्मा हुआ ॥ प्रणव घरका स्वामी (ब्रह्म) रुद्र है। एक ही अद्वितीय रुद्र सर्वत्र विराजमान है, और रुद्रसे भिन्न दूसरेके लिये कुछ भी अस्तित्व नहीं है। जो कुछ भी द्वैत प्रतीत होता है, सो सब ही जलतरङ्गवत् नाना दुःखरूप अन्तवाली माया नटी, एक परम सुखमय अनन्त ज्ञानस्वरूप रुद्रकी महिमाको प्रगट करती है। जो मायिक अपनी मायाकी त्रिविध शक्तियोंके द्वारा विशेष स्वरूपसे, शक्तियोंके ऊपर और उनकी विभूतियों पर अध्यक्षपना करता है, सो ही समस्त प्राणियोंकी

बुद्धिगुहामें अङ्गुष्ठके पर्व समान स्थित है, और प्रलयके समय कोपमें भरकर सब ब्रह्माण्डका नाश करता है, फिर प्रलयके पीछे सब प्राणियोंको, प्रलय-पूर्व-सृष्टिके कर्मानुसार रच कर, उनका पालन करता है ॥

यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनं ॥
मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्थावेद यत्र सः ॥
कठो. २-२५ ॥

जिस रुद्रका (ब्रह्म) अव्याकृत कारण और (क्षत्रं) हिरण्यगर्भ सूक्ष्मदेह, ये दोनों भात हैं। और जिसका विराट् स्थूल देह कढ़ी है, सोही रुद्र जिस महाप्रलयमें, और समाधिमें स्थित है, इस प्रकार (कः) ब्रह्मा ही जानता है। क्योंकि समष्टि कारण, क्रिया, कार्य देहका स्वामी ब्रह्मा ही अपने तुरीय स्वरूप महेश्वरको जानता है। उस पितामहके द्वारा वेद प्रगटे, उन वेदोंसे हम भी जानते हैं। ब्रह्माके एक दिनमें चौदह मनु होते हैं और एक मनुकी आयु (इकहत्तर चौकडी) तीस करोड सडसठ लाख, वीश हजार वर्षकी है, इस प्रकार सब मनुओंकी आयु है। प्रत्येक मनुओंके वीच जो अन्तर है, सोही आवान्तर-खण्ड प्रलय सत्ताईस हजार वर्षकी है। इस प्रलयमें केवल भूमि जल मग्न होती है, और सूर्य आदि सब पदार्थ शेष रहते हैं। ब्रह्माके रात दिनका नाम कल्प है। जब ब्रह्माके दिनका क्षय और रात्रिका समय आता है, तब भूमि जलमें, जल अग्निमें, अग्नि वायुमें, वायु अन्तरिक्षमें, आकाश वाणीमें, वाणी मनरूप सोममें, सोम-

कार्यं अमृतक्रिया में, क्रियात्मक सूत्रात्मा देह अव्याकृत कारणमें लय होती है। यही ब्रह्माका अव्याकृत गुहामें सोना है, जैसे जाग्रतकी सब इन्द्रियें वाणीमें, वाणी मनमें, व्यष्टि मन बुद्धिमें, बुद्धि प्राणमें, यही सुषुप्ति अवस्था है, तैसेही पंचभूत विराट्में॥

मृत्युर्वा अग्निः ॥ कपि. शा. ३१-१ ॥

अग्निर्वै विराट ॥ कपि. शा. २९-७ ॥

अन्नं वै विराट् ॥ मै. शा. १-६-११ ॥

मृत्यु ही व्यापक विराट् वाणी है, विविध रूपसे व्यापक विराट् है, विराट् हिरण्यगर्भका अन्न है। विराट् वाणी संकल्प रूप सोममें, संकल्परूप सोम ही मन–हिरण्यगर्भमें, हिरण्यगर्भ बुद्धि अव्याकृतमें लय होती है। यही ब्राह्म कल्प प्रलय, ब्रह्माका सोना है ॥

सोऽपामन्नं ॥ बृ. उ. ३-२-१९ ॥

वह सूत्रात्मा (अपां) अव्याकृतका अन्न है ॥

प्राणा वा आपः ॥ तै. ब्रा. ३-२-५-१ ॥

प्राणशक्ति ही व्यापक अव्यक्त है ॥

प्राणा वै ब्रह्मः ॥ तै. ब्रा. ३-२-८-८ ॥

प्रजापति वै क्षत्रं ॥ श. ब्रा. ८-२-३-११ ॥

क्षत्रं वै वैश्वानरः ॥ श. ब्रा. ६-६-१-७ ॥

प्राणही ब्रह्म है। यहाँपर ब्रह्म शब्द अव्याकृतका वाचक

है। प्रजापति ही क्षत्र है, समस्त विश्वका नेता—स्वामी वैश्वानर ही क्षत्र है। क्षत्ररूप हिरण्यगर्भ देह है। ब्रह्मा अव्यक्त गुहासे उठकर पूर्वकल्पके समान सूर्यादिको रचता है॥

सहस्रयुगपर्य्यन्तमहर्ब्राह्मं यदुच्यते ॥ नाकस्य पृष्ठेतंकालं दिविसूर्यश्च रोचते॥ ततः कृतयुगस्यादौ ब्रह्मपूतोमहायशः ॥सर्वज्ञोधृतिमानृषिःपुनराजायते ॥

सामवेदीय देवताध्याय ब्राह्मण १-३ ॥

ब्रह्माका जो दिन हजार चतुर्युग चौकडीका कहा है, सो ब्राह्म दिन कल्प है, जो अन्तरिक्षके ऊँचे भाग द्यौमें सूर्य प्रकाशित होता है उसको ही काल कहते हैं, सूर्यकी आयु ब्रह्माके एक दिन तक है, फिर कल्प प्रलयमें ब्रह्मामें लय हो जाता है। फिर उस रात्रिरूप कल्पके अन्त और दिनरूप कल्पके आदिमें और सतयुगके आरम्भमें वेदस्वरूप पवित्र महायशवाला, सर्वज्ञ धृतिमान् सूर्य ऋषि फिर ब्रह्मासे प्रगट होता है। इसी प्रकार प्रत्येक कल्पमें सृष्टि और प्रलय होती है। फिर दो परार्द्धके पीछे महाप्रलय होती है। यही महेश्वर महायोगी की समाधि है॥

द्यौरन्तरिक्षे प्रतिष्ठिता अन्तरिक्षं पृथिव्यां पृथिव्यप्स्वापः सत्ये सत्यं ब्रह्मणि ब्रह्म तपसि॥

ऐ. आ. ११-६ ॥

विराट्के तीन मुख्य अवयव, शिर द्यौ, उदर आकाश चरण भूमि हैं, शिरका भार मध्य भाग पर, और मध्यका भा पग पर रहता है। सूर्यके सहित द्यौ अन्तरिक्षमें, आकाश भूमिमें अर्थात् त्रिविध स्वरूप विराट्कार्य अपनी अमृतक्रियामें, क्रिय हिरण्यगर्भ सूक्ष्म अवस्था रहित ही अव्यक्त कारण है, इसलि ही सूक्ष्म क्रियाको और अव्याकृतको (आपः) व्यापक कार मानकर एक कहा है। पंचभूतोंके सहित विराट् हिरण्यगर्भमें सूत्रात्मा अव्याकृतमें, अव्यक्त सत्यस्वरूप चेतन ब्रह्मामें, ब्रह्म अपने तुरीयस्वरूप महेश्वरमें, रुद्र नित्यविचार ज्ञानमय सम धिमें स्थित है॥

तपस्तेज आकाशं यच्चाकाशे प्रतिष्ठितं॥

तै. ब्रा. ३-१२-७-४॥

(तपः) अग्नि, वायु, सूर्य के सहित विराट्, (तेजः) हिरण्य गर्भमें, प्रकाशमय हिरण्यगर्भ, (आकाशं) अव्याकृतमें, कार्य क्रिया, कारण विकारी अवस्थारहित जो अव्यक्त निर्विशे अवस्था है, सो ही निर्विशेष बीज सत्तारूप बलशक्ति अनन्त ज्ञानाकाशमें विराजमान है। मैं बहुत होऊँ, इस चेतनसंकल्प के साथ ही संकल्पकी अभिव्यक्ति अव्यक्त है, संकल्पी संकल्प अधिष्ठित होने से ब्रह्मा है। विराट्, सूत्रात्मा, अव्यक्त सृष्टि कालमें विकारी अवस्था है, और महाप्रलयमें निर्विशेष बीज सत्ता है, जो सविशेष अवस्थासे ब्रह्मा है, सो ही निर्विशे अवस्थासे महेश्वर है। जैसे योगी जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिके श्वास

प्रश्वास विशेष क्रियासे रहित निर्विशेष प्राणसत्ताके सहित समाधिमें रहता है, तैसे ही महेश्वर, प्राणशक्तिके–अव्यक्त, सूत्रात्मा, विराट्, धर्मसे रहित, निर्विशेष बीज सत्ताके सहित महाप्रलय समाधिमें विराजता है। प्रलयपूर्व सृष्टिके जो कर्म भोगनेसे अवशेष रहें, सो ही बीजशक्ति रूप शव है यह शव असंख्य व्यष्टि शरीरोंका बीज, और उन शरीरोंका अभिमानी समष्टि पुरुष महाप्रलय श्मशानमें शयन करता है। श्वास प्रश्वासके समान, सृष्टि–प्रलय धर्म, शान्त प्रवाहरूपसे अनादि असंख्य है। इस भेदसे ही शव भी असंख्य है। अनन्त ज्ञान-स्वरूप रुद्रके एक भाग कण्ठमें प्रत्येक महाप्रलयके समय निर्विशेष बीजसत्ता रहती है, इसलिये ही शितिकण्ठ, मुण्डमालाधारी रुद्र है। और इस बीज शवको, सृष्टिके आकार में विकारी होनेसे नीलकण्ठ तथा सर्प कहा है। यह अधिष्ठित विकारी सत्तारूप सर्प अधिष्ठान महेश्वरसे भिन्न नहीं है, किन्तु तुरीयस्वरूप महेश्वर अवश्य भिन्न है। जब कर्म–संस्कार परिपक्व होता है, तब ही प्रलयका अन्त और विश्वरचनाका आदि होता है,भोग्यरूप बीजसत्ता अधिष्ठानमें संकल्प रूपसे स्फुरित होती है । मैं एक अभोक्ता अधिष्ठान मायिक महेश्वर मायाके द्वारा अनन्त स्वरूपधारी ब्रह्मा होऊँ, इस संकल्पी द्वारा संकल्प ज्ञानरूप प्रज्ञा अव्यक्त रूपमें प्रगट हुई, उस अव्याकृत योनिमें संकल्पी एकतादात्म्य रूपसे ब्रह्मा सत्य स्वरूप प्रगट हुआ ॥

आपएवेदमग्र आसुस्ता आपः सत्यमसृजन्त सत्यं ब्रह्म ॥ ब्रह्म प्रजापतिं प्रजापतिर्देवाँस्तेदेवाः सत्यमेवोपासते ॥ बृ० उ० ५-४-१

इस ब्रह्माण्डकी उत्पत्तिके पहिले अव्याकृत ही था। अव्यक्तसे सत्यरूप ब्रह्माको प्रगट किया, समष्टि स्वरूप ब्रह्मा विराट्को रचा, फिर विराट्ने अग्नि, वायु, सूर्यादि सब देवों रचा। वे सब देवता अविद्यारूप विराट्को त्याग, विद्या ब्रह्माकी उपासना करने लगे।

यः पूर्वन्तपसो जातमद्भ्यः पूर्वमजायत। गुहाम्प्रविश्य तिष्ठन्तं योभूतेभिर्व्यपश्यता। एतद्वै तत् ॥ या प्राणेन सम्भवत्यदितिर्देवतामयी ॥ गुहाम्प्रविश्य तिष्ठन्तीं या भूतेभिर्व्यजायत ॥ एतद्वै तत् ॥ कठो० ४-६-७।

जो महेश्वर सृष्टिसंकल्पसे पहिले ही था सोही प्रगट हुआ और जो अव्याकृतकी उत्पत्तिसे प्रथम संकल्पी रूपसे प्रगट हुआ था सो ही, अव्याकृत गुहामें बहुत स्वरूप धारण करनेके लिये प्रवेश करके विराजमान हुआ। जो व्यष्टि शरीरोंकेद्वारा विवि चेष्टायुक्त देखनेमें आता है, जो उस समष्टिको देखता है सो ही यह सत्यस्वरूप है। जो संकल्प क्रियारूप प्राणसे प्रगट हुई, सोही अव्याकृत अदिति सर्व देवस्वरूप हिरण्यगर्भ सूक्ष्म

ह है, इस अमृत-अदिति-सूत्रात्मा देह अपनी वाह्य मृत्युशक्तिसे विराट्को रचकर उस स्थूल देहमें स्वयं अग्नि, वायु, सूर्य चन्द्रमा रूपसे प्रवेश करके, भूमि, अन्तरिक्ष, जल, द्यौमें विराजमान हुई। जो अधिदैव स्वरूपसे है सोही प्रत्येक स्थूल शरीरोंके द्वारा अध्यात्मेन्द्रिय रूपोंसे प्रगट होती है। जो उस नाना स्वरूपवाली दितिको, समष्टि अव्याकृत अदिति जानता है, सोही यह व्यष्टि उपाधिक होने परभी अपनेको समष्टि सत्य स्वरूप जानता है।

स आगच्छति विभुप्रमितं तं ब्रह्मतेजः प्रविशति ॥ तं ब्रह्मा पृच्छति कोऽसीति तं प्रति ब्रूयात् ॥ ऋतुरस्मि आर्तवोऽस्म्याकाशा-द्योनेः संभूतो भार्यायारेतः ॥ संवत्सरस्य तेजोभू-तस्य भूतस्य भूतस्यात्मात्वमात्मासि यस्त्वमसि सोऽहमस्मीति॥ तमाहकोऽहमस्मि इति॥ सत्य-मिति ब्रूयात्किंतद्यत्सत्यमिति यदन्यदेवेभ्यश्च प्राणेभ्यश्च तत्सदथ यद्देवाश्च प्राणाश्चत-त्त्यं ॥ तदेतयावाचाऽभि व्याहृितयेसत्यमिति ॥ एतावदिदं सर्वमिदं सर्वमसि ॥

कौ० आर० ६–३–४ ॥

सो ज्ञानी ब्रह्मलोकके विभुनामक सभामण्डपमें आता है, फिर ब्रह्माका तेज उस ज्ञानीमें प्रवेश करता है । ब्रह्मा–उस

उपासकसे प्रश्न करता है, ज्ञानी मुनि तू कौन है? वह सं
उस भगवान् ब्रह्माको प्रतिउत्तर देता है। मैं अव्याकृत
योनिसे उत्पन्न हुआ हूँ। अर्थात् अव्यक्त आकाशरूप
रुद्रपत्नी है, अम्बिका देवीका त्रिविध भगरूप अव्याकृत ज
कारण है, उस कारणरूप ऐश्वर्य्य आकाशसे ब्रह्मा प्रगट हुअ
जो समष्टि पुरुष ब्रह्मा है सोही मैं उपासक हूँ, इसलि
व्यष्टिभावको त्यागकर, समष्टि भावसे अपनेको आका
अव्यक्तसे उत्पन्न हुआ कहा है। मैं एक हूँ बहुत होऊँ
वाणीरूप ऋतु हूँ, मैं असंख्य विभूति स्वरूपसे सर्वत्र व्यापक

वाग्वा ऋतुः ॥ गो० ब्रा० उ० ६-१

वाणी ही ऋतु है ॥

यानि तानि भूतानि ऋतवः ॥

श० ब्रा० ६-१-३-

जो कुछ भी चराचर भूत समूह है वे सब ही ऋतु
संवत्सरमय विराट्के उत्पन्न होनेवाले सूर्यमण्डल,
अग्निके स्वरूप तुमही हो, जो तुम सर्व व्यापक हो सो ही
ऐसा उत्तर दिया। फिर ब्रह्माने उसको कहा मैं कौंन हूँ?
पूछा तो उपासकने कहा, तुम सत्य हो। ब्रह्माने कहा जो सत्य
क्या है? ऐसा पूछा तब उपासकने उत्तर दिया। जो
अव्यक्त हिरण्यगर्भ विराट् प्राणोंसे और अग्नि, वायु सूर्य देवोंसे
है सोही तुरीय सत्स्वरूप चेतन है और जो देवता तथा प्रा
है सोही त्यं है। मायिक संकल्पीसे प्रेरित हुई वाणी, वह

क्रिया विविध नामरूप आकाश होती है। संकल्पी सत् है। और संकल्प त्यं है। चेतन मायिक और अचेतन माया मिलकर यह जगत्‌रूप व्यवहार होता है इतना यह नाम रूपात्मक सब है सोही सब तुम सत्य स्वरूप हो। अर्थात् सत् में त्यही विविध नामरूप से भासित है ॥

इत्येवैनं तदाहतदेतदृक्श्लोकेनाभ्युक्तम् ॥
यजूदरः साम शिरा असावृङ् मूर्तिरव्ययः ॥
स ब्रह्मेति स विज्ञेय ऋषिर्ब्रह्ममयो महान् ॥
तमाह आपो वै खलु मेह्यसौ अयं ते लोक इति ॥ कौ० आर० ६-५-६ ॥

इस प्रकार अभेद उपासकके वचनको सुनकर पितामहने उसको कहा, जैसे तूने कहा है तैसे ही यह ऋग्वेदकी ऋचा वर्णन करती है मेरे विषयमें। यजु उदर, साम शिर—यह अपरिणामी ऋचा स्वरूप है सो ही ब्रह्मा है, सो ही अतीन्द्रिय दृष्टा सर्व स्वरूपमय महान है ऐसा जानना। अव्याकृत मूलकारण ब्रह्मलोक निवास स्थान शिर है। हिरण्यगर्भ यजु प्राण है। विविधरूप विराट् वाणी है। यही तीन प्रकारसे ब्रह्माका देह है। इस सत्यरूप देहसे भिन्न सब विकाररहित अविनाशी समष्टिरूप ब्रह्मा ही व्यष्टि स्वरूपसे व्यापक महान् आत्मा सत् स्वरूप है ॥
फेर ब्रह्माने उस यतिको कहा—हे उपासक निश्चय यह (आपः)

व्यापक–अव्याकृत् गुहा आकाश ब्रह्म लोक ही मेरा नि
स्थान है–सो ही यह ब्रह्म लोक तेरा निवास स्थान है ॥

सत्यं वै सुकृतस्य लोकः ॥

तै० ब्रा० ३–३–६–१

उत्तम वैदिक कर्म उपासनाका फल सत्यलोक है ॥

ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके गुहाम्प्रवि
परमे परार्द्धे ॥ छायातपौ ब्रह्मविदो वद
पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः कठो० ३-

वैदिक साकाम्य कर्म ही अविद्यारूप पितृलोककी प्रा
और निष्काम वैदिक कर्म हिरण्यगर्भकी उपासना ही–वि
ब्रह्मलोककी प्राप्ति है। उत्तम कर्म उपासना के फलको
पितृलोक गुहामें भोगता है। फिर पुण्य क्षीण होनेपर
गिरते समय बहुत सन्तापको प्राप्त होता हुआ भूमिपर
लेता है। इस पुनरागमनका सूर्यके तापसे भी अधिक ता
और दूसरा उपासक ब्रह्मलोक गुहामें दो परार्द्ध पर्य्यन्त दि
भोग भोगता हुआ पुनरागमन सहित ब्रह्माके साथ ही दो प
अन्तमें लय हो जाता है–यह ब्रह्मलोकका सुख पुनरागमन
रहित सघन छायाके समान दिव्य सुख है। जो दिनमें ती
पंचाग्निकी उपासना करते हैं उन वेदवेत्ताओंने यह बात कही

कर्मणा पितृलोको विद्यया देवलोकः।

बृ० उ० १–५–१६

भेददर्शी कर्म उपासना ज्ञान भी अविद्या है। उन त्रिविध कर्मसे पितृलोक मिलता है। और अभेददर्शी त्रिकाण्डमय विद्यासे ब्रह्मलोक मिलता है॥

आत्मन एष प्राणो जायते॥ यथैषा पुरुषे छाया॥ प्रश्नो० ३। ३॥

जैसे मनुष्यमें छाया रहती है-प्रकाशमें पुरुषसे भिन्न दीखती है-सोही उत्पत्ति है-और अन्धकार में न दीखना ही लय है। तैसे ही व्यापक महेश्वरसे यह प्राण शक्तिरूप माया सृष्टिमें प्रगट और प्रलयमें लय होती है-वास्तवमें छायारूप मायाकी उत्पत्ति नहीं। जैसे पुरुषकी छाया कोई काल में भवरूप द्वैतकी रचना करती है-तैसेही यह माया मायिक में समष्टि-व्यष्टि भेदको उत्पन्न करती है। किन्तु अधिष्ठान से यह भिन्न न होनेपर भी भिन्नरूपसे भासती है-सो ही द्वैत जगत्की उत्पत्तिका कारण मिथ्या है। मिथ्या शब्दका अर्थ ही अनिर्वचनीय है-और कर्म उपासनाके द्वारा यथार्थ साक्षात्कार-अनुभव ज्ञानसे छाया लय हो जाती है-तथा अनुभवहीनको प्रपंचरूप से सत्य भासती है, सोही अनिर्वचनीय माया है-व्यवहार में सत्य है-और परमार्थ में असत्य है-इन दोनों अवस्थाओंका नाम ही मिथ्या-अनिर्वचनीय है॥

स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां खं वायु ज्योंतिरापः पृथिवीन्द्रियम्॥ प्रश्नो० ६-४॥

मायिक संकल्पीने प्राणरूप संकल्पक्रियाको रचा-संकल्पसे विकारी कारण अव्याकृत आप नामके आकाश रचा-उस अव्यक्त अभिमानी ब्रह्माने अपनी हरिण्यगर्भ दे विराट् रचा । उस स्थूल देहमें अंन्तरिक्ष-वायु-अग्नि-भूमि आदि अधिदैवरूप इन्द्रियसमूह को उत्पन्न किया ॥

आपो वै श्रद्धा ॥ मै० शा० १-४-१०

आपो वै जनयोऽभ्योहीदं सर्वं जायते।

मा. शा. १२-३५ ॥ श. ब्रा. ६-८-२-३

आपो वै प्रजापतिः परमेष्ठी ताहि प स्थाने तिष्ठति ॥

श. ब्रा. ८-२-३-१३ ॥ मा. शा. १४-९

अनन्त शक्तिकी महिमाको-प्रसिद्ध करने वाली अव्या ही चिन्हरूप श्रद्धा है। अव्याकृत ही स्त्री है-अव्याकृतसे यह सब-हिरण्यगर्भ विराट्-आकाशवायु आदि उत्पन्न होता जो अव्याकृत है-सो ही ब्रह्मलोक है। उस उत्तम स्थान प्रजापति स्थित है-इस लिये ही ब्रह्माका नाम परमेष्ठी और इसमें रहने से ब्रह्माका नाम नारायण है। अनन्त स्वरूप-अव्याकृत—हिरण्यगर्भ—अन्तरिक्ष द्यौ-सूर्यमण्डल षडात्मक शब्दोंका नाम आकाश है ॥

तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते अन्नात्प्राणो मनःसत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम्।

यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः ॥ तस्मा-
देतद्ब्रह्म नामरूपमन्नञ्च जायते ॥

मु० उ० १-१-८-९ ॥

जो मायिक अरूप वर्णरहित मातापिता विना ही नित्य स्वयम्भू सब इन्द्रियरहित विविधरूपसे व्यापक सर्वत्र कार्य-क्रिया कारण से भी सूक्ष्म है, उस परिणामरहितको ज्ञानी स्वस्वरूपसे देखते हैं-जो सब प्रजाओंका कारण है। जैसे ऊर्णनाभि-मकडी तन्तुजालको अपनेमें से रचकर उसमें रात्रिको वास करती है फिर प्रातःकालमें सब जालको खा जाती है-यह दृष्टांत मैंने आबू पर्वतमें प्रत्यक्ष देखा था-तैसेही सान्त अनादि प्रवाहरूप महाप्रलयमें स्थित बीजसत्ताको कारण-क्रिया-कार्यके आकार में प्रगट करता है, फिर प्रलयमें लय कर लेता है। जैसे जीवित प्राणीसे नख केश प्रगट होते हैं, तैसे ही चेतन अधिष्ठान मायिकसे यह मायामय जाल प्रगट होता है। फिर इस जालसे नाना भेदोंको वशमें करके ब्रह्मा स्वरूपसे विराजता है जो प्रलयमें निर्विशेष और सृष्टिमें सविशेष कारण रूपसे भासता है। सो ही बीजसत्ता जन्म मरण रहित अविनाशी अक्षर है। यही अव्याकृत कारण सूक्ष्म क्रिया अमृत-सूत्रात्मा-हिरण्यगर्भ आदि-नामवाला अक्षर है और इस अमृतकी एक बाह्य आधार मृत्यु शक्ति है सो ही प्रधान-जड-कार्य-रवि सोम-अन्न-क्षर आदि-नामवाली है। जैसे सूखा चना-निर्विशेष और ऋतु पर फूल

कर पुष्ट हुआ सविशेष अव्याकृत है—उसकी बाहरकी छाल है—और छालसे ढका हुआ भीतरका भाग ही अक्षर बीजके मध्यमें प्रेरक बीजी सत्ता है सो ही क्षर त्वचा, अ बीजसे परे बीजी अधिष्ठान है। तैसे ही मृत्यु क्षरसे हुई—अमृत अक्षर है। अक्षर—अग्नि—प्राण भोक्ता है—सोम—रवि भोग्य है। जब कारणसे अमृतशक्ति हिरण्यगर्भ के रूपमें विकार करने लग जाती है—तब उसकी मृत्युशक्ति विराट् के आकारमें साथ ही साथ विकास करती है—यह शक्ति सर्वदा अमृतको आवरण करती हुई—जल—भूमि—च आदि जड पदार्थोंके आकारमें भासती है—और अमृत शक्ति मृत्युको सर्वदा भक्षण करती हुई अन्तरिक्ष वायु—अग्नि—सूर्य प्रकाशवाले पदार्थोंके आकारमें भासती है। यह सब अ अव्यक्त कारणसे प्रगट हुआ है। 'मैं एक बहुत होऊँ' विचारके द्वारा संकल्प (ब्रह्म) की व्यापक संकल्प क्रिया साम अवस्था से विशेष अवस्थामें आनेके लिये विकास क लगी। उसके अनन्तर अव्याकृत रूपसे प्रगट हुई। अव्यक्त सूत्रात्मा हिरण्यगर्भसे—विराट् उत्पन्न हुआ। और कार्य क्रि सब लोक उत्पन्न हुए। उन कर्ममय लोकों के मध्य में अ नाशी ब्रह्मा स्थित है। जो सर्वज्ञ सबका अन्तर्यामी जि ज्ञान-विचार मय ही तप है—उससे ही यह (ब्रह्म) हिरण्य नाम उत्पन्न हुआ है—और हिरण्यगर्भसे स्थूल रूपवाला वि उत्पन्न होता है॥

मनो हि प्रजापतिः ॥

सामविधान । ब्रा० १-१-१ ॥

विराट् प्रजापतिः ॥ अ० ९ १५-१५ ॥

अन्नं वै विराट् ॥ ऐ० ब्रा० १-६ ॥

पुष्टि वै भूमा ॥ तै० ब्रा० ३-९-८-३ ॥

श्रीवैं भूमा ॥ ३-१-१-१२ ॥

श्रीवैं वरुणः ॥ शां० ब्रा० १८-९ ॥

भूमा वै सहस्रं ॥ श० ब्रा० ३-३-३-८ ॥

मन-प्रजापति-अन्न ये विशेषण विराट्के हैं। यह सूर्य ही सत्य है। बहुत स्वरूप धारण करनेकी इच्छावाला भूमा ही पुष्टि है। पुष्टिरूप बीजसत्ता श्री भूमा है। अधिष्ठान संकल्पी भूमामें अधिष्ठित संकल्प ऐश्वर्य ज्ञान भिन्न नहीं है इसलिये ही महिमा भूमा है। श्री वरुण है। महिमारूप वरुण अपने आधारको आच्छादन करती है-इसलिये ही-ऐश्वर्य्यरूप मायाका नाम वरुण है। माया के अनन्त स्वरूपों से भूमा भी अनन्त स्वरूप है ॥

तदेतत्सत्यं-यथा सुदीप्तात्पावकाद्विष्फुलिङ्गाः सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः॥ तथा क्षराद्विविधाः सोम्यभावाः प्रजायन्ते तत्रचैवापियन्ति ॥ दिव्योह्यमूर्तः पुरुषः सबाह्याभ्यन्तरो-

ह्यजः ॥ अप्राणोह्यमनाः शुभ्रोह्यक्षरात्परतः परः
एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च
खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी

सो ही महेश्वर यह ब्रह्मारूप सत्य है । बीज सत्ता
विकारी के रूप में प्रेरणा करता है सो ही चेतन महेश्वर है ;
वही मायिक—कारण—क्रिया—कार्य—तीनों समष्टि शरीरो में अ
ष्ठित हुआ ब्रह्मा है। जैसे बहुकाष्ठ प्रज्वलित अग्निमें से अ
समान ही (विस्फुलिङ्ग) प्रतिरूप हजारों प्रगट होते हैं, तैसे
अव्यक्त हिरण्यगर्भ—विराट् से युक्त चेतन ब्रह्मारूप अग्निसे स
पुरुष के समान ही व्यष्टि देहधारी अनन्त प्राणि प्रगट होते
फिर ज्ञान दशामें—और प्रलय के समय उसी ब्रह्मा में लय
हैं । हे सोम्य, ज्ञानी उत्पन्न नहीं होते तथा अज्ञानी प्रलयके
फिर उत्पन्न होते हैं। काष्टकी भिन्न २ चिनगारियोंसे एक अ
भी भिन्न २ दीखता है। तैसे ही अव्याकृत—सूत्रात्मा—विरा
भेदसे एक ही महेश्वर—धाता—विधाता—परमेष्ठीरूपसे भासता
इन तीनोंका नाम ब्रह्मा है। वही ब्रह्मा व्यष्टी देहमें विश्वतै
प्राज्ञ है। इन तीनोंका नाम जीव है। समष्टि चेतन ब्रह्मा है
सो ही व्यष्टि चेतन जीव है। चेतन सर्वज्ञ अपरिणामी है औ
उसकी अमृत शक्ति भी अपरिणामी है। किन्तु अमृतकी आव
करनेवाली मृत्युशक्ति ही परिणामस्वभाववाली क्षर है । स
समष्टि उपाधिक चेतन ब्रह्मा जीवनामसे है, सो ही उपाधिरी

महेश्वर है। सो ही महेश्वर निराकार स्वयंप्रकाशी ज्ञानस्वरूप है। प्रगट अप्रगट सृष्टि प्रलय दोनों अवस्थाओंमें जन्ममरण रहित अज है–(मनाः) नाना रूप धारण करनेवाला परिणामी विराट् है इस लिये ही बहुवचनीय है-विराट्से (अप्राणः) परिणाम रहित हिरण्यगर्भ अमृत है। सूत्रात्मासे (अक्षरात्) व्यक्त कारणसे भी परे से परे शुद्ध तुरीयस्वरूप है। इस तुरीय के एक भागमें बीज सत्ता है। यह सत्ता सृष्टिसे पूर्वक्षणमें विकारी संकल्परूपसे भासती है। इस संकल्पवशसे असंकल्पी-संकल्पी अधिष्ठान होता है–इस मायिकसे माया प्रेरित होकर अव्यक्त प्राणशक्ति उत्पन्न होती है–प्राणशक्तिसे सूक्ष्म शक्तिरूप मन उत्पन्न होता है– और सूत्रात्मा मनसे अधि दैव इन्द्रिय समूहवाला विराट् तथा उस त्रिलोकमय विराट्में आकाश-वायु-अग्नि-जल सब चराचरके धारण करनेवाली भूमि प्रगट होती है॥

अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः॥ वायुः प्राणो हृदयं विश्व-मस्य पद्भ्यां पृथ्वी एष सर्व भूतान्तरात्मा॥

मु० उ० २–१–१ ४॥

ब्रह्माकी कारण देह अव्यक्त है सूक्ष्मदेह हिरण्यगर्भ और स्थूलदेह विराट् है। जैसे भ्रूणगर्भरूप पिण्डके मध्यमें सूक्ष्म-रूप प्राणशक्ति है, वह शक्ति अपने बाह्य आवरण आधारपिण्डसे ढकी हुई विशेष प्राणरूपमें आने के लिये–मृत्यु सोमपिण्डको

भक्षण करती हुई वृद्धिको प्राप्त होती है—उस अमृतकी भी रूप शक्ति भी आच्छादन करती हुई स्थूलपिण्डके आका विकास करती है—उस मृत्युविकासको आधार पाकर अमृत भी—मृत्युमय पिण्डमें इन्द्रिय गोलक छिद्रोंको रचकर स्वयं ज्ञानेन्द्रिय स्वरूपको धारण करके उन छिद्रों में विराजमान हो है। यह अपरिणामी अखण्ड अमृत प्राण ही अदिति है। मृत्यु दिति खण्ड २ अपरिणामिनी स्थूलदेह के सहित भिन्न यवरूपसे प्रगट होती है। भिन्न २ मार्ग देनेवाली इस ज्येष्ठा आ रको पाकर आधेय रूप कनिष्ठ भगिनी अदिति प्रथम प्राणस्व श्वास प्रश्वासक्रिया को करती हुई फिर स्वयं सब अध्यात्मे बन जाती हैं। फिर उन अध्यात्मेन्द्रियों के ऊपर चतुष्टयान्तः समूह बुद्धि मस्तकसे जीवस्वरूप रुद्र प्रगट होता है। स्थूल के विना प्राणका विकास नहीं होता है और प्राणके सामान्य चेतनका विशेषरूप नहीं भासता है—इसलिये सा चेतनका बुद्धिगुहामें विशेष प्रकाश स्वरूप चिदाभास है ही बहुआत्मक वीर्य अव्यक्त योनिमें स्थित हुआ—अ की बाह्य अवस्थामय पिण्डमें भीतर की शक्ति—मृत्यु आ को भक्षण करती हुई हिरण्यगर्भके आकार में आने के विकास करने लग जाती है। उस अमृत को मृत्युशक्ति आच्छा दन करती हुई विराट् के रूप में विकास करने लग जाती उस समष्टि दिति बहिन को आश्रय करके समष्टि अ बहिन सूत्रात्मा रूप से प्रगट होती है—और दिति भी अ

आधेय को आश्रय करके विराट् स्वरूपमें प्रगट होती है। फिर हिरण्यगर्भ बुध्धिमें महेश्वर ही ब्रह्मारूप से प्रगट होता हुआ सामान्य चेतन ही निर्विशेष सत्ताकी विकारी अवस्था से ब्रह्मरूप भासता है। वही ब्रह्मा अपनी सूक्ष्म प्राणमय हिरण्यगर्भ देहसे विराट्में भिन्न २ अंग रूप छिद्रों को रचकर—फिर उन गोलकोमें हिरण्यगर्भ ही अधिदैवात्मक इन्द्रियस्वरूप से प्रकाशित होता है। विराट् के भिन्न २ अवयवों के भेदसे हिरण्यगर्भ देह भी प्रथक् २ अधिदैव अग्नि, वायु, सूर्य, इन्द्र, वरुण, मित्र, विष्णु, यम आदि स्वरूपसे भासने लगी। उस समष्टि सूक्ष्म बुद्धि हिरण्यगर्भका अभिमानी समष्टि ब्रह्मा भी अधिदैवोंमें भिन्न २ चेतन देवतारूपसे विराजमान हुआ। वे अधिदैवस्वरूप देवता भी अध्यात्मेन्द्रियोंके देवता हुए। विराट्का मस्तक व्यापक द्यौ, सूर्य चन्द्रमा नेत्र, दिशायें कान, नाना मंत्ररूप चारोंवेद वाणी, वायु-प्राण, उदर अन्तरिक्ष, इन्द्र हाथ, अग्नि मुख, वरुण जिन्हा, नाक अश्विनीकुमार, जलदेवता प्रजापति उपस्थ, सोम मन, बुद्धि ब्रहस्पति, पग विष्णु, वायु यम है। ब्रह्माके देनों पगोंसे चराचरको धारणकरनेवाली भूमि प्रगट हुई है—समष्टि व्यष्टि सब प्रपंच—इस महेश्वरका (हृदयं) संकल्प है। यह महेश्वर ब्रह्मा है। और यही ब्रह्मा समष्टि व्यष्टि समस्त प्राणियोंके अन्तःकरणमें विराजमान चेतन आत्मा है॥

आत्मा वै मनोहृदयं॥

ऋ० आ० ३-८-३-८॥

ब्रह्माहि परः परो हि ब्रह्मा ॥

तै० आर० १०-७८-१

व्यापक आत्मारूप मायिकका मन ही हृदय है अर्थात् रचनारूप मनन-विचार-तप ही संकल्प है। ब्रह्मा ही महेश्वर और महेश्वर ही ब्रह्मा है। हिम ही जल-जल ही हिम उपाधिक ब्रह्मा निरुपाधिक महेश्वर है ॥

सत्यज्ञानमनन्तं ब्रह्म ॥ यो वेद निहि गुहायां परमे व्योमन्॥ सोऽश्नुते सर्वान् कामा सह ब्रह्मणा विपश्चितेति ॥ तस्माद्वा एतस्म द्वात्मन आकाशः सम्भूतः ॥आकाशाद्वायुः वायोरग्निः॥अग्नेरापः॥अद्भ्यः पृथ्वी॥ पृथिव्य ओषधयः ॥ ओषधीभ्योऽन्नं ॥ अन्नात्पुरुषः।

तै० आर० ८-२-१

अन्नत ज्ञानस्वरूप (सत्यं) परिणाम आदि विकार रहित समष्टि ब्रह्मा है। ब्रह्मलोकमय उत्तम अव्याकृत आकाश गुहा स्थित है—जो ज्ञानी उत्तम आकाश—अव्याकृत गुहास्थि ब्रह्माको जानता है—वह उपासक सर्वज्ञ ब्रह्माके साथ परार्द्ध पर्यन्त संम्पूर्ण भोगोंको भोगता है। फिर ज्ञानी ब्रह्म लय होजाता है। उस ब्रह्मासे विराट् उत्पन्न होता है और स्थूल विराट् स्वरूपसे अन्तरिक्ष, आकाशसे वायु-वायुसे अ

अग्निसे जल—जलसे भूमि, भूमिसे औषधियें—औषधियोंसे अन्न-अन्नसे पुरुष उत्पन्न होता है॥

आत्मा वा इदमेकएवाग्र आसीत्। नान्यत्किञ्चनमिषत्॥ सईक्षत लोकान्नुसृजाइति॥

यह सब जगत् एक व्यापक कारणरूप ही था। उस अव्याकृत अधिष्ठित चेतन ब्रह्मा से भिन्न कुछ भी नहीं था। अव्याकृतवासी ब्रह्माने इच्छा की मैं कारणमें स्थित हूँ, अपने सूत्रात्मा देहके द्वारा लोकोंको रचूँ, ऐसा संकल्प किया।

सइमाँल्लोकानसृजत इति॥

उस ब्रह्माने इन चतुर्दश भुवनोंको रचा॥

अम्भो मरीचीर्मरमाय इति॥ अदोऽम्भः परेण दिवं द्यौ प्रतिष्ठान्तरिक्षं मरीचयः पृथिवी मरोया अधस्तात्ता आपः इति॥

उस ब्रह्माने प्रकाशवाले, व्यापक सुखवाले, प्रलयमें नाशवाले तपः जनः महर्लोक को रचा। ये तीनों चतुर्थ ब्रह्मलोक से सम्बन्धवाले अलोक हैं—ब्राह्म्य प्रलयमें सत्यलोकमें लय होते हैं और ब्राह्म्य सृष्टिमें प्रगट होते हैं—जैसे समाधिमें तीनों अवस्थाओंका लय और उत्थानकालमें उत्पत्ति है, तैसे ही इन मह, जन, तपकी सत्य लोकमें लय उत्पत्ति है। यह कल्परूप सुखवाले लोक—विराट्के शिररूप द्यौसे परे हैं। इन अलोकात्मक लोकोंके

पीछे विराट्को रचा। उस विराट्में शिरस्थानीय (दिवं) स्व
आधाररूप द्यौ को रचा, फिर विराट्के उदर–मध्य भाग–
युक्त–आकाशको रचा–फिर अन्तरिक्षके अधोभागमें मेघ
लोंकोंको रचा, पुनः उन जलोंके साथ ही पृथिवीको
जिस भूमि पर प्राणि जन्म ग्रहण करके मरते हैं–सो ही
मर्त्य है ॥

स ईक्षते मेनुलोका लोकपालान्नु सृज
इति। सोऽद्भ्य एव पुरुषं समुद्धृत्यामूर्छयत्॥

ब्रह्माने विचार किया मैंने इन लोकोंको अव्यक्तसे रचा
किन्तु लोकपालोंके विना नष्ट हो जायँगे–इसलिये लोकपालों
भी रचूँ। इस रचनाके अनन्तर उस हिरण्यगर्भने कार्य मृत्
प्रगट किये पुरुषाकार विकारको ग्रहण करके देहको आ
अपने तेजसे तप्तकिया जो विराट्में गोल छिद्रोंको रचकर
दैव रूपसे विकास करने लगा ॥

तमभ्यतपत्तस्याभितप्तस्य मुखं निर
घत यथाण्डम् ॥ मुखाद्वाग्वाचोऽग्निर्नासि
निरभिद्येताम् ॥ नासिकाभ्यां प्राणः प्राणाद्वा
रक्षिणी निरभिद्यतां ॥ अक्षिभ्यां चक्षुश्चक्षु
आदित्यः कर्णौ निरभिद्यतां। कर्णाभ्यां श्रो
श्रोत्राद्दिशस्त्वङ् निरभिद्येत। त्वचो लोमा

लोमभ्य औषधिवनस्पतयो। हृदयं निरभिद्यत। हृदयान्मनो मनसश्चन्द्रमा। नाभिर्निरभिद्यत। नाभ्या अपानोऽपानान्मृत्युः। शिश्नं निरभिद्यत। शिश्नाद्रेतो रेतस आपः॥

ए० आरण्यक २-४-१॥

उस स्थूल विराट् पिण्डको प्राणशक्तिने सर्वत्र से तपाया। सर्वत्र से तप्त हुए उस विराट्का मुख निकला, जैसे पक्षीका अण्डा फूटता है तैसे ही विराट् पिण्ड फूटकर मुख उत्पन्न हुआ। मुखमें से वाणी निकली, वाणीसे अग्नि देवता लोकपाल प्रगट हुआ; नाकके दोनों छिद्र निकले, नाकमें से प्राण-प्राणसे वायु निकला-दोनों नेत्रके गोलक निकले-आँखोंके छिद्रोंसे चक्षु, नेत्रसे सूर्य निकला; कानके छिद्र निकले, कानोंसे श्रवणेन्द्रिय; श्रवणसे दिशायें निकलीं; चर्म निकला, चर्मसे रोम रोमसे औषधि तथा वनस्पति निकलीं; हृदय निकला, हृदय से मन, मनसे चन्द्रमा निकला; नाभि निकली, नाभिसे अपान वायु-अपानसे मरणका अभिमानी देवता निकला; मूत्रेन्द्रिय निकली, उपस्थसे वीर्य और समुद्रसहित जल उत्पन्न हुआ। वीर्यका देवता प्रजापति है॥

आत्मावैबेमः॥ शां० ब्रा० ८-८॥

आत्मा वै तनू॥ श० ब्रा० ७-३-१-२३॥

आत्मा वै पूः ॥ श० ७-५-१-२१

आत्माह्ययं प्रजापतिः श० ब्रा० ४-६-१-१

स्वयं प्रकाशी—अव्याकृत—शरीर समष्टि व्यष्टि दे
आत्मा है और यह समष्टि व्यष्टि देह व्यापी चेतन ही प्रजा
आत्मा है। ब्रह्मन्। ऋ० ७। २९ २ ॥ ब्रह्माका अर्थ व्या
है। ब्रह्म ॥ ऋ० ३। ५३। १३ ॥ ४। ६ ११ ॥ ब्रह्म नाम स्तो
सूक्तमंत्रका है ॥ ब्रह्म ॥ ऋ० ६। ७५। ११–१६–१९
बाण—मंत्र—कवचका नाम ब्रह्म है ॥ ब्रह्म ॥ ऋ० १०। ११
८ ॥ वेदका नाम ब्रह्म है ॥ ब्रह्म ॥ ऋ० १०। ४। ७॥
और यज्ञ द्रव्यका नाम ब्रह्म है ॥ ब्रह्म ऋ० ८। ३। १
अन्नका नाम ब्रह्म है ॥ ब्रह्म ब्रह्म ॥ ऋ० ९। ७७।
सोम और अन्नका नाम ब्रह्म है ॥ ब्रह्म ॥ ऋ० ९। ६७
२३ ॥ देहका नाम ब्रह्म है। ब्रह्मणे ॥ ऋ० १०। १२। ८
बृहस्पतिके लिये। ब्रह्म वास्तोष्पतिं ॥ ऋ० १०। ६१। ७
रुद्रका नाम ब्रह्म है। ब्रह्म वा ऋतं। श. ब्रा. ४। १।
१० ॥ रुद्र ही ऋत है। और प्राणशक्ति है। अपः ॥ ऋ
७। ४४। २ ॥ जलदेवता। अपांसि ॥ ऋ० ५। ४७
तेज समूह ॥ अयं देवानामपसामपस्तमः ॥ ऋ० १। १६०
४ ॥ जो यह ब्रह्मा देवोंमें अति श्रेष्ठ—और(अपसां)
कर्त्ताओंके मध्यमें (अपः) कर्म है। आपो मातरः। ऋ० ८
८५। २ ॥ व्यापक माताएँ। आपां ॥ मा. शां. १३। ३

किरणोंके मण्डलमें । आपः । मा. शा. ३४ । ५५ ॥ व्यापक आपो हिरण्यं त्रिवृद्भिः ॥ अ० १९ । २७ । ९ ॥ व्यापक कारण तेज ही तीन रूपसे स्थित है । आपः ॥ ऋ० ३ । ५६ । ४ ॥ व्यापक है । आपो देवी ॥ ऋ० ७ । ५० । १ ॥ आपो मातरः ऋ० १० । ९२ । ६ ॥ अन्नं वा आपः ॥ तै. ब्रा. ३ । ८ । २ । १३ ॥ आपो वै यज्ञः ॥ कपिष्ठल शा. ३८ । ५ ॥ प्राणा वा आपः॥ तै० ब्रा. ३ । २ । ५ । १ ॥ आपो वा अम्बयः ॥ शा. ब्रा. १२ । २ ॥ व्यापक अम्बिका देवी । तीन माता रूप है ॥ जड कारण अन्न ही आप है । व्यापक हिरण्यगर्भ ही यज्ञ है । सूत्रात्मा ही अव्यक्त है । कारण–क्रिया–कार्यरूप ही माता है । तद्धेदंतर्ह्य व्याकृत मासीत् ॥ बृ. उ. १ । ४ । ७ ॥ आत्मा वै बृहती प्राणाः ॥ ऐ. ब्रा. ३० । ३ । २८ ॥ आपो वै सर्वा देवता ॥ तै. शा. २ । ६ । ८ । ३ ॥ सो ही यह सब जगत् प्रथम अव्याकृत रूप ही था । व्यापक महाशक्ति अव्यक्त ही सबका मूल कारण आधारभूत प्राण है । अव्याकृत ही सर्व देव आदि प्राणिमात्र है । आप शब्दके अनेक अर्थ हैं ॥

ता एता देवताः सृष्टा अस्मिन्महत्यर्णवे प्रापतंस्तमशनापिपासाभ्यामन्ववार्जत् ॥ ता एनमब्रुवन्नायतनं नः प्रजानीहियस्मिन्प्रतिष्ठिता अन्नमदामेति ताभ्योगामानयत्ता अब्रुवन्न वैनोऽयमलमिति ताभ्योऽश्वमानयत्ता अब्रु-

वन्न वै योऽयमलमिति ताभ्यः पुरुष मान्य
अब्रुवन्त्सुकृतंबतेति पुरुषो वाव सुकृतमिति।

प्रजापतिने—इन लोकपाल देवताओंको भी रचा। वे
देवता इस महान् विराट्मय समुद्रमें गिरे अर्थात् प्राण
विराट्में अधिदैव रूपसे व्याप्त हुई—इसलिये ही उस विरा
भूख प्याससे युक्त होना—पडा। वे देवता इस ब्रह्माको
लगे—हे पितामह हमारे लिये ऐसा स्थान रचो जिससे
शरीरमें—हम समष्टि विराट् देहवासी अधिदैव—अध्यात्मस
धारण करके अन्नका आहार कर सकें। विराट् देहस्थित अ
स्वरूप इन्द्रियोंके वचनको सुनकर ब्रह्माने—उन अधिदैवोंके सा
एक गौके आकारका पिण्ड उपस्थित किया—उस गौमय पिण्ड
देखकर—देवताओंने कहा—यह पिण्ड हमारे योग्य नहीं है—
ब्रह्माने उनके सन्मुख एक घोडेके रूपका पिण्ड रख दि
उसको देखकर देवताओंने कहा—इस पिंण्ड से हमारी का
पूरी नहीं होवेगी। पुनः ब्रह्मदेवने उनके निमित्त एक मनु
के आकारका पुतला रचकर खडा किया। उसको देखकर
देवता कहने लगे यह देह अति उत्तम है—इसलिये मनुष्य
पुण्य कर्मोंका कारण होनेसे उत्तम कर्मस्वरूप है। इस प्र
सुनकर ब्रह्माने॥

ता अब्रवीद्यथायतनं प्रविशतेति॥ अग्नि
र्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशद्वायु प्राणोभूत्वानासि

प्राविशदादित्यश्चक्षुर्भूत्वाऽक्षिणी प्राविशद्दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशन्नोषधिवनस्पतयो लोमानि भूत्वात्वचं प्राविशंश्चन्द्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशन्मृत्युरपानो भूत्वा नाभिं प्राविशदापोरेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशन इति॥

उन देवताओंसे कहा यथा योग्य जिस प्रकार विराट् के तुम अवयवस्वरूप अधिदैव हो—उसी प्रकार मनुष्यादिके शरीरमें अध्यात्मरूपसे प्रवेश करो। यह बात सुनकर सबसे प्रथम मनुष्यदेह स्थित मुखमें अग्नि वाणीरूपसे प्रविष्ट हुआ। वायु प्राणरूपसे नाकके दोनो छिद्रोंमें प्रविष्ट हुआ—सूर्यने नेत्र-रूपसे दोनों चक्षु गोलकोंमें प्रवेश किया—दिशाओं ने श्रवणेन्द्रिय-रूपसे कानके छिद्रोंमें प्रवेश किया। ओषधिवनस्पतिके देवोंने लोम होकर चर्ममें प्रवेश किया। चन्द्रमाने हृदयमें मनरूपसे प्रवेश किया—मृत्युने अपान रूपको धारण करके नाभिमें प्रवेश किया—जल देवता प्रजापतिने वीर्य रूपसे मूत्रेन्द्रियमें प्रवेश किया। जब अधिदैव देवता अध्यात्मरूपसे व्यष्टि देहमें प्रविष्ट हुए तब॥

तमशनयापिपासे अब्रूतामावाभ्यामाभ प्रजानीहीति ते अब्रवीदेतास्वेव वां देवता स्वाभंजाम्येतासु भागिन्यौ करोमीति तस्मा-

द्यस्यै कस्यै च देवतायै हविर्गृह्यते भागिन्ये-वेवास्यामशनापिपासे भवत : ॥

ऐ० आर० २-४-२

भूख प्यासके अभिमानीने ब्रह्मासे कहा अधिदैव हमारे लिये भी कोई स्थान बनाओ। यह सुनकर ब्रह्माने कहा इन देवताओंमें ही तुम दोनोंकी व्यवस्था करता हूँ—तुमको इनमें भाग पानेवाले बनता हूँ। इसलिये ही जिस किसी भी देवताके लिये हविष्यान्न दिया जाता है—उसमें ही भूँख प्यास भागी होते हैं ॥

स इक्षते मेनु लोकाश्च लोकपालाश्चा-मेभ्यः स्रजा इति सोऽपोऽभ्य तपत्ताभ्यो अ-तप्ताभ्यो मूर्त्तिरजायत या वै सा मूर्तिरजा-तान्नं वै तत् इति ॥

ऐ० आर० २-४-३

फिर ब्रह्माने विचार किया मैंने लोक और इन के रक्षक देवों के सहित मनुष्यादि प्राणियों के देहको भी रचा इन सबके पोषण के लिये अन्नकी रचना करूँ। सो ब्रह्मा (अपः) सूर्य मण्डलमें स्थित होकर किरण समूहसे तपता भया सर्वत्र प्रतप्त किरणोंसे मेघमूर्ति प्रगट हुई जो जलधरमूर्ति है वह ही मेघमूर्ति वर्षा करने लगी—उस वर्षासे यवब्रीहितिल आदि अन्न हुआ। उस अन्नको मनुष्यने अधिदैवोंके प्रति आहु

देकर यज्ञ शेष अन्नको भोजन करके अपने वीर्यसे पुत्रादि प्रजाको उत्पन्न किया ॥

नैवेह किञ्चनाग्र आसीन्मृत्यु नैवेद-माऽऽवृतमासीदशनायया ऽशनाययाहि मृत्युस्तन्म-नोऽकुरुताऽऽत्मन्वीस्यामिति ॥ सोऽर्चन्नचर-त्तस्यार्चत आपोऽजायन्तार्चतेवैमेकमभूदिति तदेवार्कस्यार्कत्वं कः॑ह्वा अस्मै भवति य एवमेत दर्कत्वं वेद ॥

इस जगतमें जो कुछ पदार्थ है वह अपनी उत्पत्तिके पहिले नामरूप रहित था। यह सब अज्ञान बीज तमसे आच्छादित था। प्रलय पूर्व सृष्टिके अभोग्य कर्म फलोंको भोगनेकी इच्छावाला समष्टि पुरुष बीज शक्ति युक्त है—उसने इच्छा कीकि मैं बहुत अन्तःकरणवाला होऊँ, इसके पीछे संकल्प किया, मनको रचने लगा—संकल्पीसे संकल्प क्रिया कारणके आकारमें विकास होनेके लिये सन्मुख हुई। यही तैयारी पूजन किया फिर विकास करने लगी। उस संकल्प ज्ञानके विकास से (आपः) व्यापक कारण प्रगट हुआ, संकल्पका विकासरूप पूजन मेरा विस्तार करनेवाला अव्यक्त हुआ ऐसा विचार है सो ही प्रकाशका प्रकाशपना। इसको जो जानता है उसके लिये ही अव्याकृत गुहास्थित ब्रह्म सायुज्यका सुख होता है ॥

आपो वा अर्कस्तद्यदपाꣳशरआसी
महन्वत ॥ सा पृथिव्यभवत्तस्यामश्राम्य
स्य श्रान्तस्य तप्तस्य तेजोरसो निवर्त्तताग्नि

अव्याकृतका अमृत तेज ही सूत्रात्मा ज्योति है, जो
णका मृत्यु बल था सो ही अमृतको आच्छादन करता
अतिसूक्ष्म कार्यसे कुछ तरल घनीभूत सरोवर हुआ-जो
क्रिया कार्यको भक्षण करता हुआ विशेष तेजके आकारमें
भूत होने लगा-उस आधेय प्राणको पाकर आधार सोम
से विशेष स्थूलके रूपमें कठिन होकर वह सोम विस्तार
प्राणको धारण करनेमें समर्थ हुआ। उस रवि-सोम पृथि
क्षर-कार्य कमलमें-वह प्राण अग्नि-अक्षर क्रियारूप हि
गर्भदेहयुक्त ब्रह्मा अपने कार्यक्रियामय देहसे स्थूल प्रपं
रचनेके लिये बडे भारी विचार युक्त श्रमको प्राप्त हुआ-
युक्त आवेशसे-अर्थात् ब्रह्माने इच्छा की कि मैं अपनी स
मृत्यु-दिति-भोग्य कार्यदेह-और प्राण अमृत अदिति-
क्रिया देह इन दोनों सूक्ष्म देहसे स्थूल विराट् को रचूँ-इस
ब्रह्मा परमेश्वरके विचारके अनन्तर-अमृत-छाया-सूक्ष्म
अपने-मृत्यु उपछाया स्थूल अन्धकारके सहित सूक्ष्मसे
स्थूलके रूपमें प्रगट होनेके लिये विकास करने लगीं कि
विकासकी पूर्ण अवस्थासे तेजका साररूप कठिन भाग (
व्यापक समष्टि स्थूल देह विराट् प्रगट हुआ ॥

स त्रेधाऽऽत्मानं व्याकुरुताऽऽदित्यं तृतीयं-वायुं तृतीयꣳ स एष प्राणस्त्रेधा विहितः ॥

ब्रह्माने अपनेको तीन प्रकारसे विभक्त किया। अग्नि वायुकी अपेक्षासे सूर्य तीसरा है—सूर्य अग्निसे वायु तीसरा है—सूर्य वायु से अग्नि तीसरा है। सो ब्रह्मा अपने सूक्ष्म क्रिया प्राणसे तीन प्रकार विभक्त हुआ। और अपने स्थूल कार्य रयिसे द्यौ-अन्तरिक्ष—भूमि—रूपसे तीन प्रकारका विभक्त हुआ॥

सो कामयत द्वितीयोम आत्मा जायेतेति स मनसावाचं मिथुनꣳ समभवदशनायामृत्यु स्तद्यद्रेत आसीत्ससंवत्सरोऽभवत्। न ह पुराततः संवत्सरआस तमेतावन्तं कालमबिभर्यावान्सं-वत्सरस्तमेतावतः कालस्य परस्तादसृजत ॥ तं जातमभिःव्यादात्सभाणकरोत्सैव वाग-भवत् ॥ बृ० उ० २२—३—४॥

उस ब्रह्माने इच्छा कीकि मेरा दूसरा शरीर हो। ऐसी कामना की—वह ब्रह्मा अपने संकल्पसे वाणी रूप जोडीको रचता भया। ब्रह्मा ही संकल्प अभिमानी पिता और वाणी अभिमानी पुत्री सरस्वती है—सो ही ब्रह्मा संकल्प और वाणीका स्वामी प्रजा-पति काल हुआ। यही काल वहु प्रजाकी कामना रूप क्षुधायुक्त वीर्यको उस संकल्प पुरुषने वाणी स्त्री में सिञ्चन किया, जो

गर्भरूप सार था सो ही संवत्सर वर्ष चक्र हुआ । उसके पहिले संवत्सर नहीं था । जितने समय तक संवत्सर पूर्ण विकासमें नहीं आया उतने समय पर्यंन्त वाणीरूप विराट्ने उसे धारण किया फिर उतने ही कालके पीछे उसको प्रगट किया ॥

अन्नं वै विराट् ॥ मै० शा० १-६-११ ॥

उस अन्नरूपसे प्रगट् हुए विराट्को उसके प्राणने ही सन्मुख भोगरूप से भक्षण करने के लिये अपना विस्तार किया कि वह भोग्यरूप विराट् भाण ऐसा शब्द करता भया, सो ही वाणी हुई ॥

विराड् वाक् विराट् पृथिवी विराडन्तरिक्षं विराट् प्रजापतिः ॥ विराण्मृत्युः साध्यानामधिराजो बभूव ॥ अ० ९-१५-२५ ॥

वाणी भूमि—आकाश—प्रजापति मृत्यु—प्राणरूप विराट् हैं। तथा ब्रह्माण्डके साधक लोकपालोंका भी स्वामी विराट् हुआ—कार्य आधारमें ही सब क्रियाशक्तिके व्यापार होते हैं—इसलिये सबका आधार विराट् है ॥

विराड् वा इदमग्र आसीत् ॥ तस्या जातायाः सर्वमबिभेदियमेवेदं भविष्यतीति ॥

आ० ८-१०-१ ॥

इस व्यष्टि प्रपंचके पहिले समष्टि विराट् ही था। उस विराट् रूप सरस्वती से ही सब जगत् उत्पन्न हुआ और हो रहा है—तथा आगे भी उत्पन्न होगा॥

प्रजापतिर्वा एक आसीत्सोऽकामयत यज्ञो भूत्वा प्रजाः सृजयेति॥ मै० शा० १-९-३॥

ब्रह्मा विराट्के पहिले एक ही था। उसने सृष्टि रचनेकी इच्छा की कि मैं कार्यसे स्थूलदेह धारण कर प्रजाओंको रचूँ॥

प्रजापतिर्विराजमपश्यत्॥ तया भूतं च भव्यं चासृजत॥ तै० शा० ३-३-५-२॥

यज्ञेन वै प्रजापतिः प्रजा असृजत॥
तै० शा० ६-४-१-१॥

वाग्वै यज्ञः॥ ऐ० ब्रा० ५-२४॥

वाग्वै सरस्वती॥ का० शा० ३५-२०॥

वाग्वै विराट्॥ मै० शा० २-२-१०॥

ब्रह्माने अपने सूक्ष्म देहमें अमृतकी प्रतिछायारूप विराट्को देखा—उसके द्वारा ही भूत भविष्य और वर्तमान जगत्को रचा। विराट्रूप यज्ञके द्वारा ही ब्रह्माने सब प्रजा रचीं। वाणी ही यज्ञ है—और वाणी सरस्वतीरूप विराट् है॥

असो वै स्वराडियं विराडुत्तानायाँस्त्रियं पुमान्रेतः सिञ्चति॥ का० शा० २०-६॥

प्रजापतिर्वा इदमासीत् तस्यवाग्द्वितीयासीत् ॥ तां मिथुनं समभवत् ॥ सागर्भमधत्त ॥ सास्माद पाक्रामत्सेमाः प्रजा असृजत ॥ सा प्रजापतिमेव पुनः प्राविशत् ॥

कपिष्ठल कठ शाखा ४२-१ ॥ का० शा० १२-५ ॥

इस विराट्रूप स्त्रीकी स्वराट् द्यौ दहनी जंघा है, और भूमि वाम जँघा है। संकल्पी पुरुष वहुसंकल्पमय विर्यको सिंचन करता है। इस विराट् स्त्रीके पहिले एक ही ब्रह्मा था। उस ब्रह्मा संकल्पीकी संकल्पके सहित वाणी दूसरी हुई—संकल्प अभिमानी मनुका उस वाणीकी अभिमानी देवी अनन्तरूपाके साथ समागम हुआ। उस सरस्वतीने गर्भ धारण किया। सावित्रीने जिस वहु आत्मक गर्भ धारण किया वह गर्भ वृद्धिको प्राप्त हुआ—उस गर्भसे इन सब प्रजाओंके जड व्यष्टि पिण्डोंको रचा। फिर वाणी संकल्पके पिताने चेतन रूपसे प्रवेश किया॥

प्रथिष्ट आदि तीन ऋचाओंका नाभानेदिष्टऋषि, त्रिष्टुप्छन्द, प्रजापति उषा देवता ॥

प्रथिष्ठ यस्य वीर कर्ममिष्णदनुष्ठितं नु नर्यो अपौ हत् ॥ पुनस्तदा वृहतियत्कनाया दुहितुराअनुभृतमनर्वा ॥५॥ मध्यायत्कर्त्वमभवदभीकेकामं कृण्वाने पितरि युवत्याम् ॥ मनानः

ग्रेतो जहतुर्वियन्ता सानौनिषिक्तं सुकृतस्य योनौ ॥ ६ ॥ पितायत्स्वां दुहितरमधिष्कन् क्ष्मयारेतः संजग्मानोनिषिंचत् ॥ स्वाध्योऽजनयन्ब्रह्म देवास्तोष्पतिं व्रतपां निरतक्षन् ॥

ऋ० १०-६१-५-७ ॥

अग्नि सोमात्मक प्रजापतिका जो विशेष प्रजा उत्पादक सामर्थ्य वीर्य-तेज है सो ही सूर्यमण्डलके तेजकी वृद्धि तथा ऋषिमनुष्यादि प्राणियोंकी वृद्धिके लिये निकला-प्रजापतिने वीर्यका त्याग किया-अपनी देह विराट्मयी वाणीरूप दुहितामें वीर्य सिंचन किया। जिस सृष्टिकी कामनासे मनरूप प्रजापतिने संकल्प विराट् रचा उस संकल्प विराट्ने अपने आधे भागमें वाणी रची-उस वाणीमें अपने आधे भागसे मनु रचा। जिस समय पिता पूर्णविकासयुक्त दुहिताके ऊपर कामासक्त हुए, मैं चेतन संकल्पके सहित वाणीके द्वारा प्रजा रचनेमें समर्थ होऊँ यही कामनारूपसे प्रजापति कामातुर हुए। संकल्प चेतन और वाणी चेतन एक ही है, इसलिये ही संकल्पी पिता है-उसने अपने संकल्प देहसे वाणीरूप सुपर्णी माया पुत्री रची। जो मनमें संकल्प होता है- सो ही संकल्प वाणी बोलती है। मनका संकल्परूपसे वाणीके संग समागम हुआ। सोही दोनोंका समागमरूप उत्तम स्थान है। प्रजापतिके कार्य क्रियाके परस्पर समागमरूप विकासमें भोग्यरूप सोम भोक्तारूप अग्निमें गिरा, भोग्य भोक्तासे हीन

होता है। दोनोंकी अपेक्षासे सार भाग अल्प है। इसलिये वीर्यंका अल्प सिञ्चन हुआ। जिस समय पिताने अप दुहिताके संग समागम किया—उस समय पृथिवीके साथ मिलकर शुक्रका सिञ्चन किया। उत्तमकर्मी देवोंने इस कार्यको आगे लिये कोई प्रजा न करे—इस हेतुसे मर्य्यादापालक प्रणव ओं मायाकोश—घरके स्वामी (ब्रह्म) अधिष्ठान मायिक महेश्वर रुद्र प्रसन्न करके प्रगट् किया॥

प्रजापतिर्वैत्रीन्महिम्नोऽसृजताग्निं वायु सूर्यं ते चत्वारः पिता पुत्राः सत्रमासत त स्वेदं समवैक्षं स्तदभवत्तद्वाअस्यैतन्नामा भूदिति सर्वमभूतदिति तद्वाअस्यैतेनाम्नीक्रूरे अशान्ते तस्मादेते न ग्रहीतव्ये क्रूरे ३ ह्येते अशान्ते प्रजापति वैं स्वां दुहितरमभ्यकाम यतोषसंसारोहिदभवत्तामृश्यो भूत्वाध्यैत्त स्मा अपव्रतमछदयत्तमायतयाभि पर्यावर्तत तस्माद्वा अबिभेत्सोऽब्रवीत्पशूनां त्वापतिंकरो म्यथ मे मास्था इति तद्वा अस्यै तन्नांमपशुपति रिति तमभ्यायत्याविध्यत्सोऽरोदीत्तद्वा अस्यै तन्नामरुद्र इति तेवा अस्यै ते नामनी शिवे

शान्ते तस्मादेतेकामं ग्रहीतव्ये शिवे ३ह्येते शान्ते ततोयत्प्रथमं रेतःपरापतत्तदग्निनापर्यैन्द्ध ॥

मै० शाखा० ४-२-१२ ॥

प्रजापतिने अपनी तीन महिमा अग्नि, वायु सूर्यको रचा। वे चारों पिता पुत्र अश्वमेध यज्ञरूप हुए। उस यज्ञमें पसीना रूप सारको देखने लगे। सोही अधिष्ठान साररूप तेज से एक पुरुष उत्पन्न हुआ, इसका नाम प्रगट मात्र ऐश्वर्य का स्वामी ऐसा नाम हुआ, सोही पुरुष है—इसके दो नाम—क्रूर—युद्ध-प्रिय—और अशान्त है। इसके दोनों नामों को नहीं लेना चाहिये। प्रजापतिने अपनी पुत्रीसे गमन करने की इच्छा की वह पिताकी मैथुनी सृष्टि रचना की इच्छा को जानकर मृगी वन आकाश में जाने लगी। उसके पीछे पिताने अकर्तव्य कर्म को मृगदेह धारण करके ढाँका—उस मृगके वधके लिये यज्ञ पुरुष भी त्रिशूल लेकर पीछे २ चला—उसको देखकर मृग भयभीत हुआ—मृग बोला हे तेजोमय पुरुष, मैं तेरेको पशुओं का स्वामी बनाऊँगा, मेरे समीप मत खड़ा हो। ऐसा कहा और उसका नाम पशुपति रक्खा। पशुपति मृगका वध करके रोया, कि उसका नाम रुद्र हुआ। वही रुद्र कालरूपसे संवत्सर—दयालू रूप आर्दा नक्षत्र रुद्र हुआ—तथा वध करने से मृगव्याध हुआ। ब्रह्माके अमृत देहका पूर्ण विकास सूर्य मण्डल है—उसका अन्तर्य्यामी ही चेतन रुद्र है। जैसे बीजसे वृक्ष—वृक्षमें फल—और फलमें बीज हैं तैसे ही माया के पूर्ण

विकास सूर्यमें मायिक हैं। और सूर्य किरणों के अभिमा[स]
ही देवता हैं। जो मृगरूप प्रजापति था सोही सोमात्मक ब्र[ह्मा]
की एक विभूति थी, जो मृगी थी सोही प्राण अग्निरूप-ब्रह्मा[की]
एक विभूति थी, जो संवत्सर मृगव्याध-आर्द्रा नक्षत्र, ये ती[न]
सूर्यमण्डल स्थित रुद्रकी तीन विभूति हैं। ब्रह्माने कहा,
रुद्र, तुम्हारा शान्त और शिव ये दो नाम विशेषण हैं-
दोनों नामों का सर्वदा प्राणिओंने स्मरण करना चाहिये
जो मैथुन के पश्चात् वीर्य गिरा—उसको अग्निने कठि[न]
किया। वह वीर्य कठिन होने से तेज का पुञ्ज होकर प्रज्वलि[त]
हो उठा॥

प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमभ्यध्यायद्दि-
वमित्यन्य आहुरुषसमिन्येतामृश्यो भूत्वा रो-
हितं भूतामभ्यैत्तं देवा अपश्यन्नकृतं वै प्रजा-
पतिः करोतीति ते तमैच्छन्य एन मारिष्य-
त्येतमन्योन्यस्मिन्नाविन्दंस्तेषां या एव घो-
रतमास्तन्व आसंस्ता एकधा संभरंस्ताः संभृता
एष देवोऽभवत्तदस्यै तद्भूतवान्नाम इति॥
भवति वै सयोऽस्यै तदेवं नाम वेद॥ तं देवा
अब्रुवन्नयं वै प्रजापतिरकृतमकरिमं विध्येति
स तथेत्य ब्रवीत्स वैवोवरंवृणा इति वृणीष्वेति

स एतमेव वरम वृणीत पशूनामाधिपत्यंतदस्यै तत्पशुमान्नाम इति ॥ पशुमान् भवति योऽस्यै तदेवं नाम वेद इति॥ तमभ्यायत्याविध्यत्सविद्ध ऊर्ध्व उदप्रपतत्तमेतं मृग इत्याचक्षते य उ एव मृगव्याधः स उ एव सया रोहित्सा रोहिणी यो एवेषुस्त्रिकाण्डा स एवेषुस्त्रिकाण्डा ॥ तद्वा इदं प्रजापते रेतः सिक्तमधावत्तत्सरोऽभवत्ते देवा अब्रुवन्मेदं प्रजापते रेतोदुषदिति यदब्रु-वन्मेदं प्रजापते रेतोदुषदिति तन्मादुषमभक्त-न्मादुषस्य मादुषत्वं मादुषंह वैनामै तद्यन् मानुषं सन्मानुषमित्याचक्षते परोक्षेण परोक्ष-प्रिया इव हि देवाः ॥

ऐ० ब्रा० १३–९–३३ ॥

प्रजापतिने अपनी पुत्रीमें कामेच्छा की–कितने दुहिता को–द्यौ–और कितने उषा कहते हैं–उस प्रजापतिकी कामनाको जानकर उषा मृगीरूप से भागी–उस मृगी के पीछे पिता मृगरूप धारण करके दौडा–मृगको दौडते देख देवोंने कहा यह प्रजा-पति अनर्थ करता है–वे देवता उसको देखकर मारनेके लिये परस्पर विचार करने लगे। हम सबोंके बीचमें एसा कौन है जो

इस मृगको मारे, इस विचारके पीछे निश्चय किया कि जो देवोंके मध्यमें उत्तम वीर व्यापक है उसका ध्यान करो। विचारते ही वह देव प्रगट हुआ। उन देवोंने उसका नाम र्य्यवान् रक्खा–जो कोई इस रुद्रके नामको जानता है ऐश्वर्य्यवान होता है। उस रुद्रको देवोंने कहा–हे रुद्र यह नि कर्म कर्त्ताको इस त्रिशूलमय बाणसे मार–रुद्रने कहा मैं वध करूँगा तुम क्या वर दोगे–देवोंने कहा जो माँगो सो दें पशुओंका स्वामी बनूँ। देवोंने कहा बहुत उत्तम। इस हेतु से नाम पशुपति हुआ। जो रुद्रके पशुपति नामको जानता है पशुओंके सहित धनका स्वामी बनता है। उस रुद्रने त्रिशू धनुष प्रत्यञ्चा बाण बनाकर–धनुषसे बाण छोडते ही मृ वध किया–वह मृग ऊपरको मुखकरके आकाशमें गिरा–मृ गिरते देखकर–वे सब देवता ही मृग ऐसा कहते भये–सो मृगशीर्ष नक्षत्र हुआ। जो मृगवेधक था सो ही मृग नक्षत्र रूपसे स्थित हुआ। यही घोर रुद्रका एक स्वरूप हाथ और जो पिताके वधसे दयायुक्त आर्द्रित हुआ–सो ही अघोर दूसरा हाथ आर्द्रा नक्षत्र हुआ। और जो मृगी थी ही रोहिणी नक्षत्र हुआ–तीन भेदवाला बाण था सो ही त्रि हुआ। यह घटना आकाशमें नक्षत्ररूपसे स्थित है। जो भूमिपर गिरा सो ही सरोवर हुआ, देवोंने कहा यह वीर्य प्र पतिका है–सो दोषरहित पवित्र है–मादुष होने से ही इस से मनुष्योंकी उत्पति हुई॥

तदग्निना पर्य्यादधुस्तन्मरुतोऽधून्वंस्तद-ग्निर्न प्राच्यावयत्तदग्निना वैश्वानरेण पर्य्यादधुस्तन्मरुतोऽधून्वंस्तदग्नि वैश्वानरः प्राच्यावयत्तस्य यद्रेतसः प्रथममुददीप्यत तदसावादित्योऽभवद्यद्द्वितीयमासीत्तद्भृगुरभवत्तं वरुणोन्यगृह्णीत तस्मात्सभृगुर्वारुणिरथ य तृत्तीयमदीदेदिवत आदित्या अभवन्येऽङ्गारा आसंस्तेऽङ्गिरसोऽभव न्यदङ्गाराः पुनरवशान्ता उददीप्यन्त तद्बृहस्पतिरभवत् इति ॥ यानि परिक्षाणान्यासंस्ते कृष्णा पशवोऽभवन्या लोहिनी मृत्तिका ते रोहिता अथयद्भस्माऽऽसीत्तपरुष्यं व्यसर्पद्गौरोगवय ऋश्य उष्ट्रो गर्दभ इति ये चैतेऽरुणाःपशवस्तेच इति॥ सो गायत्री ब्रह्म वै गायत्री ब्रह्मणे वैनं तं नमस्यति ॥

ऐ० ब्रा० १३-१०-३४ ॥

जो प्रजापति संबन्धी वीर्य देवोंने दोषरहित कहा था, सो वीर्य देवोंने अग्निको सौंपा। अग्निने सर्वत्रसे घेर वीर्यको कठिन किया—जब अग्नि सर्वत्रसे प्रज्वलित हो उठा—तब—सात वायुओंने वीर्यको सुखाया। भू, अग्नि, वायु युक्त होनेपर भी पिण्डाकार

बनानेमें समर्थ न हुआ। फिर देवोंने वैश्वानर अग्निको सौंपा। उस वीर्यको वैश्वानर अग्निने पिण्डाकार बनाया। जो पिण्डका पहिला प्रकाश था सो ही सूर्य उदय होते समयका आदित्यरूप तेज है। जो दूसरा प्रकाश था सो ही सूर्य उदय होनेके कुछ पीछेका तेज ही भृगु है—उस तेज अभिमानी भृगु ऋषिको रात्रि अभिमानी वरुणने अपना पुत्र बनाया और जो तीसरा पिण्डका तेज था, उससे आदित्य नामके देवगण उत्पन्न हुए। जो अङ्गार थे-उस समुहसे अङ्गिरा नामके ऋषिगण हुए तथा अवशान्त अङ्गार थे उनसे बृहस्पति उत्पन्न हुआ—जो शांत काले अङ्गार थे उनसे काले वर्णके पशु उत्पन्न हुए। अग्निसे जो भूमि दग्ध हुई उससे लालवर्णके पशु प्रगट हुए और भस्म थी उससे भयंकर चिल्लाने-वाले सिंह आदि--तथा वराह--रोझ--मृग--ऊँट--गधा आदि पशु उत्पन्न हुए। सब पशुओंका स्वामी रुद्र हुआ। गायत्री छन्दरूप मंत्र है और ब्राह्मण जाति ये ब्रह्माके मुखसे उत्पन्न हुए हैं। जो गायत्रीको जपता है सो ही गायत्रीरूप ब्राह्मण है। गायत्रीके सहित ब्राह्मण जाति इस सूर्यमण्डल मध्यवर्ती रुद्रको नमस्कार करती है॥

वाचं वाएतन्मध्यता आहूवा वरुन्द्धे तस्मादियॅ्वाङ्मध्यतो वदति मध्यतोऽहीयॅ्वाक् प्रजापति वैं स्वां दुहितरमध्यैदुष संतस्यरेतः परापतत्तेदेवा अभिगच्छन्त तस्मा-द्दीक्षितो न ददाति न पचति॥ द्यावापृथिवी

मिथुन ँ समभवतां तयोर्वीं३र्यम्पाक्रामत्त-त्कृष्णं प्राविशत् ॥ मै० शा० ३ । ६ । ५ । ६

सोम यज्ञादि में काण्डिका मंत्रको पठन करते समय वीचमें श्वास नहीं लेना—यदि ले लिया तो, आहुति वन्ध होती है और प्रायश्चित करना पडता है—फिर आहुति एकही स्वरसे आहुति दी जाती है। श्वास लेकर वीचमें ऋचायुक्त इस वाणी को बोलता है तो वाणी रुक जाती है, प्रथम वाणी को बोलता हुआ रुक जाता है, फिर श्वास लेकर बीचसे बोलता है, सोही यह मध्यवाणी है। यह रुकी हुई वाणी ही प्राण प्रजापति में लय होजाती है, फिर श्वास लेने के अनन्तर प्राण पितासे प्रश्वास रूपसे उत्पन्न होती है। इस हेतुसे यह वाणी प्रजापति रूप प्राणकी पुत्री है। यही मध्यकाल वाणीरूप पुत्री के साथ प्राणका मैथुन धर्म है। उषारूप वाणीमें प्राणका संकल्परूप वीर्य गिरता है। उस संकल्पमें सव इन्द्रियरूप देवता एक-भावको प्राप्त होते हैं, एकभाव ही चेतनके प्रतिलक्ष है, चेतन प्रायश्चितरूप वाण से प्राणके पापरूप शिरको भेदन करता है। जबतक प्रायश्चित नहीं किया जाता तबतक दीक्षित आहुति नहीं देता है और पुरोडाश भी नहीं पकाता है। इसलिये ही यज्ञमें त्रुटि के प्रायश्चित हैं। स्वर्ग और भूमिका जो मैथुन रूप समागम है सोही प्रातःकाल और सायंकाल है। सूर्य उप-स्थका वीर्य रूप तेज है—उषा पुत्री की योनी रात्री है—उस रात्रि-

रूप अन्धकार में वीर्य स्थान सूर्य प्रविष्ट होता है। उन दोनो द्यावाभूमीका जो समागम है सोही प्रातःकाल तथा सायंकाल है। इसलिये ही दोनों कालमें सूर्यदर्शन भोजशयन-निषेध है॥

सायंप्रातर्वै मनुष्याणां देवहितमशनमतिनीय ॥ मै० शा० ३-६-६ ॥

मनुष्योंका धर्म देवों को प्रातःकाल और सायंकाल में आहुति देकर फिर भोजन करना है। यजमानो वै प्रजापतिः॥ मै० शा ३-७-४ ॥ यज्ञकर्ताही प्रजापति है, यज्ञ पुत्री है, यज्ञ करना ही गमन है, होता आदि ही देवता है, मंत्रही रुद्र है, आहुति वाण है, और स्वर्गविरोधि पाप ही शिर है॥

अयसि लोहितेस आदित्य ऊर्ध्वं उदद्रवत्तस्यरेतः परापतदग्नियोंनिनोपागृह्णात् ॥ मै० शाखा० १-८-२ ॥

तेजको आकर्षण करनेवाली उषा तरुणीमें वह सूर्य ऊपर उदयरूपसे किरण फैंकता हुआ—उस सूर्यका तेज आकर्षण करनेवाली तरुणी उषामें गिरा। उस तेजरूप वीर्यको प्रात अग्निने होत्र रूप योनीसे ग्रहण किया॥

सूर्यस्य दुहिता ॥ ऋ० १-११७-१३ ॥
उषसः पुत्रः ॥ ऋ० ३-५८-१ ॥

आर्यः पत्नीरुषसः ॥ ऋ० ७-६-५ ॥

वाजस्य पत्नीः ॥ ऋ० ७-७६-६ ॥

दिवो दुहिता भुवनस्य पत्नी ॥

ऋ० ७-७५-४ ॥

उषसः पतिर्गवामभवदेक इन्द्रः ॥

ऋ० ३-३१-४ ॥

उषो न जारः ॥ ऋ० ७-१०-१ ॥

जारस्ययोषा ॥ ऋ० १-९२-११ ॥

योषासूरः ॥ ऋ० ७-६९-४ ॥

माता च यत्र दुहिता च धेनू ॥

ऋ० ३-५५-१२ ॥

दुहिता दुर्हिता दूरेहिता ॥

निरुक्त० ३-४-१ ॥

सूर्यंकी दुहिता उषा है। उषाका पुत्र सूर्य है। सूर्यका तेज ही उषा है, इस हेतुसे वह सूर्यंकी पुत्री है और उषाके उदयसे सूर्यका दर्शन होता है--इसलिये ही उषाका सूर्य पुत्र है। उषाका पालक इन्द्र है। अन्नकी पालक उषा है। द्यौकी पुत्री सूर्य--भुवनोंकी पालक है। किरणोंका जो स्वामी सूर्य है--सो ही एक उषाका पालक होता है। उषाके समान ही सूर्य प्राणियोंकी आयु उदय अस्तसे नाश करता है, सो ही जार है। सूर्यका मिश्रित तेज ही

उषारूप स्त्री है। जब भूमि यज्ञरूपसे द्यौ पुत्रीका पालन करती है तब भूमि माता और द्यौ पुत्री है। तथा द्यौ जलकी वर्षा से भूमिका पालन करती है, इसलिये ही द्यौ माता और भूमि पुत्री है। मुख्य तेज दूर स्थित होवे। मुख्यस्वरुप ही अवस्थान्तर से दूर प्रतीत होवे सो ही दुहिता है। जैसे सूर्यका तेज ही उषारूपसे अवस्थान्तर भासे है, तैसे ही संकल्पीकी संकल्प क्रिया ही, आधार मायिक से अधिष्ठित माया पृथक् रूप से भासती है, सो ही दूरस्थित दुहिता है॥

योषा वै सरस्वती वृषापूषा ॥

श० ब्रा० २-५-१-११ ॥

मनोहि वृषा ॥ श० ब्रा० १-४-४-३ ॥

मन एव सविता ॥ वाक् सावित्री ॥

जै० आर० ४-२७-१५ ॥

वाग्वै विराट् ॥ मै० शा० २-२-१० ॥

प्रजापतिर्हि वाक् ॥ तै० ब्रा० १-३-४-५ ॥

विराट् वरुणस्य पत्नी ॥

गो० ब्रा० उ० २-९ ॥

वरुण एव सविता ॥ जै० आर० ४-२७-३ ॥

उषारूप सरस्वती ही स्त्री है, और सूर्य ही जलवर्षारूप वीर्य-सिञ्चन-कर्ता पुरुष है। मनही वृषा सविता है। सावित्री

ही वाणी विराट् प्रजापति नामवाली है। और वरुणरूप सूर्य की स्त्री विराट् है।

वाग्वै सृष्टा चतुर्धाव्यभवत् ॥ वाग्वै सरस्वती वाचा यज्ञः संततो वाचै व यज्ञँ संतनोति ॥ मै० शा० ३-६-८ ॥

वाणी रची जो चार प्रकार से व्याप्त हुई। वाणी ही सरस्वती है, वाणीसे यज्ञ विस्तृत हुआ। वाणी ही यज्ञका विस्तार करती है ॥

विराट् सृष्टा प्रजापतेः ॥ ऊर्ध्वारोहद्रोहिणी ॥ योनिरग्नेः प्रतिष्ठिति ॥

तै० ब्रा० १-२-१-२७ ॥

रोहिणी भवति ब्रह्मणोरूपम् ॥

मै० शा० २-५-७ ॥

रोहिणी सोमो रेतोधाः मै० शा० १-६-९ ॥

अग्नेर्योनिः सोमो रेतोधाः

का० शा० १०-४ ॥

सोमो वै प्रजापतिः श० ब्रा० ५-१-३-७ ॥

सोमः सर्वादेवताः ॥ ऐ० ब्रा० २-३ ॥

रेतो वै सोमः ॥ श० ब्रा० १-९-२-९ ॥

अग्निर्वै विराट् ॥ कपिष्ठल० शा.० २९-७ ॥

सोमो वै वृत्रः कपि० शा० ४१-३ ॥

वृत्रो वै सोम आसीत् ॥

श० ब्रा० ३-४-३-१३ ॥

सोमो राजा मृगशीर्षेण आगन् ॥

तै० ब्रा० ३-१-१-२ ॥

मायिनं मृगंतमुत्वं मायया वधीः ॥

ऋ० १-८-७ ॥

त्रिवृद्धि शिरः ॥ श० ब्रा० ८-४-४-४ ॥

मृगधर्मी वै यज्ञः ॥ तां० ब्रा० ६-७-१० ॥

यज्ञस्य शीर्षच्छिन्नस्य पितॄनगच्छत्

श० ब्रा० १४-२-२-१२ ॥

पुरुषो वै यज्ञस्तस्य शिरः ॥

शां० ब्रा० १७-७ ॥

सोमाय मृगशीर्षाय ॥

तै० ब्रा० ३-१-४-३ ॥

प्रजापतिर्वै यज्ञः ॥ ऐ० ब्रा० २-१७ ॥

एतद्वै प्रजापतिः शिरोयन्मृगशीर्षं ॥

श० ब्रा० २-१-२-८ ॥

रोहिणी नक्षत्रं प्रजापतिर्देवता ॥ मृग-शीर्षं नक्षत्रꣳ सोमो देवता ॥ आर्द्रा नक्षत्रꣳ रुद्रो देवता ॥

तै० शा० २-४-४-१० ॥

मरुतो देवता इन्वका नक्षत्रं॥ रुद्रो देवता बाहुर्नक्षत्रं ॥

काठक शा० ३९-१३

रुद्रस्य बाहु मृगयवः ॥

तै० बा० १-५-१-२ ॥

प्रजापति से विराट् स्त्रीकी रचना हुई। वह ऊपरको चली गई सो ही रोहिणी अग्निके स्वरूपमें स्थित हुई। रोहिणी प्रजापतिका ही स्वरूप है। अग्निरूप रोहिणी सोमके तेजको धारण करती है। अग्निरूप रोहिणीमें सोम वीर्य धारण करता है। सोम ही प्रजापति है और सर्व देवस्वरूप है—सोम ही वीर्य है। अग्निरूप रोहिणी विविध रूप है। उस अग्नि रूप प्रकाशको आच्छादन करती है। सो ही वृत्र दैत्यरूप सोम है। इसी भोग्य सोमने अपने भोक्ता अग्नि-रूप रोहिणीको आच्छादन किया था। यह सोम ही वृत्र रूप था। सोम राजा ही मृगशीर्ष नक्षत्ररूप से विराजमान हुआ। हे परमैश्वर्यसम्पन्न इन्द्र (रुद्र) तुमने मायारूपधारी मृग वृत्रको—मायिक मृग व्याधस्वरूप से मारा। यह मृग तीन नक्षत्रमय शिरवाला है। यज्ञ—भोग्यरूप मृगका शिर कटकर पितृमार्ग अन्तरिक्षमें प्राप्त हुआ। यज्ञ ही भोग्यरूप मृग है।

यह यज्ञ पुरुषका शिर है। मृग स्वरूप धारी सोमके लिये। प्रजा पालक यज्ञ है। जो मृगशीर्ष नक्षत्र है–सो ही प्रजा-पालक सोमका शिर है। रोहिणी नक्षत्रका (प्रजापतिः) अग्नि देवता, मृगशीर्ष नक्षत्रका सोम देवता–आर्द्रा नक्षत्रका रुद्र देवता–त्रिकाण्डरूप वाण–त्रिशूलका मरुत देवता हैं। एक वचन दो वचन रूप दो हाथात्मक मृग व्याध–और आर्द्राका देवता रुद्र है। रुद्रके दो हाथरूप–आर्द्रा नक्षत्र–और (मृगयवः) मृग व्याध है ॥

अग्निर्वै प्रजापतिः ॥ कपि० शा० ७-१ ॥

अग्निका नाम प्रजापति है।

ब्रह्माका अग्नि सोम भोक्ता भोग्य स्वरूप है। इसकी विभूति रोहीणी और मृगशीर्ष नक्षत्र हैं–और सूर्यमण्डल मध्यवर्ती चेतन पुरुष ही मृगव्याध घोर तथा आर्द्रा अघोर स्वरूप है। यह अधिदैव घटना संसारकी संहारक और पालक है। दूसरी नित्य अधिदैव सूर्य और उषाकी भी पालक और आयुनाशक है। तीसरा अध्यात्मरूप प्राण पिता और वाणी पुत्री है। चतुर्थ-यजमान पिता, यज्ञ पुत्री है–यज्ञ और यजमानका सम्बन्ध होनेसे ही यजमानका शिररूप पापको होतारूप रुद्र त्रिविध ऋग्-यजु–साम स्तुतिमय वाणसे काटता है–तब यजमानके सहित पत्नी–पुरोहित और होता स्वर्गमें नक्षत्ररूपसे विराजते हैं। पाँचवाँ–सोम देवताका सोमलता प्रजा है–उन प्रजारूप सोमका इस तीन सवनमें तीन शिररूप भाग है। मृग नाम यज्ञका है। उसका

मुख्य कर्म सोमरस निष्पीडन है—इसलिये यज्ञका शिर सोम मृगशीर्ष है। और यज्ञ अग्नि रोहिणी है, जिस अग्निहोत्रके द्वारा होताओंके सहित यजमान स्वर्गमें रोहण करता है। छठा विष्णु ही यज्ञ है—और यज्ञरूप आहुतियें सोम है—उस सोमका सार भागरूप शिर सूर्यमण्डलमें जाता है—आहुति समूहवर्ग है—यह वर्ग सूर्यमें प्राप्त होता है—इसलिये ही सूर्य यज्ञका प्रवर्ग्यरूप उत्तम शिर है। और यज्ञ रोहीणीके पीछे चलनेवाला यजमान प्रजापति है और होता रुद्रने यजमानके पापमय वृत्रका नाश किया॥

विष्णोरेवनाभा अग्निंचिनुते॥

का० शा० २०–७॥

स्त्रीवैवेदीः पुमान् वेदः का० शा० ३१–६॥

यजमानो वै यज्ञपतिः। इन्द्रियं वा आपः॥

का० शा० ३१–२॥

धर्मोह्यापः॥ श० ब्रा० ११–१–६–२४॥

प्राणा इन्द्रियाणि॥ तां० ब्रा० २–१४–२॥

इन्द्रियं वा इन्द्रं॥ वैष्णवो वै सोमः॥

रुद्रो वा अग्निः॥ आदित्यो वै सोमः॥ सविता वै देवानामधिपतिः॥ का० शा० २६–२॥

यो वै विष्णुः सोमः सः॥

श० ब्रा० ३–३–४–२१॥

प्राणो वै सोमः ॥ तां० ब्रा० ९-९-१ ॥

अन्नं सोमः ॥ शां० ब्रा० ९-६ ॥

गिरिषु हि सोमः ॥ श० ब्रा० ३-३-४-७ ॥

(विष्णोरेव) यज्ञके ही (नाभौ) बीचमें अग्निको स्थापन करो। यज्ञवेदी-कुण्ड ही स्त्री है उस यज्ञके बीचमें चयन किया अग्नि वेदलिंग ही पुरुष है। यज्ञपति ही यजमान है-यज्ञधर्म ही व्यापकबल सूर्यस्वरूप है। यज्ञ विष्णु है-और सोमरस ही वैष्णव है-रुद्र ही अग्नि है-सूर्य ही प्राणरूप सोम है। सूर्यमण्डलव्यापी किरणरूप देवताओंका स्वामी सविता है। जो सूर्यमण्डल (विष्णुः) है सो ही ग्राह्य प्राणरूप सोम ही अन्न है। सोमलताकी उत्पत्ति-मुँजवान हेमकूट पर्वतादियोंमें है॥

तस्य धनुरार्त्निरूर्द्ध्वा पतित्वाशिरोऽच्छिनत्स प्रवर्ग्योऽभवत् ॥ तां० ब्रा० ७-५-६ ॥

संवत्सरो वै प्रवर्ग्यः श० ब्रा० १४-३-२-२२ ॥

अग्निर्वायुरादित्यस्तदेते प्रवर्ग्यः ॥

श० ब्रा० ९-२-१-२१ ॥

वार्त्रघ्नं वै धनुः ॥ श० ब्रा० ५-३-५-२७ ॥

उस यज्ञ पुरुषके धनुषकी डोरी कटनेसे शिर आकाशमें गिरा सो ही संवत्सररूप प्रवर्ग्य हुआ। अग्नि-वायु-सूर्य-ये तीन

देवता हैं, सो ही प्रवर्ग्यरूप हैं। पौर्णमासकी हवि वार्त्रघ्नरूप धनुष है॥

यज्ञस्य वै शिरोऽच्छिद्यत॥ ततो यो रसोऽस्त्रवत्सावशाभवत्॥ कपि० शा० ४९-९॥

श्रीर्वै शिरः॥ श० ब्रा० १-४-५-५॥

श्रीर्वै सोमः॥ कपि० शा० ४०-५॥

अथैष एव वृत्रो य चन्द्रमाः॥

श० ब्रा० १-६-४-१३॥

अन्नं वै पृश्निः॥ तै० ब्रा० २-२-६-१॥

इयं वै वशापृश्निः॥ श० ब्रा० १-८-३-१५॥

यज्ञका शिर कटा उससे जो रस निकला सो ही वशारूप भूमि हुई। सोमका नाम श्री है—श्रीरूप सोम ही उत्तम अङ्ग शिर है। यह तमरूप परप्रकाशी जो वृत्र है सो ही चन्द्रमा है। कृष्ण पक्षमें चन्द्रमा वृत्र है। आमावास्याको पंचदशकलारूप देहसे रहित षोडशकलारूप शेष एक शिर है—उस एक कलामय शिरसे जो पंचदश कलारूप शुक्ल पक्षमें रस विकास होता है—उस प्रकाशसे भूमि अनेक अन्नादिके रूपमें प्रगट होती है, सो ही भूमी वशा है। सूर्यकी एक सुषुम्ना नामकी किरणसे चन्द्रमा प्रकाशित होता है। सूर्य इन्द्र है—और कृष्ण पक्ष ही वृत्र है और शुक्ल-पक्ष ही वृत्रका शिर है॥

प्रजापतिः प्रजापतिकामस्तपोऽतप्यत तस्मात्तप्तात्पञ्चाजायन्ताअग्निर्वायुरादित्यश्चन्द्रमा उषाः पंचभीतानब्रवीद्यूयमपितप्यध्वमिति तेऽदीक्षन्त तान्दीक्षितांस्तेपानुषाः प्रजापत्याप्सरोरूपं कृत्वा पुनरस्तात्प्रत्युदैत्तस्यामेषां मनः समपतत्तेरेतोऽसिञ्चन्त ते प्रजापतिं पितरमेत्याब्रुवन्रेतो वा असिञ्चामह इदं नो मामुयाभूदिति स प्रजापति हिरण्यमयं चमसमकरोदिषुमात्रमूर्ध्वमेवं तिर्यञ्चं तस्मिन्नेतत्समसिञ्चत्ततउदतिष्ठत् ॥ सहस्राक्षः सहस्रपात्सहस्रेण प्रतिहिताग्निः॥ स प्रजापतिं पितरमभ्यायच्छत्तमब्रवीत् ॥

शांखायन ब्रा० ६-१-९ ॥

ब्रह्माने प्रजा रचनेकी इच्छासे विचारमय तप किया। उस तपके अनन्तर उस ब्रह्माने सत्यसंकल्पमय तपसे अग्नि—वायु—सूर्य—चन्द्रमा—उषाको उत्पन्न किया। फिर ब्रह्माने पाँचोंको कहा तुम सबही मेरे समान प्रजा रचनेके लिये तप करो। ऐसा पिताके वचनको सुनकर उन पाँचोंने प्रजा रचनेके लिये दीक्षा ली। उषा भी अपने प्रथम रूपको त्यागकर अप्सरारूप धारणकरके सन्मुख खडी हुई। उसको देखकर उसमें चारोंका मन गया और

वीर्य सिञ्चन करनेको तैयार हुए। फिर विचारकर पिताके समीप गये और कहने लगे, हे पितामह हम चारों इस अप्सरामें वीर्य सिञ्चन करेंगे, आप हमको निषेध नहिं करना। उनकी वाणीको सुनकर ब्रह्माने चमसके आकारका दिव्य तेजोमय वाण त्रिशूल रचा। वह ऊपरसे तीक्ष्ण और नीचेसे तिरछा था। उस वाणरूप चमसमें मायिक रुद्रका ध्यानरूपसे चिन्तवन् किया—उस संकल्प सिंचनके अनन्तर ही एक पुरुष प्रगट हुआ जो अनन्त मुख-नेत्र हाथ चरणयुक्त था। उसके तेजोमय देहमें असंख्य रुद्रगण भी थे। उस पुरुषने पिता ब्रह्माको कहा मेरेको किस लिये स्मरण किया, उस कार्यके सहित मेरे लिये कौन स्थान और मेरा नाम क्या है सो कहो। ब्रह्माने कहा हे कुमार तेरा नाम भव है और जल तेरा निवासस्थान है। जो भव नामसे उपासना करेगा सो प्राणि सुखी होवेगा। जो द्वेष करेगा वह प्राणि दुःखी होवेगा। तेरा दूसरा नाम सर्व है और अग्नि निवासस्थान है। इस नामकी उपासना करेगा वह प्राणि शत्रुरहित होगा। जो द्वेष करेगा उसका सर्वस्व नाश होगा। तेरा तीसरा नाम पशुपति है और वायु निवासस्थान है, जो प्राणि इस नामकी उपासना करेगा वह उपासक सव प्राणियोंका स्वामी वनेगा, जो द्वेष करेगा वह पराधीन दुःख भोगेगा। तेरा चतुर्थ नाम उग्र है और औषधी वनस्पति निवासस्थान है। जो उग्रकी उपासना करेगा वह अन्नादिसे भरपुर रहेगा। जो द्वेष करेगा वह दुःखी रहेगा। पाँचवां तेरा नाम (महानदेव) महादेव है और निवासस्थान सूर्यमण्डल है। इस सूर्यवर्ती पुरुषकी गायत्री मंत्रसे उपासना करेगा वह सब

प्रकारसे सुखी रहेगा। जो द्वेषी गायत्री—संध्याको त्याग वेदविरुद्ध जप करेगा वह सर्वदा दुःखी रहेगा। तेरा छठा नाम रुद्र है और निवासस्थान चन्द्रमा है। इस नामकी उपासना करेगा वह सर्वत्र सुखसे जीवन व्यतीत करेगा। जो द्वेष करेगा वह सर्वत्र दुःख भोगेगा। तेरा सातवाँ नाम ईशान है और निवासस्थान पृथिवी है। इस नामके देवकी उपासना करेगा वह पुत्र पौत्रादिक सुख पावेगा, जो द्वेष करेगा वह पुत्र धन आदिसे दुःखी रहेगा। तेरा आठवाँ नाम अशनि है—मृड, और इन्द्र निवासस्थान है। इस देवकी उपासना करेगा उसकी अकाल निन्दित मृत्यु नहीं होवेगी, जो द्वेष करेगा उसकी अल्प आयु अकाल मृत्यु होवेगी॥

प्रजापतिर्वा एक आसीत्सोऽकामयत बहुमनुस्यां प्रजायेयेति सआत्मानमैद्द समनोऽसृजतत्तन्मन एकधासीत्तदात्मा न मैद्द तद्वाचमसृजत सावागेकधासीत्सात्मानमैद्द सा विराजमसृजत सा विराडेकधासीत्सात्मा न मैद्द सागामसृजत सा गौरेकधासीत्सात्मा न मैद्दसेडामसृजत सेडैकधासीत्सात्मा न मैद्दसेमान्भोगानसृजत यैरस्या इदं मनुष्या भुञ्जते॥

मै० शा० ४—२—३॥

ब्रह्मा एक ही था। उसकी इच्छा हुई मैं एक ही बहुत होऊँ। इस संकल्पके पश्चात् उसने अपने समष्टि स्वरूपको ही व्यष्टि स्वरूपोंमें (ऐद)करनेकी इच्छा की। उस ब्रह्माने मनको रचा। वह मन एक था। उस मनने अपनेको व्यक्त करनेकी इच्छा की। उस सूत्रात्माने वाणीको रचा। वाणी एक ही थी सो कार्यरूप वाणीने व्यक्त होनेके लिये इच्छा की। उसने स्थूल विराट्को रचा अर्थात् स्वयं विराट् रूप हो गई—वह विराट् एक ही था उसने अपनेको विशेषरूप से प्रगट करनेकी इच्छा की। फिर विराट्ने अपने ऊर्ध्व कपाल द्यौ रूप गौ को रचा। उस द्यौरूप गौने अपने अधोभागवर्ती भूमिरूप इडाको रचा। भूमिने भोगोंको उत्पन्न किया। इस भूमिके जिन भोगोंके द्वारा यह सब जगत् पदार्थों से व्याप्त हैं उन पदार्थोंको मनुष्य आदि सब भोगते हैं॥

अथ यः स प्राण आसीत्स प्रजापतिरभवत ॥ स एष पुत्री ॥ जै० आर० २-२-६ ॥

मनःपुमान्वै प्राणोवागिति स्त्री ॥
जै० आर० ४-२२-१२ ॥

अनन्तं वै मनः ॥ श० ब्रा० १४-६-१-११ ॥

मनो ब्रह्म गो० ब्रा० २-१० ॥

वाग्वै ब्रह्म ॥ ऐ० ब्रा० ६-३ ॥

वाक् सावित्री ॥ आकाश सावित्री ॥
जै० आर० ४–२–२७–१५–६ ॥

मन एव पिता वाङ्माता बृ० उ० १–५–७ ॥

पुरुषः सुपर्ण ॥ श० ब्रा० ७–४–२–५ ॥

वागेव सुपर्णी ॥ श० ब्रा० ३–६–२–२ ॥

इयं वै कद्रुर्द्यौः सुपर्णी ॥
कपिष्ठ० शा० ३७–१ ॥

द्यौः सावित्री ॥ पुरुष एव सविता ॥ स्त्री सावित्री ॥ जै० आर० ४–२७–११–१७ ॥

विराड्वैराजः पुरुषः ॥ का० शा० ३–३ ॥

वाग्वाअजोवाच वै प्रजा विश्वकर्मा जजान ॥ श० ब्रा० ७–५–२–३१ ॥

वाग्वै विश्वकर्म ऋषिर्वाचाहीदं सर्वं कृतं ॥ तस्माद्वाग् विश्वकर्म ऋषिः ॥
श० ब्रा० ८–१–२–९ ॥

विराजो वै योनेः प्रजापतिः प्रजा असृजत। वैराजो वै पुरुषः ॥ मै० १–१०–८–१३ ॥

मनसा वै प्रजापतिर्यज्ञमतनुत ॥ मनो वै चित्तं॒ वाक् चितिः भगश्च क्रतुश्च ॥ इति प्रजापतिर्वै भगो यज्ञः क्रतुः स इमाः प्रजा भगेनाभिरक्षति ॥ मै० शा० १-४-१४-१५ ॥

जो कारण सो ही प्राण था और सो ही प्रजापति सूत्रात्मा हुआ, सो सूक्ष्म मन ही यह वाणी विराट्रूप पुत्री हुई। मन पुरुष ही प्राण है, और विराट् वाणी ही स्त्री है। अनन्तरूप मन ही ब्रह्म है। वाणी ही ब्रह्म सावित्री आकाश नामवाली है। मन पिता और वाणी माता है। पुरुष सुपर्ण है और वाणी सुपर्णी माया है। यह भूमि कद्रू है-और द्यौ सुपर्णी है। द्यौ सावित्री स्त्री है-और पुरुष ही सविता है। विराट् ही वैराज पुरुष है। वाणी ही अज-विश्वकर्मा है-वाणी से ही यह प्रजा उत्पन्न हुई। वाणी विकासशील जगत्कर्त्ता है। इस वाणी के द्वारा यह सब जगत् रचा गया है इसलिये ही वाणी विश्वकर्म ऋषि है। विराट्योनि से हिरण्यगर्भने प्रजा रची। विराट्से जो प्रथम मनुष्याकार प्रगट हुआ सो ही वैराज पुरुष मनु है। ब्रह्माने हिरण्यगर्भ देहके द्वारा विराट् यज्ञका विस्तार किया। मन ही संकल्प विचार है और विचारकी अभिव्यक्ति-क्रिया चित्ति वाणी है-इस वाणीको पूर्ण अवस्था ही विराट् है। यह मन भग है और वाणी संकल्परूप क्रतु है। यह मनात्मक प्रजापति ही भग है और यज्ञ ही संकल्प है। संकल्पी चेतन भग-

वान्की बहु स्वरूपात्मक संकल्पोन्मुख क्रिया ही भग है-इस भगमय संकल्पको पूर्ण विकास अवस्था ही यज्ञ क्रतु है सो ही विराट् है। वह ब्रह्मा अपनी समष्टि महिमारूप भगके द्वारा इन प्रजाओंको उत्पन्न करके पालन करता है॥

वाग्विराट्॥　　मै० शा० २-२-१०॥

वाग्योनिः॥　　ऐ० ब्रा० २-३८॥

योषाहि वाक्॥　　श० ब्रा० १-४-४४

वाग्या अस्य स्वो महिमा॥

श० ब्रा० २-२-४-४॥

तपो वै तप्त्वा प्रजापतिर्विधायात्मानं मिथुनं कृत्वा॥　　मै० शा० १.९-६॥

स्त्री कामा वै गन्धर्वावाचं स्त्रियँ कृत्वा मायानुपाव सृजाम॥ ब्रह्म गंन्धर्वा बहु वै गन्धर्वेषु मिथुनी भवन्ति॥

का० शा० ४-१॥ कपि० शा० ३७-१॥

विराट् ही वाणी योनी स्त्री है। इस भूमाकी स्वयं महिमारूप वाणी है। ब्रह्माने अपने हिरण्यगर्भ देहसे एक विराट् देहको रचनेके लिये विचार करके अपनी सूक्ष्म देहसे स्थूल जोडीको रच कर प्रसन्न हुआ। स्त्री की इच्छवाले गन्धर्वने वाणीरूप स्त्री

मायाको रचा। ब्रह्म मायाके द्वारा अनन्तस्वरूप धारण करता है सो ही ब्रह्म गंधर्व है। एक देव मायासे बहुत हो गया। उन बहुत गंधर्व गंधर्वियोंमें जोडी हुई उस जुगल जोडीसे असंख्य स्त्री पुरुष हुए ॥

यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातꣳ स्याद्वाचाऽरम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यं ॥ ता० आर० ६ । १ । ४ ॥

उद्दालक ऋषिने कहा, हे प्रिय पुत्र श्वेतकेतु, जैसे एक मिट्टिके ढेलेका ज्ञान होनेसे सब मृतिकाके कार्यमात्रका ज्ञान होजाता है तैसे ही जो कुछ भी वाणीका विषय विकारस्वरूप है सो सब ही नाम मात्र है, किन्तु मृत्तिका ही सत्य है।

सुपर्णं विप्राः कवयो वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति ॥ ऋ० १० । ११४ । ५ ॥

एक पुरुष है, किन्तु वाणीके विकारी कार्योंके द्वारा ज्ञानी ऋषि उस चेतन पुरुषको असंख्य नामरूपसे कल्पना करते हैं।

तपसा वै प्रजापतिः प्रजा असृजत ॥

कपि० शा० ४ । ३ ॥

प्राणेभ्यो वै प्रजापतिः प्रजा असृजत ता प्रजायंते कपि० शा० ७ । ७ ॥

अद्भ्यः प्रजाः प्रजायन्ते ॥

कपि० शा० ६३ । १ ॥

ब्रह्माने अपने ज्ञानसे प्रजा रची। समष्टि प्राणशक्तिसे ब्रह्मा प्रगट हुआ। फिर उस समष्टि प्राणसे ही ब्रह्मा विराडात्मक अधिदैव प्रजाको रचता है। उन व्यापक अधिदैवोंसे व्यष्टि प्रजायें उत्पन्न होती हैं। व्यापक पांच प्राण शक्तिसे प्रजायें प्रगट होती हैं।

पञ्च वै ब्राह्मणस्य देवता अग्निः सोमः सविता बृहस्पतिः सरस्वती ॥ मै० शा० ४-५-८ ॥

प्रथमो ब्रह्म वा अग्निः ॥ द्वितीयो वाग्वै सरस्वतिः ॥ तृतीयः क्षत्रं वै सोमः चतुर्थोऽन्नं वै पूषा ॥ पञ्चमो ब्रह्म वै बृहस्पतिः ॥

शां० ब्रा० १२-८ ॥

प्रजापतिर्ह्येतेभ्यः पञ्चप्राणेभ्यो देवान् ससृजे ॥

गो० ब्रा० उ० ४-११ ॥

तीनों वर्ण द्वीजाति मात्रके अग्नि, सरस्वती वाणीरूप वायु-सविता-सोम-बृहस्पति-ये पाँच देवता हैं। सूर्यसे वर्षा-वर्षासे अन्न होता है। इसलिये सूर्य पूषा है। यहाँ पर पुलिंगरूप सरस्वती है-सो ही वायु है। फिर वही वायु स्त्रीरूप वाणी होता है। अथर्वा प्रजापतिने इन पाँच प्राणोंसे विभूतिरूप अन्य पाँच

जातिके देवताओंको उत्पन्न किया । प्रजापतिर्वा अथर्वा । कपि. शा. २९–२ ॥ विराट् अभिमानी चेतन अथर्वा प्रजापति है और विराट्के मुख्य अङ्गरूप पाँच देवता अधिदैव-स्वरूप हैं ।

स वै नैव रेमे तस्मादेकाकी न रमते सद्वि-तीयमैच्छत् सहैतावानास यथा स्त्री पुमाꣳ सौ संपरिष्वक्तौ सइममेवात्मानं द्वेधापातयत्ततः पतिश्च पत्नी चाभवतां तस्मादिदमर्धबृगल-मिवस्व इति हस्माऽऽह याज्ञवल्क्यस्तस्मादय-माकाशः स्त्रिया पूर्यत एव ताꣳ समभवत्ततो मनुष्या अजायन्त ॥

उस प्रसिद्ध ब्रह्माने विचार किया कि मैंने यह विराट् देहरूप स्त्री रची-इसके दो भाग करना चाहिये, क्योंकि एक पुरुष स्त्री के विना यज्ञादि क्रिया नहीं कर सकता—तो—एक विराट् भी रक्षण नहीं कर सकेगा—इसलिये मैं दूसरे को रचुँ—फिर उसने जोडीकी इच्छा की, जैसे पसिद्ध लोकमें मैथुन के समय स्त्री पुरुष परस्पर आलिङ्गन करते हैं—तैसे ही वह इस प्रकारकी इच्छा युक्त हुआ । उसने अपने स्थूल विराट् देहको दो भागोंमें विभक्त किया, उस विभाग के पीछे वे दोनो स्त्री पुरुष हुए । सीपीके समान यह विराट् था उसके आधे भागसे पुरुष और

आधे भागसे स्त्री हुई, ऐसा याज्ञवल्क्यने कहा। उस स्त्री पुरुषसे यह ब्रह्माण्ड पूर्ण हुआ। संकल्प अभिमानी मनुने–उस वाणी अभिमानी अनन्तरूपा के साथ समागम किया। उस संगसे मनुष्य आदि प्रगट हुए॥

सोहेयमीक्षाञ्चक्रे कथं नु मात्मन एव जनयित्वा संभवति हन्ततिरोऽसानीति सा गौ-रभवदृषभ इतरस्ताꣳ समेवाभवत्ततो गावोऽ-जायन्त वडवेतराऽभवदश्ववृषइतरा गर्दभीत-रागर्दभइतरस्ताꣳ समेवाभवत्तत एक शफ-मजायताजेतराऽभवद्वस्तइतरोऽविरितरा मेष-इतरस्ता समेवाभवत्ततोऽजोवयोऽजायन्तैवमे-व यदिदं किञ्चमिथुनमापिपीलिकाभ्यस्तत्स-र्वमसृजत ॥

सो समष्टि स्त्री शतरूपा विचार करने लगी। यह प्रजापतिने अपने दो भाग कर आधेसे मेरेको उत्पन्न किया–फिर मेरे साथ समागम करता है। इसलिये मैं दुःखी हुई इस देहको त्याग कर अन्य देहको धारण करूँ। इस विचार के अनन्तर यह सावित्री अन्तर्धान हो गौ बन गयी। यह देखकर मनु बैल बन गया–फिर बैल गौका समागम हुआ–फिर उनसे गौ जाति उत्पन्न हुई।

पुनः शतरूपा घोडी और मनु घोडा बन गया—सरस्वती गधी और मनु गधा बन गया। इनके समागमसे एक खुरवाले घोडे, गधे आदि जाति उत्पन्न हुई। उषा बकरी प्रजापति बकरा, और द्यौ भेडी तथा प्रजापति मेंढा बना—उनके समागमसे बकरी भेड की जाति उत्पन्न हुई—इस प्रकार ही यह जो कुछ भी कोडी चींटी पर्य्यन्त स्त्री पुरुषरूप द्वन्द्व है उन सबको रचा। उत्पन्न होने-वाले प्राणियोंके कर्मोंसे प्रेरित हुई विराट् अनन्तरूपा और मनुके वारंवार यही बुद्धि हुई तथा जगतकी रचना होती चली गयी। जैसे ऐन्द्रजालीके संकल्पसे प्रेरित हुई माया असंख्यरूप धारण करती है, तैसे ही मायिक संकल्पोके मनु संकल्पसे प्रेरित हुई बुद्धि चातुर्य्य—माया—वाणी अनन्तर स्वरूप धारण करती है। सो ही शतरूपा है॥

सोऽवेदहं वावसृष्टिरस्म्यह ँ हीद ँ सर्वम सृजक्षीति ततः सृष्टिरभवत्सृष्ट्या ँ हास्यैतस्यां भवति य एवं वेद ॥

उस प्रजापतिने इस सब विश्वको रचकर जाना—मैं ही जगत्रूप हूँ, क्योंकि मैंने इन सबको रचा है। उसने एसा जाना था इसलिये ही वह नामरूप सृष्टिवाला हुआ। जो कोई उपासना करता है मैं विश्वरूप हूँ, सो ही प्रजापतिके समान इस जगत्का कर्त्ता होता है। अर्थात् प्रजापतिमें लीन हो जाता है॥

ॐ नासदासीनीति सूक्तस्य परमेष्ठी ऋषिः॥ त्रिष्टुप्छन्दः ॥ प्रजापतिर्देवता ब्रह्म सायुज्य मोक्षार्थे विनियोगः ॥ नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजोनो व्योमापरोयत् ॥ किमावारीवः कुहकस्यशर्म्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम् । १ ।

प्रश्न—उस महा प्रलयमें विकारी कारण सत्ता नहीं थी-सूक्ष्मक्रिया हिरण्यगर्भ भी नहीं था और विराट्के त्रिभागभूमि, आकाश, द्यौ नहीं थे। जिस स्थूल विराट्से परे (अम्भः) अलोक—मह—जन—तप—सत्यलोकका नाम भी नहीं था तो उस अगाध घोर महाप्रलयमें इस जगत्का समष्टि चेतन स्वरूप किससे ढका हुआ, ऐन्द्रजालीकी मायाके समान किस अवस्थामें था ॥

इदं वा अग्ने नैवकिञ्चनाऽसीत् ॥ नद्यौरासीत् ॥ न पृथिविनान्तरिक्षं ॥

तै० ब्रा० २ । २ । ९। ९॥

यह जगत् उत्पत्तिके पूर्व कुछ नामरूपसे भी नहीं था; भूमि—आकाश ओर द्यौ भी नहीं था ॥

असच्च सच्च ॥ ऋ० १ । १० । ५ । ७॥

असच्चाव्याकृतं वस्तु ॥ सच्च व्याकृतं ॥

उग्दीथाचार्यभाष्य ॥

असत् अप्रकट—अव्याकृत—विकारी वस्तु है। और प्रगट् क्रिया सत् हिरण्यगर्भ है ॥

यथा कुहकस्यैन्द्रजालिकस्यः—मायया रचितं ॥ ऋ० गृ० १० । १२९ । १ ॥ रावणभाष्य।

जैसे ऐन्द्रजालिक अपनी मायाके जालको रचकर उसमें अदृश्य होजाता है—तैसे ही मायिक महेश्वर अपनी मायासे जगत् खेलको रचकर फिर उस जगत् खेलका अपनी मायामें लय कर महाप्रलय समाधिमें छिप जाता है ॥ १ ॥

मृत्युरासीदमृतं नतर्हिरात्र्याअह्न आसीत्प्रकेतः । आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किञ्चनास ॥ २ ॥

जीवन मरण धर्म नहीं था। रात्रि दिनका विभाग करनेवाला सूर्य चिह्न भी नहीं था। तो क्या था ? कर्ता भगवान स्वयं—प्रजापति है—जैसे योगी जाग्रतादि तीनों अवस्थाके विशेष श्वास प्रश्वास प्राणकी क्रियासे रहित हुआ निस्पन्दन प्राणीकी निर्विशेष क्रियाके सहित समाधिमें जीवीत रहता है, तैसे ही महेश्वर महाप्रलय समाधिमें अव्यक्त—हिरण्यगर्भ—विराट् इन तीनों अवस्थारूप विकारी प्राणसे रहित सब भेदमुक्त एक

चेतनघन अपनी निर्विशेष बीजसत्ताके सहित जीवीत था—जैसे कँाचकी शीशीमें जल भरकर मुख बन्ध करके—गंगाके बीचमें डालदो तो भी कँाचस्थित जल गंगाजलमें रहने पर भी पृथक् है, जब कँाच उपाधिसे मुक्त होवेगा तबही गंगाजल होगा—तैसे ही वासनावद्ध हुआ जीव भी महाप्रलयमें तुरीय रुद्रको प्राप्त होकर भी अपनी भोग्य वासनामयी स्वधाके सहित जीता है। जैसे वृक्षादिके सब बीज समष्टि भूमिरूप होजाते हैं—फिर अपनी २ ऋतुमें पृथक २ उत्पन्न होते हैं तैसे ही प्रलय पूर्व सृष्टिके भोगनेसे अवशेष रहे कर्मसंस्कार समष्टिरूपसे निर्विशेष बीजसताके आकारमें महाप्रलयमें रहते हैं—और व्यष्टि-भोगभोक्ता जीव भी समष्टि पुरुषरूपसे अनन्त भोगरूप शेष-शय्या पर शयन करता हैं। अनन्त ज्ञानस्वरूप रुद्र महासागरमें प्राप्त होनेपर भी—असंख्य व्यष्टि भोगोंके भेदोंको लेकर हजारों मुखवाला समष्टि भोग ही शेष है—उस भोगसे वेष्टित हुआ भोक्ता समष्टि पुरुष चार योनिरूप हाथोंवाला सोता है। प्रलयसे सृष्टिके आकारमें आनेवाला भोग्य ऐश्वर्य्य ही लक्ष्मी है। भोग—शेष-भोगकी अपरिपक्व अवस्था ही प्रलय है और परिपक्व ही सृष्टि है तथा भोक्ताके सम्मुख हुई भोग्यरूपसे सो ही ऐश्वर्य्य है। क्योंकि सामान्य और विशेष सत्ताके धर्मसे जो रहित है सो ही अखण्ड एकरस अनन्तज्ञान स्वरूप रुद्र है। और जो महा प्रलयमें बीज सत्तासे युक्त है सोही जीव है। वही सृष्टिके आकारमें नाना रूपसे भासता है। और दूसरा अर्थ—जो श्वेत

स्वरूप रुद्र समाधिमें बैठा है सोही तुरीय स्वरूप है—प्रलय—श्मशान कण्ठमें बीज सत्ता—सर्व अवशेष भोग अर्धाङ्गमें उमा नित्य अनादि ज्ञान स्वरूप द्योतक है। मैं एक हूँ बहुत होऊँ वही समष्टि जीव है। यह संकल्प नीलकण्ठ देशसे उत्पन्न होता है। जब सर्व स्वरूपसे कण्ठ भिन्न नहीं तो जीव भी रुद्रसे भिन्न कोई वस्तु नहीं है। यह सृष्टिप्रलय धर्म श्वास प्रश्वासके समान सान्त अनादि प्रवाहरूप है। एक ही महेश्वर बीज सत्तासे समष्टि पुरुष है और रहित होनेसे तुरीय स्वरूप है। प्राणीत् ॥ ऋ० १० । ३२ । ८ ॥ प्राणित जीवति । स्वमायया । (उद्गीथ भाष्य)। अपनी मायाके सहित जीता है। उस प्रसिद्ध रुद्रसे भिन्न और कोई भी उत्तम नहीं था।

यदाऽतमस्तन्न दिवा न रात्रिर्नसन्नचा सच्छिव एव केवलः ॥ तदक्षरं तत्सवितुर्वरेण्यं प्रज्ञा तस्मात्प्रसृता पुराणी ॥

श्वे० उ० ४ । १८ ॥

जब महाप्रलय समाधिमें असत् सत् नहीं था, रात्रि दिन भी नहीं था, उसमें केवल अद्वैत शिव ही था, सो ही अनादि नित्य है। सोही जगत्की उत्पत्ति आदिका उत्तम कारण है। उससे ही अनादि प्रज्ञा प्रगट होती है, जिसके द्वारा अनन्त ज्ञान स्वरूपकी महिमा गाई जाती है सोही विशेष बुद्धि-ज्ञान माया है॥

स्वधया शम्भुः ॥ ऋ० ३ । १७ । ५ ॥

सुखस्वरूप स्वधायुक्त है । सर्व उपाधिरहित प्रलयों सुखरूप है ॥

स्वस्मिन् धीयते ध्रियते आश्रित्य वर्तत इति स्वधा माया ॥ ऋ० १० । १२९ । २ ॥ सायणभाष्य

अपने अधिष्ठानमें आश्रित है सो ही स्वधा माया है; उस मायासे युक्त ही चिदाभास है सो ही पुरुष है ॥

स भगवः कस्मिन्प्रतिष्ठत इति स्वे महिम्नियदिवान महिम्नीति ॥ तां० आर० ७ । २४ । १ ॥

हे भगवन्, वह प्रजापति बहुत होनेवाला किसमें स्थित है अपनी बीजसत्तारूप विभूतिमें स्थित है सोही पुरुष है । और नहीं भी स्थित है यही तुरीय रुद्र है । जैसे नट मायाजालके खेलमें स्थित हुआ भी खेलसे भिन्न है तैसे ही मायासहित होता हुआ भी मायारहित है ॥

एक एव रुद्रो न द्वितीयायतस्थे ॥

तै० शा० १-८-६-१ ॥

एक ही रुद्र स्थित है, दूसरेके लिये स्थिति नहीं है ॥ २ ॥

तम आसीत्तमसागूह्ळमग्रे १ प्रकेतं सलिलं सर्वमा इदं ॥ तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्त सस्तन्महिनाजायतैकम् ॥ ३ ॥

यह नामरूपात्मक संम्पूर्ण जगत् अपनी उत्पत्तिसे पहिले महाप्रलयमें (तमः) बीज सत्तारूप ही था और सब चिह्नरहित अति गुप्त बीजशक्तिसे ही ढ़का हुआ था—अनन्त ज्ञान स्वरूपकी अपेक्षासे एक विकारी बीजसत्ता अल्प है। व्यापक महान् समष्टि पुरुष अपनी तुच्छ बीजरूप मायासे ढका हुआ था। जो महा प्रलयमें अपनी बीजसत्ताके सहित था सोही प्रलयके अन्त और जगत् रचनाके कुछ प्रथम मैं एक समष्टि पुरुष हूँ। असंख्य स्वरूप-धारी होऊँ इस विचारकी महिमा द्वारा एक सलिल अव्यक्त कारण प्रगट हुआ॥

मृत्युर्वै तमश्छाया॥ ऐ० ब्रा० ३३-११॥

कृष्णमिवहितमः॥ तां० ब्रा० ६-६-१०॥

तमो वै कृष्णं॥ मै० शा० २-५-६॥

पाप्मा वै तमः॥ कपि० शा० ३१-१॥

तमसा॥ अ० ३-३-६॥

तमसावृत जालेन॥ अ० १०-१-३०॥

माया च तमोरूपा॥ मायाचाविद्या च स्वयमेव भवति॥ नृ० उ० ९॥

तमकी छाया अविद्यारूप मृत्यु है॥

अन्धकार के समान ही तम है। तम ही अन्धकार है। बन्धनरूप पाप ही तम है। अज्ञानसे, माया जालसे आच्छा-

दित हुआ। माया ही अज्ञान रूप तम है। स्वयं बीज सत्ता
मांया—और अविद्या होती है।

प्रजापतिर्वा एक आसीत्सोऽकामय
बहुः स्यां प्रजायेयेति समनसात्मनमध्यायत्

मै० शा० ४-२-१

मायिक पुरुष प्रजापति एक ही था—उसने सृष्टि रच
मय विचार किया—मैं एक हूं बहुत होऊँ इस तपके अन
जो प्रलयमें कर्म संस्कार अपरिपक्व थे—वे ही परि
अधिष्ठानमें संकल्परूपसे स्फुरण हुए। सो ही संकल्पी मन
संकल्प के द्वारा अपने को ही विचारता है—मैं इस संकल्प
क्रिया के द्वारा बहुत होऊँ यही विचार है—फिर संकल्प
की अभिव्यक्ति हो—अव्यक्त—कारण—सलिल प्रगट हुआ॥

आत्मा वै यज्ञः ॥ शां० ब्रा० ६।२।१।७

आत्मा वै पशुः ॥ शां० ब्रा० १२।७

आत्मा वै हविः ॥ का० शा० २६।२

यज्ञो महिमा ॥ श० ब्रा० ६।३।१।१८

ब्रह्म वै यज्ञः ॥ ऐ० ब्रा० ७।२२

ब्रह्म योनिः ॥ मै० शा० २।१३।२

आत्मा ही यज्ञ और पशु है। आत्मा ही भोग्यरूप यज्ञ हैं-सो ही यज्ञ महिमा है। व्यापक शक्ति ही यज्ञ है। और सो ही व्यापक कारण है। संकल्पी की संकल्प क्रिया ही आत्मा-यज्ञ-योनि-ब्रह्म-पशु-हवि-महिमा आदि नामवाली है॥

प्राण वा आपः॥ तै० ब्रा० ३। २। ५। १॥
आपो वै मरुतः॥ शा० ब्रा० १२। ८॥
पशवो वै मरुतः॥ मै० शा० ४। ६। ८॥
पशवो वै सलिलं॥ का० शा० ३२। ६॥
पशवो वै शक्तिः॥ मै० शा० ४। ४। १॥
वेदिर्वै सलिलं॥ श० ब्र० १।३। ६। २।५॥
घोषा वै वेदिः॥ श० ब्र० ३। ६। ६॥

प्राण ही आपः है, व्यापक प्राण मरुत है। पशु ही मरुत हैं। पशु ही सलिल है। पशु ही शक्ति है। वेदी ही सलिल है-स्त्री ही वेदी है॥

विश्वरूपं वै पशुनां रूपं॥
तां० ब्रा० ५। ४। ६॥

तस्याएतत्परिमितं रूपं यदन्तर्वेद्यथैष भूमाऽपरिमितो यो बहिर्वेदिः॥ ऐ० ब्रा० ८। ५॥

समस्त संसार ही अव्याकृत पशुका स्वरूप है। संकल्प क्रिया अव्यक्त रूप भूमिका यह चतुर्दशात्मक ब्रह्माण्ड अल्परूप

वाला है—जिस आधार के बीचमें वेदी—माया स्थित है—औ
जो वेदी के बहार है—सो ही यह अनन्त ज्ञान स्वरूप मह
भूमा है ॥

उभयं वा एतत्प्रजापतिर्निरुक्तश्चानि-
रुक्तश्च ॥ श० ब्रा० १४-१-२-१८।

अपरिमितौ वै प्रजापतिः ॥
ऐ० ब्रा० २-७।

महान्तमपरिमितं ॥ का० शा० ८-१३।

यह प्रजापति मित और अपरिमित दोनों स्वरूपवाला
मायोपाधिक मन वाणीका विषय निरुक्त है। और माय
रहित निरुपाधिक मन वाणी का अविषय अनिरुक्त है। उप
आदि विषयरहित अपरिमित प्रजापति ही महान् रुद्र-भू
है। और उपमायुक्त भूमा ही समष्टि व्यष्टि ब्रह्मा—जीव
है। जीव तुरीय भूमाका ही स्वरूप है ॥

रुद्रंबृंहन्तं ॥ ऋ० ७-११-४।

भूमा वै होता ॥ तै० ब्रा० ३-८-५-२।

रुद्र ही महान् है। भूमा ही होतारूप संहार कर्त्ता है
जो भूमा—कारण—क्रिया—कार्यरूप महिमामें स्थित है—सो
ब्रह्मा से ले कर पिपीलिका पर्य्यन्त चेतन जीव है। और
इस महीमा से परे तुरीय रुद्र है सो ही अखण्ड स्व
भूमा है ॥

रुद्रं होतारं ॥ ऋ० ४-३-१ ॥

रुद्र ही होता है ॥

भूमा वै रायस्पोषः ॥ श० ब्रा० ३-५-२ १२॥

एष वै रयि वैश्वानरः ॥

श० ब्रा० १०-६-१-५ ॥

वीर्यं वै रयिः ॥ श० १३-४-२—१३ ॥

पुष्टं वै रयिः ॥ श० २-३-४-१३ ॥

पशवो वै रयिः ॥ तै० ब्रा० १-४-४-९ ॥

पुष्टि वै पूषाः ॥ तै० ब्रा० २-७-२-१ ॥

पशवो वै पूषा ॥ तां० ब्रा० १८-१-१६ ॥

पूषा भगं ॥ शा० ११-४-३-३ ॥

अन्नं वै पूषा ॥ शा० ब्रा० १२-८ ॥

पुष्टिवर्धनः शिवः ॥ मै० शा० १-५-४ ॥

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं रयि पोषणम् ॥

कपिष्ठल कठ शाखा ८-१० ॥

आपो हि रेतः ॥ तां० ब्रा० ८-७-९ ॥

आपो दिव ऊधः ॥

मा० शा० १२-२० श० ६-७-४-५ ॥

अन्धमिव वै तमोयोनिः ॥

जै० आर० ३-९-२ ॥

योनिरेव वरुणः ॥ श० ब्रा० १२-९-१-१७ ॥

आपो वै वरुणः प्रजा वै बर्हिः ॥

मै० शा० १-८-५ ॥

आपो वै रात्रिः ॥ मै० शा० ४-५-१ ॥

अन्धो रात्रिः ॥ ऋ० ८-९२-१ ॥

योनिर्वाउत्तरवेदिः ॥ श० ब्रा० ७-३-१-२८ ॥

योषावा उत्तरवेदिः ॥

श० ३-५-१-३३ ॥

पशवो वा उत्तरवेदिः ॥

तै० ब्रा० १-६-४-३ ॥

प्रजा वै पशवः ॥ तै० शा० ३-४-१-२ ॥

प्रजा वै भूतानि ॥ श० ब्रा० २-४-२-१ ॥

येषामीरो पशुपतिः पशुनां चतुष्पाद उत ये द्विपादः ॥

का० शा० ३०-८ ॥

मैं एक हूँ बहुत होऊँ—यह संकल्पी भूमा अपने संकल्प घनको अव्यक्त कारणके आकारमें प्रगट होनेके लिये विकास-रूप पोषण करता है। यह रयिही जगत्का नेता कारणरूप

सलिल है। बल–पुष्ट–पशु–पुष्टि–पूषा भग–अन्नादि–रयिके नाम है। पुष्टिरूप बीजकी विकार माया सत्ताकी वृद्धि करनेवाला शिव है। स्त्री अम्बिकाके स्वामी त्र्यम्बक रुद्रका हम ध्यान करते हैं। वह कैसा है? अपनी अनन्तज्ञान स्वरूप सुगन्धिको एक विकारी मायाके द्वारा प्रसिद्ध रूपसे वृद्धि करता है। सोही रयि पुष्टि–वर्धक–पोषक त्र्यम्बक है। अव्यक्त ही कारण है। प्रगटरूपसे प्रकाशित ब्रह्माण्डका (ऊधः) योनि कारण अव्यक्त है। अन्धेके समान स्वतंत्रतारहित जड बीजरूप तमः माया–योनि है। अपने आधार स्वरूपका आवरण करनेवाली वरुण योनि है। अव्यक्त ही सलिल है और सलिलका सूक्ष्म–स्थूल विकास ही प्रजा मात्र है। सलिल ही रात्रि है। और रात्रि ही माया अन्धकार जड है। योनि उत्तर वेदी है। जो उत्तर वेदी है सो ही अव्यक्तरूप स्त्री उत्तर अवस्था है। संकल्प पूर्व अवस्था है और अव्याकृत नाभि उत्तर अवस्था है। उत्तरवेदी ही पशु रूप प्रजा है। जो चार पगवाले और दो पगवाले प्राणिमात्र हैं उन पशुओंका शासनकर्त्ता स्वामी है सो ही पशुपति है ॥३॥

कामस्तदग्रे समवर्तताधिमनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ॥ सतोबन्धुमसति निरविन्दन् हृदिप्रतीष्याकवयो मनीषा ॥ ४ ॥

सबके पहिले मैं एक हूँ सो बहुत होऊँ। जिस बीजको अधिष्ठान संकल्पीने–संकल्प क्रियाकी (असति) अव्याकृत अवस्थामें

स्थापन किया सोही समष्टि वीज प्रथम देहधारी अप्रतिहत सम ज्ञानादि ऐश्वर्य्यसम्पन्न ब्रह्मा प्रगट हुआ–वह ब्रह्मा विराट् उपादान कारण हुआ। अव्याकृतके विकास सूत्रात्मा देहधा ब्रह्माका (वन्धुः) पितामह महेश्वरको सूक्ष्म बुद्धिके द्वारा विचा करके ऋषियोंने अपने हृदयमें निरंतर ध्यानसे साक्षात्कार किया।

असज्जजान सत आबभूव ॥

तै० आर० ३-१४-४॥

असद्वाइदमग्रआसीत् ॥ ततो वै सद जायत ॥ तदात्मान ँ स्वयमकुरुत तस्मात्त स्सुकृतमुच्यत इति ॥

तै० आर० ८-२-७।

पहिले असत्–विकारी कारण प्रगट हुआ। उस अव्याकृतसे सतः ब्रह्माका आविर्भाव हुआ। यह सब जगत्के पहिले असत ही था। उस अप्रगट कारणसे–प्रगट हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुआ। उस हिरण्यगर्भ देहको चेतन ब्रह्मा आपही अपनी देहको सूक्ष्मसे स्थूल विराट्के रूपमें प्रगट करते भये। इसलिये ही वह ब्रह्मा स्वयं अपनी सूत्रात्मा क्रियासे विराट् कार्यका कर्त्ता है ऐसा कहा है॥

तपो वै पुष्कर पर्णं ॥ तै० आर० १-२५-१॥

वाक् पुष्कर पर्णं ॥ योनि वै पुष्कर पर्णं॥

श० ब्रा० ६-४-१-७॥

आपो वै पुष्करं ॥ शा० ६-४-२-२ ॥

ब्रह्म हवै ब्रह्माणं पुष्करे ससृजे सखलु ब्रह्मा ॥ गो० ब्रा० १-२६ ॥

अपोऽपां हिरण्यगर्भोऽसि ॥ अ० १०-५-११ ॥

आपः ॥ ऋ० ८-८५-१ ॥

सृष्टि संकल्पही पुष्कर पर्ण है। संकल्पकी क्रियारूप वाणी ही पुष्कर पर्ण है—योनि—अव्यक्त ही पुष्करपर्ण है। व्यापक मूल कारण ही—सलिलरूप पुष्कर है। (ब्रह्म) रुद्रने अव्यक्त—आकाशमें ब्रह्माको उत्पन्न किया—सोही ब्रह्मा है। (अपां) अव्यक्तकी व्यक्त (आपः) व्यापक समष्टि हिरण्यगर्भ है। आपः—शब्द व्यापक अर्थवाला है।

अमृतस्य पत्नी ॥ अ० ७-६-२ ॥

अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्यनाम ॥ शा० आर० सं० ९-९ ॥

प्रथमजा ऋृतस्य प्रजापतिः ॥ अ० ४-२५-२ ॥

अनादि अविनाशी रुद्रकी अदिति अखण्डरूप अम्बिका—पत्नी है। सब देवताओंकी उत्पत्तिसे पहिले अविनाशी रुद्रका

प्रथम देहधारी मैं पुत्र ब्रह्मा नामसे प्रसिद्ध हूँ। रुद्रका प्रथम प्रगट होनेवाला पुत्र ब्रह्मा है ॥

असतो अधिमनो असृजत ॥ मनः प्रजापतिः ॥ तै० ब्रा० ३-१४-४॥

बन्धुः ॥ ऋ० ७-७२-२॥

असत् प्राणशक्तिसे मनरूप ब्रह्मा प्रगट हुआ—ब्रह्मासे प्रजापतिरूप विराट् प्रगट हुआ। पितामह रुद्र है ॥

इयं वै विराट् ॥ तै० शा० ६-३-१-४॥

इयं प्रजापतिः ॥ तै० शा ५-१-२-५॥

यह वाणी ही विराट् है। यह विराट् ही प्रजापति है॥

तिरश्चीनो विततोरस्मिरेषा मधःस्विदासी३ दुपरिस्विदासी३त् ॥ रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥ ५ ॥

इन चराचर पदार्थोंके आकारमें कौन नीचे और कौन ऊपर रस्मि सर्वत्र विस्तृत होरही है। भोक्ता—प्राण—रूप अग्नि—वीर्यको जो भोग्य—अन्न—सोम असंख्य रूपोंसे धारण करता है वही असंख्य भोगरूप स्वधा नीचले भाग हुए और सोमके नाना

रूपोंको आश्रय करके जो अग्नि नाना रूपोंसे प्रतीत होता है वे ही असंख्य भोक्ता प्रयतिरूप ऊर्ध्वगति महिमावाले हुए ॥

प्राणा रश्मयः ॥ तै० ब्रा० ३-२-५-२ ॥

अन्न ँ रश्मिः ॥ श० ब्रा० ८-५-३-३ ॥

मिथुनं वा अग्निश्च सोमश्च सोमारेतोधा अग्निः प्रजनयिता ॥ अग्नीषोमवेवाग्रे ॥ अग्निर्वाविदंसर्वं ॥ कपि० शा० ७-६ ॥

अग्नि वै रेतोधाः ॥ तै० शा० ५-५-८-५ ॥

अग्निर्वै सर्वादेवताः ॥ मै० शा० २-३-१ ॥

अग्निर्वै प्राणाः ॥ जै० आर० ४-२२-११ ॥

अन्नं वै सोमः ॥ श० ब्रा० ३-९-१-८ ॥

सोम सर्वा देवताः ऐ० ब्रा० २-३ ॥

स्वधां ॥ ऋ० १-६-४ ॥

प्राण ही रश्मि है। और अन्न ही रश्मि है। अमृत-अक्षर-प्राण-आदि नामवाला अग्नि-और-मृत्यु-क्षर-रयि-भोग्य-आदि नामवाला सोम-इसकी आधेय-आधार-जड-प्रकाश रूपसे जोडी है। सोम अग्निको भोक्तारूप से धारण करता है-और अग्नि सोमको भक्षण करके विविध रूपसे प्रगट करता है-अग्नि और सोम ही सबके पहिले थे। प्राणशक्ति

सूक्ष्म प्रकाशक अभ्यन्तर अवस्थावाली ही अग्नि है—और सोम अभ्यन्तर शक्ति की एक बाह्य अवस्था मात्र है—जैसे अग्नि और अग्निके प्रकाशमें भेद प्रतीत होता है तैसे ही—अमृतका मृत्यु भेद मात्र है, जैसे बीजमें वृक्षशक्ति और वृक्षमें फलस्थित बीज शक्तिरहित है—तैसे ही प्रलयमें अमृतमें मृत्यु स्वधारूपसे रहती है—और सृष्टिमें स्वधारूप ब्रह्माण्ड वृक्षमें—प्रयति—प्राणशक्ति-अग्नि—वायु—सूर्य—आदि प्रकाशवाले पदार्थों में अधिदैवरूप से विराजती है—और मृत्यु रूप आधिभौतिक व्यष्टि शरीर—वृक्ष-पर्वत—नदी आदि पदार्थोंमें—प्राणेन्द्रिय अध्यात्म रूपसे विराजती है। पाषाणमें सुषुप्तिके समान प्राण होता है, उस प्राणसे ही भूमिस्थित पाषाणकी वृद्धि होती है। और वृक्षोंमें स्वप्न अवस्थाके समान प्राण मन रहता है—शीत ऊष्ण धर्मयुक्त मूलसे जल खातको भक्षण करके वृद्धि पाता है। मृत्यु शक्तिका धर्म नाशवान् परिवर्तनशील—जड—स्थूल—अप्रकाश—आवरण—आधार है—इस स्वधा आधारके द्वारा प्रयति—अग्निशक्ति—हिरण्यगर्भ-समष्टि सूक्ष्म देहके आकारमें विकास होती है—उस आधेय अमृतको आवरण करती हुई—सोम शक्ति भी विराट् समष्टि स्थूल देहके रूपमें प्रगट होती है—उस विराट्स्थित अमृतशक्ति विराट्को भक्षण करती हुई—अग्नि वायु—सूर्यके रूपमें आनेके लिये विकास करने लग जाती है—उस भोक्ता प्राणको भोग्य स्वधा भी आवरण करती हुई द्यौ—(अन्तरिक्ष) आकाश—जल-भूमिके रूपमें प्रगट होती है—इन विराट्के अङ्गोंका आधार

पाकर—हिरण्यगर्भ भी पृथिवीमें अग्नि—जलमें चन्द्रमा—अन्तरिक्षमें वायु—द्यौ में सूर्य स्वरूप से प्रगट होता है। अग्नि सोमकी अप्रगट अवस्था अव्यक्त है और प्रगट अवस्था ही हिरण्यगर्भ तथा विराट् है। विविध रूप से विराजमान क्षरात्मक विराट् ही अविद्या है। नाना अविद्या के भेद से एक अवस्था से विराजमान अक्षरात्मक हिरण्यगर्भ विद्या भी नाना रूपसे प्रतीत होती हुई भी अभेद रूप कूटस्थ है। जो हिरण्यगर्भ विद्यारूप समष्टि देहमें चेतन पुरुष है, सो ही भगवान् सर्व लोक पूज्य ब्रह्मा है। अविद्या के कार्यांश—जल—भूमि—भी व्यष्टि शरीरादिके रूपमें भिन्न २ दीखने लगे—उन आधिभौतिक उपाधियों से विद्याके भी क्रियांश भिन्न २ अधिदैव—अध्यात्म-रूपसे भासने लगे—उन अधिदैव—अध्यात्म—अन्तःकरणकी उपाधिसे समष्टि ब्रह्मा भी—अग्नि, वायु, सूर्यमें अधिदैव चेतन देवतारूपसे विराजमान हुआ तथा व्यष्टि शरीरोंके हृदय—कण्ठ—नेत्रमें अध्यात्म चेतन जीवरूपसे भोक्ता कर्त्ता हुआ। भोक्ता जीव नहीं है, किन्तु चेतन आश्रित प्राण है—उस अन्तःकरणके साथ जो चेतनका अहंकर्त्ता भोक्तारूपसे मिथ्या सम्बन्ध है सोही तादात्म्य सम्बन्ध है। अग्नि प्राण भोक्तारूपसे यह सब स्वरूप है और सर्व देवस्वरूप है। अग्निही सोमरूप अन्नको भक्षण करके आठवाँ वलरूप वीर्यको धारण करता है। सोमही अन्न है और चराचरके देह रूपसे सर्व देवस्वरूप है। यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड अग्निषोमात्मक है। मूल अग्निसे सम्बन्ध रखनेवाले अध्यात्म—

अधिदैव-और अधिभौतिक पदार्थ-अग्नि, प्राण कहे जाते हैं। मूल सोमसे सम्बन्ध रखनेवाले सब पदार्थ सोम, अन्न कहे जाते हैं। स्वधा--शब्द-जल-अन्न-बल-शक्ति-मायाका वाचक है। कार्यांश सर्वदा अधोभागवर्ती स्थूलदेह है और क्रियांश ऊर्ध्व भागवर्ती सूक्ष्म देह है॥

क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः क्षरात्मनावीशते देव एकः॥ तस्याभिध्यानाद्योजनात्तत्त्वभावाद्भूयश्चान्ते विश्वमाया निवृत्तिः॥ ज्ञात्वादेवं सर्व पाशापहानिः क्षीणैः क्लेशैर्जन्ममृत्युप्रहाणिः॥ तस्याभिध्यानात्तृतीयं देहभेदे विश्वैश्वर्य्यं केवल आप्तकामः॥ एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं नातः परं वेदितव्यं हि किञ्चित्॥ भोक्ताभोग्यं प्रेरितारञ्चमत्त्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्मह्येतत्॥

श्वे० उ० १-१०-११-१२॥

क्षर-प्रधान मृत्यु है। और अक्षर अमृत है-क्षर स्थूल और अमृत सूक्ष्म देहही आत्मा है-इस अमृतका जो अधिष्ठान है सो ही अधिष्ठित चिदाभास जीव है। इन क्षर अक्षरका प्रेरक एक रुद्र देव है। उस रुद्रका वारंवार ध्यान करनेसे व्यष्टि समष्टि उपाधिसे रहित मैं नित्य रुद्रस्वरूप हूँ, इस अभेद चिन्तवन योगसे

प्रारब्ध भोगके नाश होनेपर सब मायाजालकी निवृत्ति होजाती है। अर्थात जीव शिव होजाता है। अपने तुरीय स्वरूप रुद्रको जानकर सब अज्ञानपाशका नाश करता है—क्लेशोंके क्षीण होनेसे जन्म मरणकी निवृत्ति होती है। उस रुद्रके अभेदरूप चिन्तवनसे क्षर अक्षर दोंनों देहके लय होनेपर उसके अनन्तर सब कामना-रहित सबके आधार तीसरे अनन्त ज्ञानैश्वर्य्य स्वरूप रुद्रको प्राप्त होता है। भोक्ता अग्नि अक्षर, भोग्य सोम क्षरके प्रेरक तृतीय नेत्र ज्ञानस्वरूप त्र्यम्बकको जानकर यह वर्णन किया हुआ तीन प्रकारसे सर्व (ब्रह्म) स्वरूप है। यह जानने योग्य तीसरा नित्य ज्ञानस्वरूप ही अग्नि सोमात्मक देहमें स्थित है—इससे परे और कुछ भी जानने योग्य नहीं है। अग्नि—सोम और तीसरा सूर्य नेत्र हैं इसलिये ही तुरीय रुद्रका नाम त्र्यंम्बक है। सोम भोग्य, अग्नि भोक्ता, और सूर्य जीव प्रेरक है। तथा चतुथ रुद्र है। जीव रुद्रसे भिन्न नहीं है इसलिये ही तीसरेसे तुरीय स्वरूपको भिन्न नहीं कहा—क्योंकि उपाधियुक्त जीव है और निरुपाधिक तुरीय रुद्र है।

ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सना-
तनः ॥ तदेवशुक्रंतद्ब्रह्मतदेवामृतमुच्यते ॥
तस्मिँल्लोकाःश्रिताः सर्वे ॥ कठो० ६-१ ॥

यह अश्वत्थ वृक्षरूप संसार अनादि शान्त प्रवाहरूप है। आज सृष्टिरूप विद्यमान है, काल प्रलयरूपसे अविद्यमान है; सोही

अश्वत्थ है। इस ब्रह्माण्ड वृक्षका मूल आधार चेतन महेश्वरकी मायाशक्ति है। उस अव्यक्तकी शाखा क्रिया-कार्य रूपसे नीचे फैली हैं-सो ही द्यौयुक्त सूर्य है, अन्तरिक्ष युक्त वायु है। सोही भूमियुक्त अग्नि है। जिस विराट्में अधिदैव स्थित हैं उसी विराट् वृक्षमें चराचर प्राणियोंके सहित सब लोक अवस्थित हैं॥

असौ वा आदित्यः शुक्रः ॥

का० शा० ३६-१०॥

ब्रह्म वा अग्निः ॥ शा० ब्रा० ९-१॥

प्राणो वै वायुः ॥ का० शा० २१-३॥

यह सूर्य ही शुक्र है। अग्नि ही ब्रह्म है। वायु ही प्राण-रूप अमृत है॥

वायुर्वा अग्नेः स्वोमहिमा ॥

शां० ब्रा० ३-३॥

मृत्यो वैं क्षेत्राणि ॥ कपि० शा० ४६-६॥

प्राण ही अपनी महिमा अग्नि-भोक्तारूपसे व्यापक है। मृत्युसे जड शरीर आदि क्षेत्र उत्पन्न हुए हैं॥

ऊर्ध्वमूलमवाक्छाखं ॥ वृक्षं यो वेद सम्प्रति ॥ न स जातु जनः श्रद्दध्यात् मृत्युर्मा मारयादितिः ॥

तै० आर० १-११-५॥

अव्याकृत ब्रह्मलोक मूलसे तपः जनः महर्लोक, विराट्में आकाश वायु–अग्नि–जल–भूमि आदि पदार्थ शाखा हैं। कारणसे कार्यमें आना ही नीची शाखा हैं। इस वर्तमान देहमें ही जो मृत्युके कार्यरूप वृक्षको जानता है वह ज्ञानी कभी भी विश्वास नहीं करता है कि मृत्यु अविद्या मेरेको मारेगी। अर्थात् मैं नित्य ज्ञान स्वरूप तुरीय रुद्र हूँ। यह मायामय वृक्ष कल्पित है॥

अहं वृक्षस्यरेरिवाकीर्तिः पृष्ठं गिरेरिव॥ ऊर्ध्व पवित्रो वाजिनी वस्वमृतमस्मिद्रविण ँ सुवर्चसम् ॥ सुमेधा अमृतो क्षितः॥ इति त्रिशङ्कोर्वेदानुवचनम्॥ तै॰ आर॰ ७–१०–१॥

मृत्यु–अविद्यामय संसार वृक्षका मैं अधिष्ठान, प्रेरक उत्पादक हूँ–मेरा यश पर्वतके शिखरके समान है। जैसे सूर्यमण्डलमें उत्तम चेतन पुरुष है, तैसे ही मैं व्यष्टि शरीरमें ऊँची ज्योति तुरीय-स्वरूप पवित्र स्वयं प्रकाशवान् हूँ–परिणामरहित नित्य उत्तम ज्ञानरूप घन मैं हूँ–इस प्रकार गुरु शिष्य परंपरा अनुभवगम्य वेदवचन है। त्रिशंकु ऋषिका भी यही आत्म साक्षात्कार वचन है। जैसे इन्द्रजाली मायाको रचकर खेल करता है और फिर मायाको नाश भी करता है, तैसे ही महेश्वर मायाको रचकर उसके द्वारा विविध स्वरूपोंको धारण करता है। जिस जीवको अपने तुरीय स्वरूपका साक्षात्कार हुआ उसका अज्ञानजाल लय होता है॥५॥

को अद्धवेद कइहप्रवोचत्कुत अजाताकुत इयं विसृष्टिः ॥ अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथाको वेदयत आबभूव ॥ ६ ॥

किस उपादन कारणसे और किस निमित्त कारणसे यह नाना रूपवाली रचना प्रगट हुई है। इस ब्रह्माण्डकी उत्पत्तिके पीछे सर्व देव दैत्य आदि प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई है। इस संसारमें यथार्थ कौन जानता है और इस विषयमें कौन कहे, जिससे यह जगत् उत्पन्न हुआ है—कौन इस प्रश्नका उत्तर देवे ॥

को अद्धावेद कइहप्रवोचत् ॥

ऋ० ३-५४-५ ॥

इस विषयमें सत्यार्थको कौन जानता है उस जाने हुए यथार्थको कौन बोलता है ॥६॥

इयं विसृष्टिर्यतआबभूव यदि वादधे यदि वा न ॥ यो अस्याध्यक्षः परमेव्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥ ७ ॥

ऋ० १०-१२९-१...७ ॥

यह चराचर नामरूप विश्व जिस कारणसे उत्पन्न हुआ है अथवा जो कारण जगत्को रचकर पालन और संहार करता है या नहीं करता है, यह काम उसीका है जो इस संसारका स्वामी-अव्याकृताकाश ब्रह्मलोकमें विराजमान है—सोही ब्रह्मा जानता

है—यदि वह नहीं जानता तो इस जगत्की उत्पत्ति—पालन संहार-रूप व्यवस्था कौन करता ॥७॥ इस सूक्तका नित्य पाठ करनेसे सब तीर्थोंका फल मिलता है और मरणके पीछे ब्रह्मलोकमें जाता है, फिर लौटकर जन्ममरणके चक्रमें नहीं आता ह ॥

य इमा विश्वाभुवनानिसुक्तस्य भुवनपुत्र-विश्वकर्मा ऋषिः ॥ त्रिष्टुप्छन्दः ॥ प्रजापति देवता त्रिकालज्ञानप्राप्त्यर्थे विनियोगः ॥ य इमा विश्वाभुवनानि जुह्वदृषिर्होतान्यसी दत्पितानः ॥ स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ आविवेश ॥ १ ॥

हम सबका पिता इन सब भुवनोंका संहार करके प्रलयमें विराजता है । सो सर्वज्ञ संहारकर्त्ता ही प्रलयके अन्तमें संकल्प क्रियाके द्वारा अव्यक्तको प्रगटकर्ता है—उस कारणकी प्रथम हिरण्यगर्भ अवस्थामें मैं ब्रह्मा हूँ । इस नामसे ढका हुआ पुरुप स्थूल जगत्की इच्छा करता हुआ त्रिलोकमय विराट्को रचकर उसके अग्नि आदि अङ्गोंमें देवता रूपसे प्रवेश करता है ॥१॥

किंस्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतम-त्स्वित्कथासीत् ॥ यतो भूमिंजनयन् विश्व-कर्माविद्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः ॥ २ ॥

विश्वरचनाके समय आधार क्या था जिस पर स्थित होके जगत् रचा? कौन उपादान कारण था और कौन निमित्त साधक क्रिया थी जिससे सर्वदर्शी प्रजापतिने भूमिको और द्यौको रच कर उसके बीचमें अग्नि वायु सूर्यरूप अपनी महिमासे विविध प्राणियोंको रचकर पूर्ण कर दिया ॥

विश्वतश्चक्षुरुतविश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरूतविश्वतस्पात् ॥ संबाहुभ्यां धमतिसं-पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ॥ ३ ॥

विराट् देहाभिमानी प्रजापतिके सूर्य चन्द्रमा नेत्र सर्वत्र व्यापक हैं, अग्नि मुख भी सर्वत्र है, वायु-इन्द्ररूप दोनों हाथ सर्वत्र हैं, विष्णुचरण भी सर्वत्र गतिशील हैं। जो एक देव प्रजापति द्यौ भूमिको प्रगट करता है, सो ही समष्टि ब्रह्मा (संपतत्रैः) गमनशील स्वभाववाले अग्नि, वायु, सूर्यके द्वारा प्राणियोंको रच कर दिनरातरूप दोनों हाथोंसे उत्तम पालन करता हुआ आयु को क्षीण करता है ॥

द्विपदो छन्दो विष्णुर्देवता प्रतिष्ठे ॥

श० ब्रा० १०-३-२-११ ॥

प्रतिष्ठा वै पादः ॥ श० ब्रा० १३-८-३-८ ॥

प्रजापतेर्वाएतान्यंगानि यच्छन्दांसि ॥

ऐ० ब्रा० २-१८ ॥

दो पग गति रूपसे आच्छादन करता है—चरणगति देवता विष्णु (प्रतिष्ठे) दोनों चरणोंमें प्रतिष्ठित है। प्रतिष्ठा ही पग है। प्रजापतिके जो मुख, नेत्र–हाथ–अंग हैं, सो ही छन्द हैं ॥

बाहू वैमित्रावरुणौ ॥ श० ब्रा० ५–४–१–१५ ॥

अहर्वैमित्रोरात्रिर्वरुणः ॥ ऐ० ब्रा० ४–१०

दोनों हाथ मित्र वरुण हैं। मित्र दिन है, और वरुण रात्रि है ॥३॥

किंस्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतोद्यावा पृथवी निष्टतक्षुः ॥ मनीषिणो मनसा पृच्छते-दुतद्यदध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन् ॥ ४ ॥

वह कौन बन था, उस वनमें कौन वृक्ष था जिस वृक्षसे उस ब्रह्माने द्यौ भूमिको रचा--हे अनुभवशील विद्वानो अपने मनसे ध्यानके द्वारा पूछो, किस आधारके ऊपर स्थित होकर ब्रह्मा समस्त ब्रह्माण्डको धारण करता है ॥

ब्रह्म वनं ब्रह्म स वृक्ष आसीत् ॥

तै० ब्रा० २–८–९–६ ॥

व्यापक समष्टि कारण अव्यक्त ही वन है सोही व्यापक सूत्रात्मा और विराट् वृक्ष हुआ ॥४॥

या ते धामानि परमाणि यावमा यामध्यमा विश्वकर्मन्नुत मा ॥ शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधातः स्वयंयजस्वतन्वं वृधानः ॥५॥

हे जगत्कर्ता यज्ञ भोक्ता विराट्रूप अन्नसे तुम स्वयं यज्ञरूप अग्नि वायु सूर्य होकर अपने हिरण्यगर्भ देहको पुष्ट करते हो, यज्ञ समयमें हम उपासकोंकी भावनाके अनुसार जो त्रिलोकवर्ती धाम हैं उन धामोंमें जो देव, पितर, मनुष्य ही उत्तम, मध्यम और साधारण शरीर हैं, उन योनियोंमें प्राप्तिरूप शिक्षा करो॥५॥

विश्वकर्मन् हविषावावृधानः स्वयंयजस्व पृथिवीमुतद्याम् ॥ मुह्यन्त्वन्ये अभितोजना स इहास्माकं मघवासूरिरस्तु ॥ ६ ॥

हे प्रजापते तुम स्वयं स्वर्गमें सूर्यरूपसे वृष्टियज्ञ करते हो और भूमिमें अग्निरूपसे आहुतिभक्षण यज्ञ करते हो। उस आहुतिके द्वारा अपने समष्टि व्यष्टि शरीरोंको ही पुष्ट करते हो और हमारे यज्ञ विरोधी मोहको प्राप्त होवें—इस यज्ञमें हमको ऐश्वर्य्यवान् प्रजापति स्वर्ग आदिके सुख देनेवाला होवे ॥६॥

वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजेअद्याहुवेम ॥ सनोविश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा ॥ ७ ॥

ऋ० १०-८२-१-७॥

जिस विराट् वाणीका स्वामी, विश्वकी उत्पत्ति-पालन-संहारकर्त्ता ब्रह्माको आज हम इस यज्ञमें सब प्रजाकी रक्षाके लिये बुलाते हैं, सोही प्रजापति हमारे सब हवनोंका सेवन करे और हमारे पालनके लिये सर्व सुखोत्पादक उत्तम कर्मवाला हो ॥

प्रजापतिर्विश्वकर्मा ॥

मा० शा० १८-४३ ॥

प्रजापतिका नाम विश्वकर्मा है ॥७॥

ॐ चक्षुषः पिता इति सूक्तस्य पूर्ववत् देवताः ऋषिः छन्दः ॥ चक्षुषः पिता मनसा हि धीरोघृतमेने अजनन्नम्नमाने ॥ यदेदन्ता अदद्दृहन्त पूर्व आदिद्द्यावा पृथिवी अप्रथेताम् ॥ १ ॥

अग्नि, वायु सूर्य ज्योतिके उत्पादक धीर प्रजापतिने अपने सूत्रात्मा देहसे ही कार्यको सूक्ष्मसे स्थूलके रूपमें विकास किया-सो ही जल प्रगट हुआ। वही मृत्युकी तरल अवस्था। अमृतसे परिपक्व घनीरूप विराट् हुआ। फिर तरल जलमें मध्य कठिन विराट्को ऊँचे नीचे विभागसे इधर उधर चलनेवाले द्यौ भूमिको बनाया, और द्यौ भूमिके बीचमें पहिले आकाश तथा उस अन्तरिक्षमें दश दिशा आदि अन्य विभागोंको दृढ किया, तब विराट्के द्यौ शिर, आकाश उदर, भूमि पगरूपसे विस्तार हुए ॥१॥

विश्वकर्मा विमनाआद्विहायाधाता वि-
धातापरमोतसन्दृक् ॥ तेषामिष्टानिमिषाम-
दन्ति यत्रासप्तऋषीन् पर एकमाहुः ॥ २ ॥

विश्वकर्मा विराट्के विभाग करता है, उस विविधरूप विराट्के संघातसे आप सर्वदर्शी अपनी अमृत देहका विभाग करता है, भूमिमें धाता—अग्नि—अन्तरिक्षमें विधाता वायु—द्यौमें परमेष्ठी सूर्य है। जिस भूमि, आकाश, द्यौमें, अग्नि, सात ज्वालावाले वायु, सात वायुवाले सूर्य, सात किरणवाले सात ऋषियोंको धारण करता है। और तीनों देवता यज्ञमें हविके अभिलाषित भागोंको भोगते हैं, और उन तीनों महिमाओंके परे एक समष्टि स्वरूप प्रजापति है ऐसा वेदमंत्र कहते हैं ॥

प्राणा रश्मयः ॥ तै० ब्रा० ३-२-५-२ ॥

एते तै रश्मयो विश्वेदेवाः ॥

श० ब्रा० १२-४-४-६ ॥

प्राणा वै देवताः ॥ मै० शा० २-३-५ ॥

प्राणा वा ऋषयः ॥ ऐ० ब्रा० ८-३ ॥

प्राणही सात किरण हैं। ये किरणही सब देवता हैं। प्राण ही देवता हैं। सात प्राणही सात ऋषि हैं ॥२॥

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि
वेदभुवनानिविश्वा ॥ यो देवानां नामधा एक
एव तं संप्रश्नं भुवनायन्त्यन्या ॥ ३ ॥

जो ब्रह्मा हम सबको उत्पन्न करता है—जो विधाता सब लोकोंको रचकर उन लोकोंमें सब प्राणियोंका पालन करता है, जो एक समष्टिरूप है सोही अधिदैव अग्नि आदि देवताओंके नामको धारण करके व्यापक है, वे देवता अन्य व्यष्टि प्राणि समूहरूपसे व्यापक हैं, और प्रलयमें उसको ही क्रमसे प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

त आयजन्त द्रविणं समस्मा ऋषयः पूर्वे जरितारोनभूना ॥ असूर्तेरजसिनिषत्ते ये भूतानि समकृण्वन्निमानि ॥ ४ ॥

पहिले प्रजापतिके लिये स्तुति करनेवालोंके समान ऋषियोंने यज्ञानुष्ठान किया, प्रजापतिकी प्रसन्नतासे जिन अग्नि, वायु, सूर्य, ऋषियोंने अपने २ लोकमें स्थित हुए इस स्थावर जंगमके लिये जल वर्षा आदि धन दिया है, वेही इन सम्पूर्ण प्राणियोंको रचकर पालन करते हुए संहार करते हैं ॥४॥

परोदिवापरएना पृथिव्यापरोदेवेभिरसुरैर्यदस्ति ॥ कंस्विद्गर्भं प्रथमंदध्र आपो यत्र देवाः समपश्यन्त विश्वे ॥ ५ ॥

वह द्यौ भूमि देवताओंको और असुरोंको भी अतिक्रमण करके स्थित है तथा जलने ऐसे किस गर्भको धारण किया है, जिसमें समस्त अग्नि आदि देवता स्थित होकर परस्पर एकत्रित हो देखते हैं ॥५॥

तमिद्गर्भं प्रथमंदध्र आपो यत्र देवाः समग-
च्छन्तविश्वे ॥ अजस्यनाभावध्येकमर्पितं य-
स्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः ॥ ६ ॥

उस ब्रह्माको पहिले अव्याकृतने गर्भमें धारण किया है
जिस गर्भमें सब देवता परस्पर मिलकर संगत होते हैं। उस
प्रलयमें स्थित बीज सत्तारूप अजकी विकारी मध्य अवस्था
(नाभौ) स्वरूप अव्यक्तमें मैं एक हूँ बहुत होऊँ, इस एक बीजको,
अधिक रूपसे स्थापित किया जिसमें सम्पूर्ण प्राणियोंके सहित
सब लोक स्थित हैं ॥

आपः ॥ ऋ० ८-८५-१ ॥

आपः शब्दका ज्ञापक अर्थ ॥

आपो वै देवी अग्रे ॥ तै० शा० ३-२-५-१ ॥

आपो वै देवानां प्रियं धाम ॥

कपि० ४७-३ ॥

आपो वै रात्रिः ॥ मै० शा० ४-५-१ ॥

आपो वै श्रद्धा ॥ मै० शा० १-४-१० ॥

आपो वै अम्बयः ॥ शां० ब्रा० १२-२ ॥

अन्नं वा आपः ॥ आपो वै यज्ञः ॥

तै० शा० २-६-११-५ ॥

आपो वै प्रजापतिः ॥ मै० शा० ३-९-६ ॥
यज्ञो वै विष्णुः ॥ तै० शा० २-५-७-३ ॥
पशुर्वै यज्ञः ॥ का० शा० ३०-९ ॥
ब्रह्मयोनिः ॥ मै० शा० २-१३-२ ॥
ऊमा सो अमृताः ॥ ऋ० १-१६६-३ ॥
पृश्निमातरः ॥ ऋ० १-२३-१३ ॥
नरोमरुतोऽमृतः ॥ ऋ० ५-५८-८ ॥
प्रजा वै नरः ॥ ऐ० ब्रा० २-४ ॥
आपो वै मरुतः ॥ शां० ब्रा० १२-८ ॥
पशवो वै मरुतं ॥ मै० शा० ४-६-८ ॥
पशवो वै सलिलं ॥ का० शा० ३२-६ ॥
पशवो वै शक्तिः ॥ मै० शा० ४-४-१ ॥
आत्मा वै पशुः ॥ शां० ब्रा० १२-७ ॥
प्राणा वा आपः ॥ तै० ब्रा० ३-२-५-१ ॥
प्राणा वै मरुतः ॥ ऐ० ब्रा० १२-६ ॥
प्राणो वै हरिः ॥ शां० ब्रा०१७-१ ॥
प्राणो वै ब्रह्म ॥ श० ब्रा० १४-६-१०-२ ॥
प्राणो वै त्रिवृत् ॥ तां० ब्रा० १-१५-३ ॥

ब्रह्म वै प्रजापतिः ॥ श० ब्रा० १३-६-२-८।

ब्रह्म वा अग्निः ॥ शां० ब्रा० ९-२।

वाग्वै ब्रह्मः ॥ ऐ० ब्रा० ६-३।

ब्रह्म वै त्रिवृत् ॥ तां० ब्रा० २-१६-४

ब्रह्मैव सर्वं ॥ गो० ब्रा० ५-१५।

पशुर्वा अग्निः ॥ कपि० ५-३।

विष्णुः ॥ ऋ० १०-१-३।

जलमाता सबके पहिले थी । जलरूप अव्यक्त, सब देवताओंका प्रिय निवास-स्थान है । अव्यक्त, अज्ञान, और श्रद्धारूप है । माता, अन्न, यज्ञ-प्रजापति-विष्णु-पशु-ब्रह्म-उषा-पृश्नि-नर-प्रजा-मरुत-शक्ति-सलिल-आत्मा-प्राण-हवि-तीनरूप अग्नि-वाणी-सर्व स्वरूप-व्यापक अग्नि है । ये सब अव्यक्तके विशेषण हैं ॥

विष्णुं निषिक्तपां ऋ० ७-३६-९।

सिञ्चित वीर्यरूप गर्भके पालन करनेवाले विष्णुके पास जाय । विष्णुर्योनिंकल्पयतु । ऋ० १० । १८४ । १ । विष्णु स्त्रीके भगको गर्भाधानके योग्य करे ॥

विष्णुं ॥ मा० श० ९-२६।

प्रसवकर्त्ता विष्णु है ॥

शिविष्टो विष्णुरिति विष्णोर्द्वे नामनी भवतः कुत्सितार्थीयं पूर्वं भवतीत्यौपमन्यवः॥

निरुक्त० ५-८-१ ॥

विष्णु—व्यापक। अव्याकृतके दो नाम हैं। प्रथम शिपिविष्टः और दूसरा विष्णु है। (इयं) यह योनि, भग, विभत्स निन्दित अर्थवाला शिपिविष्ट है। (शिपि) योनिसे (विष्टः) युक्त लिंग है॥

विष्णुः शिपिविष्टः॥ यज्ञो विष्णुः पशवः शिपिः॥ तै० ब्रा० ३-४-१-४ ॥

भगाय॥ मा० शा० ११-७॥

यज्ञो भगः॥ श० ब्रा० ६-३-१-१९॥

श्रीर्वै पशवः॥ तां० ब्रा० १३-२-२

प्राणाः पशवः॥ तै० ब्रा० ३-२-८-९ ॥

पशवो हि यज्ञः॥ श० ब्रा० ३-१-४-९ ॥

पशवो वै पुरीषं॥ श० ब्रा० ८-७-४-१२ ॥

षोडशकला वै पशवः॥

श० ब्रा० १२-८-३-१३ ॥

आपो वै सर्वादेवताः॥ ऐ० ब्रा० २-१६ ॥

योषा वा आपो वृषाग्निः॥

श० ब्रा० १-१-१-१८ ॥

अव्याकृत ही विष्णु है, सो ही कारणरूप योनि है, इस शिपिसे युक्त बहुतसृष्टि संकल्प ही वीर्यरूप लिंग है। सृष्टिकर्म ही—यज्ञ—विष्णु है, पशु ही शिपि है। यज्ञस्य भग ही पशु—प्राण—श्री—पुरीष (सलिल) है। सोलह कला युक्त अव्यक्त पशु है। सोही सर्वदेव स्वरूप है। अव्याकृत जल ही स्त्री है और रुद्रही संकल्परूप वीर्यसिंचक है॥

महतीन्द्रियं विर्यं बृहदिन्द्रिय एव वीर्यं प्रतितिष्ठति वैष्णवीषु शिपिविष्टवतीषु ॥

काठकशाखा० १४-१०॥

मैं एक बहुत होऊँ यही महा इन्द्रियरूप वीर्यको महा कारण अव्याकृत योनिमें वीर्य प्रतिष्ठत है। प्रलयस्थित बीज-सत्तारूप विष्णु की उत्तर अवस्थारूप अव्यक्त योनि वैष्णवी है—सो ही (शिपिविष्टवतीषु) योनिलिंगरूप गर्भको बीचमें धारण करके व्याप्त है॥

आपो वैं जनयोऽद्भयो हीदं सर्वं जायते॥

श० ब्रा० ६-८-२-३॥

योनि वैं पुष्करपर्णं ॥ श० ब्रा० ६-४-१-७॥

आपो वै पुष्करं ॥ श० ब्रा० ६-४-२-२॥

नाभिं ॥

ऋ० २-४०-१॥

नाभायज्ञस्य ॥

ऋ० ८-१३-२१॥

नाभिः ॥ मा० शा० २७-२०॥

जल स्त्री है-सलिलसे ही यह सब विश्व उत्पन्न होता है। अव्यक्त योनि ही पुष्करपर्ण है। अव्यक्त ही पुष्कर-कमल है। नाभिका अर्थ-कारण-यज्ञ की उत्तर वेदी-और मध्य स्वरूप है॥

शेपेनः ॥ मा० शा० २५-७ ॥

शेप-मूत्रेन्द्रियका नाम है। नरकी शेप-और नारीकी शिपि है॥

अपां पुष्पं मूर्तिराकाशं ॥ गो० ब्रा० १-३९ ॥

अपां यो अग्रे प्रतिमा बभूव ॥

अ० ९-४-२ ॥

अव्यक्तका सार प्रथम शारीरि विराट्का कारण सूत्रात्माही आकाश है। अव्यक्तका जो प्रथम विकास है सोही ब्रह्मा सूक्ष्म मूर्तिरूपसे प्रगट हुआ है। जिस ब्रह्मा के हिरण्यगर्भ देहमें विराट् स्थूल देह है--उस विराट् में पंचभूतोंके सहित सब प्राणि स्थित हैं॥

न तं विदाथ य इमा जनानान्यद्युष्माक-मन्तरं बभूव ॥ नीहारेण प्रावृताजल्प्या चासु-तृपउकथशासश्चरन्ति ॥ ७ ॥

ऋ० १०-८२-१॥७ ॥

जिसने इस मायामय जगत् को उत्पन्न किया है सोई समष्टि पुरुष--व्यष्टि स्वरूपसे भिन्न हुआ तुम्हारे अन्तःकरणमें अध्यासरूप अहंकार उत्पन्न हुआ अज्ञान है--उस समष्टि स्वरूप ब्रह्माको तुम व्यष्टि उपाधिक स्वरूपसे नहीं जानते हो--भों पुत्री पुत्र--गृह--श्वेत--लोक व्यवहार है और ये मेरे, मैं इनका हूँ--मैं इनके दुःखसे दुःखी तथा इन कुटुम्बियों के सुखसे सुखी हूँ, इस अज्ञानसे अति आच्छादित हुए बोलते हो। अपने कुटुम्बका किसी प्रकारसे भरण पोषण करना यह हमारा धर्म है, इस प्राण--पोषण की चिन्ता में सर्वदा मग्न रहते हो--और सकाम यज्ञोंसे पितृ--देवलोक के भोगोंमें विचरते हो ॥

अग्निर्वाउक्तस्याहुत य एव थम् ॥

श० ब्रा० १०-६-२-८॥

प्रजा वा उकथानि ॥ तै० ब्रा० १-८-७-२।

वज्रः ॥ शासः ॥ श० ब्रा० ३-८-१-५॥

अग्निही उक् है उसकी आहुतियें थं है। पुत्रादि प्रजा उकथ हैं। वज्र--तलवार ही शास है। पुत्रादि में मोहित हुए पिता माताको अन्तकालमें पुत्रादिका वियोग वज्ररूप है। जो पुत्रादि के मोहसे रहित ब्रह्माका ध्यान करता है वह व्यष्टि पुरुष समष्टि ब्रह्माको प्राप्त होकर ब्रह्म लोकमें सब सुख भोगता हुआ दो परार्द्धके अनन्तर ब्रह्मा में अभेदरूपसे लय हो जाता है।

मनसा ध्यायेति ब्रह्माणं ॥

श० ब्रा० १-४-३-६ ॥

कायासे अग्निहोत्र--वाणीसे वेद मंत्रोंका पाठ--और मनसे ब्रह्माका ध्यान करे यही उत्तम मार्ग है। ऋषि--छन्द--देवता--विनियोग के सहित 'नतं विदाथ' मंत्रका नित्य--जप वा पाठ करे तो सर्व पापनाशक, आत्मज्ञान प्राप्त होता है, और मरणके पीछे, ब्रह्मलोकमें जाता है फिर पुनरागमन नहीं होता है ॥७॥

ब्रह्मज्येष्ठा वीर्या सम्भृतानि ॥ ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमाततान ॥ ऋतस्य ब्रह्म प्रथमो तजज्ञे ॥ तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः ॥

तै० ब्रा० २-४-७-१० ॥ अ० १९-२२-२१ ॥

रुद्रका पुत्र सर्व अप्रतिहत ज्ञान, वैराग्य, धर्म, यज्ञादि ऐश्वर्य्यसम्पन्न ब्रह्मा प्रथम प्रगट हुआ, हिरण्यगर्भ देहधारी ब्रह्माने पहिले विराट्को रचके उसके भूमि, अन्तरिक्ष, द्यौ ये तीन भाग किये, भूमिसे अग्निका, आकाशसे वायुका, द्यौसे सूर्यका विस्तार किया। उस जगत्कर्त्ता ब्रह्माके साथ कौन बराबरी कर सकता है, जिसके सब देवता पुत्र हैं ॥८॥

सुभूः स्वयम्भूः प्रथमोऽन्तर्महत्यर्णवे ॥ दधेहगर्भमृत्वियँय्यतोजातः प्रजापतिः ॥

काण्व० श० ३-६-१०-११ ॥ मा० श० २३-६३ ॥

मैं एक बहुत होऊँ इस सुन्दर इच्छावाला महेश्वर हुआ, उसने ही अव्यक्त महा समुद्रमें सबके पहिले हिरण्यगर्भको स्थापन किया, समयके अनुकूल जिस अव्यक्त आकाशसे प्रजापति प्रगट हुआ ॥९॥

वाग्वै समुद्रः ॥ तां० ब्रा० ७-७-१॥

वाग्वा अजः ॥ श० ब्रा० ७-५-२-२१॥

मैं एक हूँ बहुत होऊँ यही वाणी समुद्र है। और यही वाणी अज है ॥

तपस्तेज आकाशं यच्चाकाशे प्रतिष्ठितं॥

तै० ब्रा० ३-१२-७-१

अग्नि सूर्यरूप तप और वायुरूप तेज, तथा जो द्यौ, अन्तरिक्ष, भूमि, और सूत्रात्मारूप आकाश भी जिस अव्याकृत आकाशमें स्थित हैं ॥

अग्निर्वै ब्रह्मा ॥ ष० ब्रा० १। १ ॥ बलं वै ब्रह्मा ॥ तै० ब्रा० ३।८।५।२॥ चक्षुर्ब्रह्मा ॥ तै० ब्रा० २।१।५।९॥ चक्षुरादित्यः ॥ जै० आर० ३। २। ७ ॥ चन्द्रमा वै ब्रह्मा ॥ श० ब्रा० १२।१।१।२॥ प्रजापत्यो वै ब्रह्मा॥ गो० ब्रा० उ० ३।१८॥ मनोब्रह्मा॥ गो० ब्रा० २।१०॥ प्राणदेवत्यो वै ब्रह्मा ॥ ष० ब्रा० १।९॥ शरद्ब्रह्मा ॥ श० ब्रा० ११।२।७।३२॥ ब्रह्मा वैष्णवा ॥ तै० शा० ७।१।५।७॥ ब्रह्म वै ब्रह्मा ॥ मै० शा० २।३।५॥ प्रजा-

पतिर्वै ब्रह्मा ॥ मै० शा० १ । ११ । ७ ॥ सर्वविद् ब्रह्मा ॥ गो० ब्रा० २ । २८ ॥ ब्रह्मा ब्रह्मा भवति ॥ शां० ब्रा० ६ । ११ ॥ हृदयं वै ब्रह्मा ॥ श० ब्रा० १२ । ८ । २ । २३ ॥ ब्रह्मा ॥ पूर्वः ॥ ऋग्० ४ । ५० । ८ ॥ ब्रह्मा ॥ ऋग्० ४ । ५८ । २ ॥ ब्रह्मा ॥ ऋग्० ४ । ८ । ४ ॥ ब्रह्मा ॥ ऋग्० ४ । ६ । ११ ॥ सुब्रह्मा ॥ ऋग्० ७ । १६ । २ ॥ ब्रह्मा ॥ ऋग्० ४ । १६ । २० ॥ ब्रह्मा ॥ ऋग्० १० । ८५ । ३४ ॥

अग्नि, बल, सूय, चन्द्रमा, प्रजापतिका पुत्र, मन, प्राणका देवता जीव, शरद् ऋतु, हवि, रुद्रही ब्रह्मा, प्रजापतिही ब्रह्मा, सबके जाननेवाला ब्रह्मा ही ब्रह्मा है। सूर्यमण्डलरूप हृदय, महावृद्ध, बृहस्पति, बृह्मणस्पति पहिले, होता, उत्तम स्तुतिवाला, स्तोत्र-सूक्त-मंत्र, ब्राह्मण जाति, इन शब्दोंका नाम ब्रह्मा है ॥

ॐ हिरण्यगर्भ सूक्तस्य स्वयम्भू ऋषिः ॥ त्रिष्टुप्छन्दः ॥ ब्रह्मा देवता, सर्व पातक विनाशनार्थे च सर्वसुख प्राप्त्यर्थे विनियोगः ॥

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकआसीत् ॥ सदाधार पृथिवीं द्यामुते मां कस्मै देवायहविषा विधेम ॥ १ ॥

सबके पहिले अद्वितीय हिरण्यगर्भ ही प्रगट हुआ था। वह ब्रह्मा सब प्राणि मात्रका उत्पत्ति, पालन, संहारकर्त्ता स्वामि था,

उस हिरण्यगर्भ देहधारीने विराट्को रच कर उसमें इन द्यौ, आकाश, जल, भूमिको अपने अपने स्थानोंमें स्थापित किया, और ब्रह्माका नाम (कः) सुख स्वरूप है, क नामवाले प्रजापति देवकी हविद्वारा हम यजन-पूजन करते हैं ॥

अपांसखा प्रथमजाः ॥ ऋ० १०-१६८-३ ॥

अव्यक्तके प्रथम विकासरूप मित्र ब्रह्मा है ॥

अमृतं वै हिरण्यं रेतो वै हिरण्यं ॥ सत्यं वै हिरण्यं ॥ का० शा० २४-२४-६ ॥

अक्षररूप तेजपुञ्ज ही अव्यक्तका सार हिरण्यगर्भ देह है, उस समष्टि सूत्रात्मामें चेतन सत्य स्वरूप ब्रह्मा है ।

ऋतं वै सत्यं ॥ मै० शा० १-८-७ ॥

ब्रह्म वै ब्रह्मा ॥ का० शा० १९-४ ॥

स प्रजापतिमेव प्रथमं देवतानां ॥

ऐ० ब्रा० ३३-४१ ॥

प्रजापति वैं हिरण्यगर्भः ॥

तैं० शा० ५-५-१-२ ॥

प्रजापतिर्वै ब्रह्मा ॥

का० शा० १-१४ ॥ मै० शा० १-११-७ ॥

एको हि प्रजापतिः ॥ मै० शा० १-६-१२ ॥

पूर्णो वै प्रजापतिः ॥ कपि० शा० ७-८ ॥

प्रजापति वैं कः ॥ तै० शा० १-७-६-६ ॥

प्रजापतिर्वाव ज्येष्ठः ॥ तै० शा० ७-१-१-४ ॥

कस्मै...काय ॥ मा० शा० २०-४-२२-२० ॥

ऋत, ब्रह्मा नामक रुद्र ही, सत्यरूप ब्रह्मा है। सब देवोंमें पहिला देव प्रजापति है। हिरण्यगर्भ, प्रजापति ही ब्रह्माका नाम है। एक ही ब्रह्मा पूर्णपुरुष है। (कः) क नाम ब्रह्माका है। सबमें महान् ब्रह्मा ही है। (कस्मै) ब्रह्माके लिये (काय) ब्रह्माके लिये ॥ १ ॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषंयस्यदेवाः ॥ यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मैदेवाय हविषा विधेम ॥ २ ॥

जिस ब्रह्माने अधिदैव देवताओं को अन्न भक्षणके लिये गौ, अश्व, मनुष्यमय देह दिया, फिर ब्रह्माने देवताओंको उस जड देहमें अध्यात्म प्राणेन्द्रियोंके रूपसे स्थापन किया, जिस पिताकी आज्ञा समस्त देवता मानते हैं और जिसकी सब देव, दैत्य, पितर, गंधर्व, राक्षस, यक्ष, नाग, सुपर्ण, मनुष्य उपासना करते हैं, जिस परमेष्ठीकी अमृत्-हिरण्यगर्भ प्राणरूप छाया है, और जिस विधाताकी अक्षर, अमृत छायाकी, प्रति-

रूप मृत्यु–विराट् स्थूल छाया है, उस समष्टि सूक्ष्म, सू
स्वरूपधारी ब्रह्मदेवकी ध्यानके द्वारा उपासना करते हैं ॥

आत्मा वै तनूः ॥ शा० ब्रा० ७–७–२–६ ॥

बलं वै शवः ॥ शा० ब्रा० ७–३–१–२१ ॥

शवः ॥ ऋग्० १०–२३–५ ॥ अ० ११–१०–१३ ॥

बलं वै मरुतः ॥ कपि० शा० ४६–१ ॥

प्राणो वै मरुतः ॥ ऐ० ब्रा० ३–१६ ॥

प्राणा इन्द्रियाणि ॥ तां० ब्रा० २२–४–३ ॥

आत्माही शरीर है, शवरूप प्राण ही बल है । प्राण
इन्द्रियें है ॥

**अर्द्धं वै प्रजापतेरात्मनोमर्त्यमासीदर्द्ध-
ममृतम् ॥** शा० ब्रा० १०–१–३–१५ ॥

प्रजापतिकी आत्माके दो रूप, आधा मरणधर्मी विकारी
क्षर विराट् है, और आधा अविनाशी परिणामरहित, अक्ष
हिरण्यगर्भ देह है ॥

प्रिया च मानसी प्रतिरूपा च चाक्षुषी ॥
कौ० आर० ६–३ ॥

ब्रह्माकी दो स्त्री, एक मानसी, अमृत है, और दूसरी
प्रतिछायारूप चाक्षुषी–मृत्यु है ॥ यही दूसरे शब्दोमें विद्या
और अविद्या है तथा दिति मृत्यु है और अदिति अमृत है ॥

प्रजापतिश्च रतिगर्भे अन्तरदृश्यमानो बहुधा विजायते ।। अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं कतमः सकेतुः ।। अ० १०-८-१३ ।।

प्रजापतिने अपने मृत्युसे सब व्यष्टि चराचर शरीरोंके सहित त्रिलोक विराट्को उत्पन्न किया, यही विराट अमृतका चतुर्थांश है। और सब जड शरीरोंका अति सुखरूप अमृत तीन पाद है। इस प्रजापतिका जो तीन भागात्मक आधार था सो ही अतिसुखरूप सूर्यमण्डल है। प्रजापति सूर्यमण्डलके मध्यमें विराजमान हुआ, रूप, जन्मरहित होने पर भी सो ही ब्रह्मा विविध शरीरोंके द्वारा बहुत प्रकारसे उत्पन्न होता है ।।

एष वै गर्भो देवानां य एष तपति ।।
श० ब्रा० १४-१-४-२ ।।

प्रजा वै पशवो गर्भः ।।
श० ब्रा० १३-२-८-५ ।।

पुरुष उ गर्भः ।। जै० आर० ३-३६-३ ।।

इन्द्रियं वै गर्भः ।। तै० ब्रा० १-८-३-३ ।।

रश्मिर्देवानां ।। तां० ब्रा० १-६-७ ।।

आत्मा वै पशुः ।। शां० ब्रा० १२-७ ।।

अग्निः पशुरासीत् ।। वायुः पशुरासीत् ।। सूर्यः पशुरासीत् ।। मा० श० २३-१७-१८ ।।

जो यह देवतारूप किरणोंका धारण करनेवाला गर्भ है सो ही यह सूर्य तपता है। किरणरूप प्रजाका समूह सूर्य गर्भ है। पुरुष नाम शरीरका है सो ही सूर्यमण्डल देह ही गर्भ है। इन्द्रिय समूह ही गर्भ है, उस अन्तःकरणमें चेतन है। सूर्यकिरण ही देवताओंका रूप है। मृत्यु अमृतही आत्मारूप पशु है। अग्नि, वायुः, सूर्य ही पशु है ॥

य आदित्येसप्रतिरूपः ॥ प्रत्यङ्ह्येषसर्वाणिरूपाणि ॥ जै० आर० १-२७-५।

पुत्रः प्रतिरूपो जायते ॥

तै० ब्रा ३-९-२२-२।

प्रजापति वैं पिता ॥ ऐ० ब्रा० १८-८।

जो सूर्यमण्डलमें पूर्ण पुरुष है सोही व्यष्टि शरीरों जीवरूपसे प्रतिरूप है। प्रत्येक् शरीरोंमें यह भर्ग विराजमान है, इसलिये ही सब प्राणि मात्र इसके रूप हैं। पिताके प्रतिरूप पुत्र उत्पन्न होता है ॥

प्रथमजं देवꣳ हविषा विधेम ॥ स्वयम्भु ब्रह्म परमं तपो यत् ॥ स एव पुत्रः स पिता, स माता ॥ तपोह यक्षं प्रथमꣳसम्बभूव, इति ॥

तै० ब्रा० ३-१२-३-१ ॥

जो सृष्टि संकल्प अभिमानी देव था सो ही प्रथम प्रगट हुआ, सो स्वतःसिद्ध सृष्टि विचार सम्पन्न सत्य ज्ञानरूप है सोही पिता संकल्पी है और सोही संकल्प क्रिया माता है। सो ही ब्रह्मा पुत्र है जो मैं एक हूँ वहुत होऊँ यही तपरूप प्रसिद्ध देव है, उस पूज्य प्रथम प्रगट होनेवाले देवको हम हवि आदिसे परिचर्य्या करते हैं ॥

पिता ॥ ऋ० ७-८२-३ ॥

ब्रह्माही पिता है। सो ही पिता सूर्यपुत्र है ॥

सत्यं ॥ ऋग्० ८-८७-५ ॥

सत्य ही ब्रह्म है ॥

सत्यꣳहि प्रजापतिः ॥ श० ब्रा० ४-२-१-२६

प्रजापति ही सत्य है ॥

नूनं जनाः सूर्येणप्रसूता अयन्नर्थानिकृ-णवन्नपांसि ॥ ऋग्० ७-६३-४ ॥

निश्चयही सब जीवगण सूर्यसे उत्पन्न होकर करनेयोग्य कर्मोंको करते हैं। जो अव्यक्तका विकास स्वरूप ब्रह्मा है, सो ही ब्रह्मा सूर्य है ॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ॥ य ईशेअस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ३ ॥

जो ब्रह्मा अपनी अग्नि वायु सूर्य महिमासे चक्षु इन्द्रि
तथा गतिशक्तिवाले प्राणियोंका एक राजा हुआ है, जो
दो पगवाले, और चार पगवालोंका स्वामी है, उस प्रजापति
देवका हम हविसे सत्कार करते हैं ॥

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं
रसया सहाहुः ॥ यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ४ ॥

जिसकी महिमासे ये सब तुषाराच्छादित पर्वत उत्पन्न
हुए हैं, जिसकी महिमासे नदी समूह के सहित समुद्रको धारण
करनेवाली भूमि उत्पन्न हुई है। जिसकी महिमासे इन प्रदि
शाओंके सहित अन्तरिक्ष, द्यौ प्रगटा है, जिससे दिनरात
दोनों हाथोंको रचा है, उस ब्रह्मदेवकी हम अन्तःकरणके द्वारा
प्रार्थना करते हैं ॥

आत्मा वै हविः ॥ कपि० शा० ७-१॥

आत्मा पशुः ॥ कपि० ४१-६॥

वाणी, मन ही आत्मरूप हवि ही पशु है ॥

येन द्यौरुग्रा पृथिवि च दृह्लायेनस्वः स्त
भितं येन नाकः ॥ योअन्तरिक्षे रजसो विमानः
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ५ ॥

जिसने विस्तृत द्यौ, और भूमिको अपने अपने स्थानमें अचल रूपसे स्थापन किया है, जिस ब्रह्माने सूर्य और (स्वः) सूर्यके प्रकाशसे परे (नाकः) अलोकात्मक महः जनः तपः सत्य लोक मय स्वर्गको निश्चल रोक रक्खा है, तथा जो आकाशरूप अन्तरिक्षमें जलकी रचना करता है, उस ब्रह्माका ही हम सब ध्यान करते हैं ॥

प्रजापतिः सर्वा देवताः ॥
तै० शा० ७–८–६–३ ॥

आपो वै प्रजापतिः ॥ मै० शा० ३–९–६ ॥

सर्व देवादि स्वरूप प्रजापति है। (आपः) सर्वव्यापक ब्रह्मा है ॥ ५ ॥

यं क्रन्दसी अवसातस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसारेजमाने ॥ यत्राधिसूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ६ ॥

जिस चराचर जगत्की स्थितिके लिये, ब्रह्माने विराट्से शोभायमान सर्वत्र दीखनेवाले द्यौ भूमिको निश्चल किया, जिस द्यावा पृथिवीमय अण्डमें प्रगट हुआ सूर्य विशेष रूपसे प्रकाशित हुआ, उदय अस्त होता है, उसको रचनेवाले विधाताकी हम नमस्कारके द्वारा प्रार्थना करते हैं ॥

येनावृतं खं च दिवं महीं च येनाऽऽदित्य-
स्तपति तेजसाभ्राजसा च ॥ यमन्तः समुद्रे
कवयो वयन्ति तदक्षरे परमे प्रजाः ॥

तै० आर० १०-१-३॥

ब्रह्माने जिस मृत्युसे विराट्‌को उत्पन्न किया उसी विराट्से द्यौ, अन्तरिक्ष, और भूमिको ढाँक रक्खा है, और जिस सूत्रात्माके प्रदीप्त तेजसे सूर्यमण्डलको रचा उसी तेजसे सूर्य तपता है। जिस ब्रह्माको अपने हृदयरूप समुद्रके बीचमें अभेद स्वरूपसे ज्ञानी देखते हैं वे सब उपासक प्रजायें, देह त्यागके पीछे पुनरागमन रहित अविनाशी उत्तम ब्रह्मलोकमें उस ब्रह्माको प्राप्त होती हैं ॥६॥

आपो ह यद्‌बृहती विश्वमायन् गर्भंद-
धानाजनयन्तीरग्निम् ॥ ततो देवानां समव-
र्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥७॥

सब भुवनोंके आकारमें प्रसिद्ध व्यापक महा सूत्रात्मा था, जो हिरण्यगर्भ देहने अपनी प्रति छायाको गर्भ रूपसे धारण करती हुई विराट्‌को उत्पन्न किया, उस विराट्से देवताओंका प्राणरूप एक संवत्सर हुआ। उस ब्रह्मदेवके लिये हवि विधान करते हैं ॥

संवत्सरो वै देवानां जन्मः ॥

शा० ब्रा० ८-७-३-२१ ॥

संवत्सर ही देवताओंका जन्म है ॥

अग्निर्वै विराट् ॥ कपि० शा० २९-७ ॥

मृत्युर्वाअग्निः अमृतं हिरण्यं ॥

कपि० शा० ३१-१ ॥

सर्वा देवता एता हिरण्यम् ॥

ऐ० आर० १-५८-१० ॥

अग्नि ही विराट् है। मृत्यु ही विराट् है। अमृत ही हिरण्यगर्भ है। ये सब देवता ही हिरण्यगर्भरूप हैं ॥

आपोहि पयः ॥ शां० ब्रा० ५-४ ॥

आप नाम जलका है ॥

चन्द्रमाह्यापः ॥ शुक्राह्यापः ॥

तै० ब्रा० १-७-६-३ ॥

चन्द्रमा ही आप है, और हिरण्यज्योति सत्यही आप है ॥

आपो वै द्यौः ॥ श० ब्रा० ६-४-१-९ ॥

आपो वै सहस्रियोवाजः ॥

श० ब्रा० ७-१-१-२२ ॥

चक्षुर्वाअपांक्षयः ॥ श० ब्रा० ७-५-२-५४ ॥

आपो वै सर्वेकामाः श० ब्रा० १०-५-४-१५ ॥

अमृतं वा आपः ॥ श० ब्रा० १-९-३-७।

द्यौहि आप है। स्वर्गके सहस्रों भेद ही आप है। सूर्य जलोंका स्थान है। सर्वसंकल्प ही आप है। अमृत ही आप है।

आपो आग्रेविश्वमावन् गर्भं दधाना अमृता ऋतज्ञाः यासुदेवीष्वधिदेव आसीत्कस्मै देवायहविषा विधेम ॥ आपोयत्संजनयन्तीर्गर्भमग्रेसमैरयन् ॥ तस्योत जायमानस्योल्ब आसिद्धिरण्ययः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

अ० ४-२-६-८।

स्थूल विराट्के पहिले सर्व भुवनोंके रूपमें प्राप्त होनेके लिये व्यापक सर्वज्ञ अमृतशक्ति मृत्यु कार्यरूप सारको विशेषरूपसे धारण करती हुई आप भी उसके साथ विकास करने लगी। जिस विकासकी पूर्ण अवस्थामें विशेष रूप देव था, उस ब्रह्म देवकी हम एकचित्तरूप हविसे उपासना करते हैं। प्रजापतिसे प्रेरित हुई अमृत छाया गर्भधारण करती हुई, सूर्य पुत्रको चराचर जगत्के पहिले उत्पन्न किया। और इस प्रगट होनेवाले चेतन पुरुषका गर्भ वेष्टन वस्त्र सूर्य मण्डल तेजही हिरण्य है। उस हिरण्यमण्डलमें जो आच्छादित गर्भरूप चेतन है, सो ही सत्यलोकवासी हिरण्यगर्भका पुत्र दूसरा सूर्य मध्यवर्ती पुरुष भी हिरण्यगर्भ है। क्योंकि चेतन और अमृत शक्तिका परिणाम नहीं होता, मृत्युका ही परिणाम है, इसलिये ही पिता ब्रह्मा

और पुत्र भर्गका नाम हिरण्यगर्भ है जो पहिले सूत्रात्मा देहका स्वामी ब्रह्मा था, सोही देव सूर्यका स्वामी है, उस अभेद रूप प्रजापतिकी हम यज्ञके द्वारा आराधना करते हैं ॥७॥

यश्चिदापोमहिनापर्य्यपश्यद्दक्षं दधानाजनयन्तीर्यज्ञम् ॥ यो देवेष्वधिदेव एक आसीत्कस्मैदेवाय हविषा विधेम । ८

जिस समय व्यापक कारण जलने सामर्थ्यवाले यज्ञरूप विराट्को उत्पन्न किया, उस समय ब्रह्माने अपनी सूर्यमहिमासे उस व्यापक विराट्के ऊपर सर्वत्र अवलोकन किया तथा जो देवोंमें—समष्टि सूत्रात्मा देहमें एक समष्टि उपाधिक चेतन ब्रह्मा था, सो ही रविस्वामी सविता है, उस ब्रह्मा स्वयंप्रकाशीका हम बुद्धिके द्वारा ध्यान करते हैं ।

यासुदेवीषु ॥

यह पद स्त्रीलिंग है ॥

यो देवेषु ॥

यह पुल्लिंग है । एक ही देव स्त्री पुरुष है ॥

आदित्योमूर्ध्नोऽसृजत् ॥ तां० ब्रा० ६–५–१ ॥

सूर्यको ब्रह्माने विराट्के द्यौ मस्तक से उत्पन्न किया। यही भर्गरूप रुद्र ब्रह्माका पुत्र है ॥

आपोहवा इदमग्रे सलिलमेवास। ता अकायन्त कथन्नु प्रजायेमहीतिता अश्राम्यंस्तास्तपोऽतप्यन्त। तासुतपस्तप्यमानासु हिरण्यमाण्डं सम्बभूव जातो ह तर्हि संवत्सरं आस तदिदं हिरण्यमाण्डं यावत्संवत्सरस्य वेलापर्य्यप्लवत्। ततः संवत्सरे पुरुषः समभवत्। स प्रजापतिः॥ श० ब्रा० ११-१-६-१-११-६-४-१॥

इस जगत्के पहिले सूत्रात्मा कारण ही था। उस अभिमानी ब्रह्माने विश्व रचनेकी इच्छा की मैं कारण अवस्थासे कार्य रूपमें कैसे प्रगट होऊँ? उसने क्रमपूर्वक सृष्टि रचनेके लिये विचार किया। यही विचाररूप श्रम तपको तपा। उस ब्रह्माके विचारते ही एक तेजोमय अण्डा उत्पन्न हुआ, वह अण्डा एक पूर्ण अवस्थामें पूर्ण विकास पर्य्यन्त उस हिरण्यगर्भ रूप सूक्ष्म कारण अवस्था पर स्थित रहा, पूर्ण विकास होनेके पीछे उस विराट्रूप अण्डसे जो पुरुष उत्पन्न हुआ, सो ही सविता प्रजापति है॥

आपस्तपोऽतप्यन्ततास्तपस्तप्त्वागर्भमादधत्ततएष आदित्योऽजायत॥ शा० ब्रा० २५-१॥

व्यापक ब्रह्माने विश्व रचनेकी इच्छारूप तप किया। फिर उसने अपनी अमृतमें मृत्युको विशेष रूपमें प्रगट करनेके लिये

विचार किया सो ही गर्भ धारण किया, उस मृत्युके पूर्ण विकास विराट् से यह सूर्य उत्पन्न हुआ ॥

असदेवमग्र आसीत् ॥ तत्सदासीत्तत्स-मभवत्तदाण्डं निरवर्त्ततत्संवत्सरस्यमात्रामशयत तन्निरभिद्यत ते आण्डकपाले रजतञ्च सुवर्णञ्चाभवताम् ॥ तद्यद्रजतंसेयंपृथिवीयत्सुवर्णं सा द्यौर्यज्जरायुते पर्वता यदुल्ब ँ स मेघो नीहारो याधमनयस्तानद्यो यद्वास्ते यमुदकं स समुद्रः ॥ अथयत्तदजायत सोऽसावादित्यस्तं जायमानं घोषाउलूलवोऽनूदतिष्ठन्त्सर्वाणि च भूतानिः ॥ तां० आ० (छां० उ०) ३-१९-१-२-३ ॥

इस विश्वके प्रथम, प्राणशक्ति रूप हिरण्य गर्भ असत्, सूक्ष्म था, सो ही सूत्रात्मा सूर्य आदि क्रियाके रूपमें आनेके लिये अपनी प्रतिछाया मृत्युके साथ विकास करने लगा, जैसे २ मृत्यु स्थूलके रूपमें घनीभूत होती गयी कि उस आधार भक्षको आश्रय करके अमृत भी स्थूल रूपसे प्रतीत होने लगा; सो ही सत् हुआ, जैसे काष्ठ आदिको आश्रय करके ही सामान्य अग्नि विशेष रूपसे दीखता है, तैसेही कार्यको आश्रय करके विशेष रूपसे क्रिया दीखती है। सो ही मृत्यु कार्य अमृतको आच्छादन करता हुआ, स्थूलके आकारमें अण्ड हुआ, वह एक संवत्सरको

प्राप्त होकर निश्चेष्ट रूपसे सोता रहा, वह संवत्सररूप पू
अवस्थामें सम्पन्न होकर फूटा कि उस विराट्रूप अण्डेके
कपाल हुए, एक अन्धकारमय, और दूसरा प्रकाशमय हुआ
जो रजत कपाल था सो ही यह भूमि हुई। तथा जो सुव
था सो ही यह द्युलोक हुआ। जो जरायु था सो ही पर्व
हुए। जो सूक्ष्मांश था, सो ही मेघ सहित कुहर—धुम्मस हुअ
जो नाड़ी थीं वे ही नदी हुईं, जो मूत्रस्थान था, सो ही समु
हुआ। इसके पश्चात् जो वह उत्पन्न हुआ सोही आदित्य है
उसके जन्मते ही महाशब्द हुआ, उस सूर्यके प्रगट होनेके पीछे स
प्राणि—मात्र उत्पन्न हुए। यहाँ संवत्सर का अर्थ, प्रथम अवस्था
पूर्ण अवस्थामें आना ही है। अव्यक्त, असत्, सलिल, आ
प्राण आदि नामवाला है, और हिरण्यगर्भ सत् सत्य है। हि
ण्यगर्भ, असत्, आप, सलिल, प्राण है, और विराट् सत् है
तथा विराट्, असत्, सलिल, आप है, सूर्य सत्, सत्य है
कारणकी अपेक्षासे कार्य उत्तरोत्तर सत् है। और कार्यकी
अपेक्षासे कारण पूर्व पूर्व असत्, सलिल, आप आदि
नामवाला है॥

इयं वैरजता सौ हिरण्यम्॥ का० शा० ११-४॥
रजतेवहीयं पृथिवी॥ श० ब्रा० १४-१-३-११
रजता रात्रिः॥ तै० ब्रा० १-५-१०-७॥
हरणीवहिद्यौः॥ श० ब्रा० १४-१-३-२१॥

यह पृथिवी ही रजत है, और यह द्यौ ही सुवर्ण। रजतही यह भूमि है। यह रजत ही रात्रि हो ती है। पृथिवीकी छाया ही रात्रि है। सुवर्णके समान ही यह द्यौ है॥

अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवति सारथिः॥

ऋग० १-१५८-६॥

कर्मफल पानेकी इच्छासे यत्नशील, उपासकोंको वैदिक कर्मरूप रथसे ले जानेवाला (ब्रह्मा) सविता ही सारथि है, यहाँ पर ब्रह्मा शब्द सूर्य अभिमानी चेतन पुरुष सविताका वाचक है। जो अण्डसे ब्रह्माकी उत्पत्ति सुननेमें आती है, वह सब ही सूर्य की है, विराट् अण्डके दो भाग भूमि और द्यौ हैं। उन दोनों कपालोंके बीचमें सूर्य प्रगट हुआ है।

सोमो वै प्रजापतिः॥ श० ब्र० ५-१-३-७॥

योनि वैं प्रजापतिः॥ मै० शा० २-५-१॥

रेतो वै सोमः॥ श० १-९-२-९॥

सोमो वै सर्वादेवताः॥ ऐ० ब्रा० २-३॥

सोमो वै प्रजापतिः॥ श० १४-९-२-६

प्रजातिस्तेजोवीर्यंरुक्मः॥ श० ६-७-१-९॥

त्रिवृद्धि प्रजातिः पितामाता पुत्रोऽथो गर्भंउल्बंजरायु॥ श० ६-५-३-५॥

प्रजापतिः सविता भूत्वा प्रजा असृजत।
तै० ब्रा० १-६-४-१।

प्रजापति वैं सविता ॥ तां०ब्रा० १-६-८-१७।

इमाः प्रजाः सवितृ प्रसूताः खलु
प्रजाः प्रजायन्ते मनो वै सविता ॥
मै० शा० ४-७-१।

वाक् सावित्री ॥ जै० आर० ४-२७-१५।

असौ आदित्यः सर्वाप्रजाः ॥
तै० शा० ६-८-८-१।

चेतन ब्रह्माकी शक्ति अमृत है। अमृतकी प्रतिछाया मृ
है। चेतनसे दोनों भिन्न नहीं हैं, इसलिये ही अमृत मृत्यु
प्रजापति रूप है। सोम ही ब्रह्मा है। कारण अवस्था ही प्रज
पति है। उस योनिमें संकल्प वीर्य ही सोम है। सोम ही
देवस्वरूप है। सोम ही प्रजाति है। प्रजाति ही तेज, वीर्य,
है। प्रजाति तीन रूपसे वृद्धि पाती है। पिता संकल्पी, मा
संकल्प, पुत्र ब्रह्मा है, और ब्रह्मा पिता सरस्वती रूप विरा
अण्ड माता है, तथा सूर्य गर्भ, किरण समूह उल्ब-तेज
जरायु है। सत्य-ब्रह्मलोक-अव्याकृत गुहावासी भगवान् ब्र
ही, सूर्यमण्डलमें सविता नामको धारण करके प्रजाओं
रचता है। ब्रह्म लोकवासी ब्रह्मा ही सूर्यमण्डलवासी सवि
है। ये सब प्रजायें सवितासे उत्पन्न हुई हैं, निश्चय ही सम

प्रजायें सवितासे प्रगट होती हैं। मन ही सविता है और सविताका संकल्प ही मनु है। वाणी सावित्री है, वाणीकी विकार अवस्था ही शतरूपा, अनन्तरूपा सरस्वती है। यह द्यौमें स्थित सूर्य ही सम्पूर्ण प्रजा स्वरूप है॥

प्रजापत्यो वै ब्रह्मा॥ गो० ब्रा० उ० ३–१८॥

प्रजापति ब्रह्माका पुत्र सविता भी ब्रह्मा है॥

नित्यश्चाकन्यात्स्वपतिर्दमूनायस्माउदेवः सविता जजान॥ ऋग्० १०–३१–४॥

दोपरार्द्ध पर्यन्त स्थित ब्रह्मा सामर्थ्यसे दिव्यसुखको जिसने अपनी इन्द्रियोंको वशमें किया है, उस शुद्ध अन्तःकरणवाले संन्यासीके लिये देता है। और मैं कवष नामका गृहस्थ हूँ सो सविता देव मेरे लिये इस लोक और परलोकमें सुख उत्पन्न होनेवाले दृष्टादृष्ट फलको देवे। इस मंत्रमें सत्यलोकवासी ब्रह्मा त्रिलोकवासी सवितारूप ब्रह्मासे भिन्न है॥

नैतावदेनापरो अन्यदस्त्युक्षासद्यावा पृथिवी बिभर्ति। त्वचं पवित्रं कृणुतस्वधावान्यदीं सूर्यं नहरितोवहन्ति॥ ऋग्० १०–३१–८॥

द्यौ भूमिमय विराट् अण्डात्मक त्रिलोकी ही अन्तिम नहीं है। इन भूमि, आकाश, द्यौके ऊपर भी दूसरे और भी अलोक हैं, उनमें स्थित हुआ वह ब्रह्मा अपने सूक्ष्म स्वरूपसे स्थूल अण्डमय द्यावा भूमीको रचकर उनको धारण करता है, और

सो ही ब्रह्मा सूत्रात्माके विभाग मह, जन, तप, सत्य मय अ
तके सहित विराट् अन्नका स्वामी है, जिस समय सूर्यके कि
णात्मक घोडोंने सूर्यका वहन करना प्रारम्भ भी नहीं कि
था, उस सूर्यरूप ब्रह्माकी उत्पत्तिके पहिले, पवित्र ब्रह्मविद्या
हिरण्यगर्भ देहका विकास था, फिर उस, दिव्य, प्रज्ञा, बुद्धि
माया, आदि नामवाली सूत्रात्मा देहसे, कार्य मृत्यु, अवि
मय विराट् अण्डको प्रगट किया, जिस अण्डे में पंचभूत उत्प
हुए उस पंचभूत समूह ब्रह्मके दो रूप, एक मूर्त्त जल, भूमी
इनके आधार विशेष रूपसे अग्नि प्रगट होता है, इस लिये
अमूर्त्त सामान्य अग्नि भी विशेष रूपसे मूर्त्त है। इन तीनों
मूर्त्तोंका सार सूर्यमण्डल है, और वायु अन्तरिक्ष दूसरे अमू
रूपका सार सूर्यमण्डलका प्रकाश है। उस अमूर्त्त प्रकाश
सविता चेतन रूप है। यही अधिदैव, समष्टि चेतन सविता
व्यष्टि शरीरोंको रचकर स्वयं जीव रूपसे उन जड शरीरों
प्रविष्ट होता है। इसलिये ही प्रजा, सूर्य देहधारी सविता प्रजा
पति पिताके उषारूप आगमन चिह्न को देखकर शय्यासे उठ
स्नान कर पिताको गायत्री मंत्र से अर्घ देती हुई गायत्री मंत्र
जपती है ॥ ८ ॥

मानोहिंसीज्जनितायः पृथिव्यायोवादिवं
सत्यधर्मा जजान। यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्ज
जान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥९॥

जो संकल्पी आधार था सो ही संकल्प क्रियाका प्रेरक हुआ, वह क्रिया कारणके रूप प्रगट हुई। उसने अपने अधिष्ठान सत्यको ब्रह्मारूपसे धारण किया, सो ही ब्रह्मा परम व्योमवासी प्रगट हुआ। उसने अपने सूक्ष्म देहसे प्रसन्न हो कर विराट् अण्डको रचा। उसीने विराट्में द्यौ, अन्तरिक्ष, भूमिको उत्पन्न किया। फिर उन तीनों स्थानोंमें क्रमसे सूर्य, वायु, अग्निका उत्पन्नकर्त्ता हुआ। सो ही ब्रह्मा इन तीनों महिमाओंमें चेतन-देवता रूपसे विराजमान हुआ, तीन पुत्रोंके सहित पिता ब्रह्मा हमारी किसी भी समयमें कुगति आदि हिंसा न करे। क, नामवाले ब्रह्मदेवकी हम एकचित्तसे प्रार्थना करते हैं। वह पितामह, हम वैदिक उपासकोंका सर्वदा कल्याण करे ॥ ९ ॥

प्रजापते नत्वदेतान्यन्यो विश्वाजातानि-परिताबभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोवयं स्याम-पतयोरयीणाम् ॥१०॥ ऋग्० १०-१२१-१-१० ॥

हे प्रजापते, आपके अतिरिक्त और कोई भी, इन चराचर उत्पन्न होनेवाले प्राणियोंके सहित समस्त भुवनोंको वशमें नहीं रख सकता है, जिस अभिलाषासे आपकी प्रसन्नताके लिये हम हवन करते हैं, सो ब्रह्मदेव हम पर प्रसन्न हो, और हम ज्ञानादि ऐश्वर्य्योंके स्वामी होवें ॥

साहस्रो वै प्रजापतिः ॥ मै० शा० ३-३-४ ॥

अनन्त रूपधारी ब्रह्मा है ॥ १० ॥

हिरण्यगर्भ सूक्तका नित्य पवित्र स्थानमें तीन बार पाठ करे तो इस लोकमें मनोवाँच्छित भोग भोगता है, और देहत्यागके अनन्तर ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है ॥ ॥

ॐ देवानां नु वयं सूक्तस्य बृहस्पति ऋषिः ॥ अनुष्टुप छन्दः ॥ अदिति दक्ष देवता पुत्र धनार्थे विनियोगः ॥

देवानां नु वयं जानाप्रवोचाम विपन्यया।
उक्थेषु शस्यमानेषु यः पश्यादुत्तरे युगे ॥१॥

मैं बृहस्पति देवताओंके जन्मको स्पष्ट रूपसे कहता हूँ, कोई भी मेरे समान इस वर्तमान कल्पके पीछे आनेवाली कल्पमें भी देवोंके जन्मको जानता है, वह पुरुष, प्रशंसनीय अग्नि वायु, सूर्य सोम इन्द्र प्रजापतिके लोकोंमें प्राप्त होता हुआ ब्रह्मा ब्रह्म लोकमें देखेगा ॥ १ ॥

ब्रह्मणस्पतिरेतासंकर्मार इवाधमत्। देवानां पूर्व्वे युगेऽसतः सदजायत ॥२॥

कल्प प्रलय के अन्त और कल्प सृष्टिके आदिमें मृत्यु क्षुधाका भोक्ता प्राण अमृत देहधारी ब्रह्माने लोहार के समान देवताओंको उत्पन्न किया। जैसे लोहार सूक्ष्म अग्निको धौंकनी से धमन करके महान् ज्वालाको उत्पन्न करता है, तैसे ही कल्प प्रलयमें सब जीव त्रैलोकीके संहित प्रजापति में लय होते

फिर उनके कर्मानुसार कल्प सृष्टिमें ब्रह्माकी सूक्ष्म देह से स्थूल विराट् उत्पन्न होता है। यही सूक्ष्म सूत्रात्मा असत् है, और स्थूल विराट् ही सत् है॥

यो अन्नादो अन्नपतिर्बभूव ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्म॥

अ० १३-३-५॥

ब्रह्म वै ब्रह्मणस्पतिः॥ का० शा० ११-४॥

वाग्वै ब्रह्म तस्यापतिस्तस्मादु ब्रह्मणस्पतिः॥

बृ० उ० १-३-२१॥

जो अन्नका भोक्ता है सो ही अन्नका स्वामी हुआ, अन्नका नाम ब्रह्म है और भोक्ता प्राणका नाम ब्रह्मणस्पति है। अन्नका पति ही ब्रह्मणस्पति है। वाणी ही ब्रह्म है, इसलिये ही उस वाणीका जो स्वामी है, सो ही ब्रह्मणस्पति है॥

अन्नं वै विराट्॥ ऐ० ब्रा० १-६॥

अन्न ही विराट् है॥

इमे वै लोकाः सतश्च योनिरसतश्च यच्चह्यस्तियच्च न तदेभ्य एव लोकेभ्यो जायते॥

श० ब्रा० ७-४-१-१४॥

इमे वै लोका उखा॥

श० ब्रा० ६-५-२-१७॥

योनिर्वा उखा॥ श० ब्रा ७-५-२-२॥

आत्मैवोखा ॥ श० ब्रा० ६-८-३-४

ये सब लोक ही सत् हैं, और इन लोकोंका कारण असत् है। जो दृष्टिगोचर प्रत्यक्ष जगत् दीखता है, और नहीं है, अर्थात् जो सर्व कालमें नहीं है सो वस्तु भी नहीं और उससे किसीकी उत्पत्ति भी नहीं है। इन दोनोंसे विल[illegible] तीसरा है, उसी असत्-प्राणसे सब लोक प्रगट होते हैं, [illegible] लोकोंसे प्रजा उत्पन्न होती है। ये सबलोक ही उखा [illegible] योनि ही उखा हैं। आत्माही उखा-हन्डी है ॥

द्वयं वावेदमग्र आसीत्सच्चैवासच्च। तयोर्यत्सत् तत्सामतन्मनः स प्राणः ॥ अ[illegible] यदसत्स ऋक् सा वाक् सोऽपानः ॥

जै० आर० १-५३-१-२

इस जगत्के पहिले सत् और असत् ये दोनों थे, उन दो[illegible] जो सत् है, सो ही साम, सो ही मन, सो ही प्राण है। [illegible] जो असत् है सो ही ऋग्, सो ही वाणी, सो ही अपान है

प्राणोवैत्रिवृतदात्मा ॥ तां० ब्रा० १९-११-३

प्राणापानावग्निषोमौ ॥ ए० ब्रा० २-२

प्राणो वै मित्रोऽपानोवरुणः ॥ का० श० २१-१

अर्द्धभाग्वै मनः प्राणानां ॥ श० ब्रा० १-४

प्राण ही तीन भेद से नौ भेदवाला आत्मा है। प्राण भोक्ता अग्नि है, और अपान भोग्य सोम है। प्राण मित्र है, और अपान वरुण है। प्राणोंका आधा भाग मन है। सत् संकल्पी, असत् संकल्प है। असत्, अव्यक्त, सत् ब्रह्मा है। असत् सूक्ष्म कारण, सत् स्थूल कार्य है। साम मन सत्, और ऋक् वाणी असत् है ॥ २ ॥

देवानांयुगे प्रथमेऽसतः सदजायत। तदाशा अन्वजायन्त तदुत्तानपदस्परि ॥३॥

देवता आदि प्राणियोंकी उत्पत्ति के पूर्वकाल में अव्यक्त गुहारूप निद्रासे ब्रह्मा जाग्रत् हुआ, यही सुषुप्ति असत् से जाग्रत् सत् प्रगट हुआ। फिर ब्रह्माने अपनेसे भिन्न सब अंधकारमय देखते ही उस सत्य लोक मूलसे तपलोक, जनलोक, महर्लोकरूप सूक्ष्म आशामय अलोक उत्पन्न हुए, उन अलोकों से विराट् की उत्पत्ति हुई। फिर विराट् में अन्तरिक्ष, वायु, अग्नि, जल, भूमि प्रगट हुए, यही पंचभूतात्मक सर्वत्र विस्तृत विराट् वृक्ष है ॥

प्राणो वा अङ्गिराः ॥ श० ब्रा० ६–७–१–२ ॥

इयं वा उत्तान आङ्गीरसः ॥

तै० ब्रा० २–३–२–५ ॥

प्राण ही अङ्गिरा है। यह विराट् ही उत्तानरूप विविध आङ्गिरस है। अर्थात् पंच महाभूतात्मक प्राण व्याप्त है।

इयं वै विराट् ॥ तै० ब्रा० ६-३-१-२

यह विराट् स्त्री सर्वरूप है ॥ ३ ॥

भूर्जज्ञ उत्तानपदो भुवआशा अजायन्त। अदितेर्दक्षो अजायतदक्षाद्वदितिः परि ॥ ४ ॥

विराट् स्वरूप से भूलोक पृथिवी, और भुवर्लोक अन्तरिक्ष उत्पन्न हुआ, तथा (आशा) द्यौरूप दिशायें उत्पन्न हुई हिरण्यगर्भरूप अदिति से (दक्ष) सूर्य उत्पन्न हुआ तथा सूर्यमण्डल देहमें हिरण्यगर्भ का ब्रह्मा चेतन गर्भरूप से प्रकट हुआ, यही पुरुष अदिति है। जैसे बीजसे वृक्ष और वृक्ष से बीज होता है, तैसे ही ब्रह्माकी देह सूत्रात्मा से विराट् है और विराट् वृक्ष से सूर्य पुष्प, उसमें तेज फल है, उस फल में सविता बीज है ॥

आत्मा वै पदं ॥ शां० ब्रा० २३-६

विराट् स्वरूप ही पद है।

स्वर्गोहि लोकोदृशः ॥ श० ब्रा. ८-१-२-४

असौ(द्यु)लोकः स्वः ॥ ऐ. ब्रा. ६-७

स्वर्ग ही लोक दिशा हैं। यह द्युलोक ही स्वर्ग है ॥

विष्णवाशानांपते ॥ तै० ब्रा० ३-११-४-१

किरण समूह से व्यापक सूर्य दिशाओंका स्वामी है दिशाशब्द दिशाओंका वाचक है, ऊर्ध्व दिशा ही द्यौ है ॥

प्रदिशः पञ्चदेवीः ॥ का० शा० ४०-१ ॥

पंच वै दिशः ॥ श० ब्रा० ५-४-४-६ ॥

चार पूर्व आदि दिशायें और पाँचमी ऊपर की दिशा ही द्यौदेवी है ॥

अदितिः ॥ ऋग्० ५-६२-८ ॥

भूमी अदिति है ॥

अदितिः ॥ ऋ० ४-२-२० ॥

अग्नि ही अदिति है ॥

अदितिः ॥ ऋ० १-११३-१९ ॥

उषा ही अदिति है ॥

अदितिः ॥ मा० शा० ३८-२ ॥

सरस्वती ही अदिति है ॥

अदितिः पुरुषो दिशःपतिः ॥ तै० ब्रा० ३-११-६-३ ॥

दिशाओंका स्वामी अदिति ही पुरुष सविता है ॥

अदितिः ॥ देवः सविता ॥ ऋ० १-१०७-७ ॥

सवितादेव ही अदिति है ॥

अदितिः ॥ अ० ७-७-२ ॥

महीमा ही अदिति है ॥

अदितिः ॥ मा० शा० ११-६॥

सब देवताओंकी माता अदिति है ॥

अदितिः ॥ ऋग्० १०-६३-१-२॥

द्यौ ही देवताओं की मातारूप अदिति है।

अदितिरस्युभयतः शीर्ष्णी ॥ मा० शा० ४-११॥

द्यौ भूमीरूप दो शिरवाली अदिति है ॥

अदितिः ॥ अ० २-२८-४॥

भूमिरूप अदितिके गोदमें अग्नि है ॥

इयं वा अदितिः ॥ तै० शा० ५-१-७-३॥

यह भूमि अदिति है ॥

अदितिं दितिं ॥

ऋ० ५-६२-८ ॥ का० शा० १५-७॥

आदान प्रदान ही अदिति दिति है। अखण्ड अदिति खण्ड २ दिति है ॥

दक्षस्यवादिते जन्मनि ॥ ऋ० १०-६४-५॥

हे विनाश रहित (अदिते) भूमि तू (दक्षस्य) सूर्य के उदयरूप जन्म में मित्र है ॥

अदितिं दक्षं ॥ ऋ० १-८९-३॥

भूमि माता अदिति है, और द्यौ पिता दक्ष है ॥

दक्षं ॥ ऋ० १-१५-६ ॥

बल ही दक्ष है ॥

दक्षं ॥ ऋ० १०-२५-१ ॥

सर्वव्यापी अन्तरआत्मा ही दक्ष है ॥

दक्षः ॥ ऋ० १-६९-४

चतुर ही दक्ष है ॥

प्राणो वै दक्षः ॥ तै० शा० २-४-२-४

प्राण ही दक्ष है ॥ ४ ॥

अदितिर्ह्य जनिष्ट दक्षयादुहिता तव। तां देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृतबन्धवः ॥५॥

हे सर्वव्यापी दक्ष, आपकी जो पुत्री अदिति है उसकी उत्पत्ति के पीछे अदिति से एक प्रेमवाले और स्तुति के योग्य देवता उत्पन्न हुए। दक्ष ही ब्रह्मा है, और उस अविनाशी ब्रह्माकी हिरण्यगर्भ देह ही अदिति है ॥ ५ ॥

यद्देवा अदः सलिलेसुसंरब्धा अतिष्ठत ॥ अत्रावोनृत्यतामिवतीव्रोरेणुरपायत ॥ ॥

हे देवताओं तुम सब इस द्यौ में नाचने के समान महा प्रसन्नता प्रगट करने लगे, जिस उत्सव से तीव्र कण उठे, उस समय वे रज आकाशगंगारूप विस्तृत हुए ॥

आपो देवानां प्रियं धाम ॥

तै० ब्रा ३-२-४-२॥

मरुतो वै देवानामपराजितमायतनं ॥

तै० ब्रा० १-४-६-२

द्यौर्वै सर्वेषां देवानामायतनं ॥

श० ब्रा० १४-२-३-८॥

आप, मरुत, ये दोनों विशेषण द्यो के हैं, द्यौ ही सब देवों का निवासरूप उत्तम धाम है ॥ ६ ॥

यद्देवायतयो यथा भुवनान्यपिन्वत॥
अत्रासमुद्रआगूह्लमासूर्यमजभर्तन ॥ ७ ॥

जैसे भूमि के सब भागों को मेघ जल की वर्षा करके पूर्ण करते हैं, तैसे ही जो सूर्यमण्डल चराचर विश्वको अपनी किरणोंसे प्रकाशित करता है, इस द्यौ में छिपे हुए उस सूर्य को, हे देवताओ तुमने प्रकाशित किया। सूर्य उदय के पहिले नक्षत्रों का प्रकाश होता है, जब सूर्य उदय होता है तब सूर्यके तेज से नक्षत्र निस्तेज होते हैं, यही निस्तेज नक्षत्र देवता मानों अस्त से हुए सूर्य को प्रकाशित करते है ॥

देवगृहावै नक्षत्राणि॥ तै० ब्रा० १-५-२-६॥

देवताओं का निवास घर ही नक्षत्र-तारागण हैं ॥ ७॥

अष्टौ पुत्रासोअदितेर्यें जातास्तन्वस्परि।
देवाँउपप्रैत्सप्तभिः परामार्ताण्डमास्यत् ॥८॥

आदिति के स्वरूप से आठ पुत्र हुए। जिनमें से सातको लेकर वह अदिति देवलोक में चली गयी, तथा मृत्युकार्य रूप अण्ड से प्रगट हुआ, आठवां मार्तण्ड नामका कश्यप सूर्य है, उसको द्यौ में छोड दिया ॥

मित्रश्च वरुणश्च । धाताचार्यमाच ।
अंशश्च भगश्च । इन्द्रश्च विवस्वाँश्चेत्येतो॥
तै० आर० १-१३-३ ॥

मित्र, वरुण, धाता, अर्यमा, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान् ये आठ पुत्र अदिति के हैं ॥

अदितिर्वै प्रजाकामौदनमपचत्तस्योच्छि-ष्टमाश्नात्सा गर्भमधत्ततत आदित्या अजा-यन्त ॥ का० शा० ७-१५ ॥

अदितिने पुत्र कामनासे विराट् देह रूप भोजन परिपक्व किया–उस विराट्को नहीं खाया, उस विराट् के उच्छिष्ट रूप अवशेष, भूमि, अन्तरिक्ष, द्यौ, आप, इन चारों समूहको हिरण्यगर्भने भक्षण किया, उस भक्षणसे, सूत्रात्मा किया अदितिने विशेष विकासरूप गर्भ धारण किया, उससे आदित्य उत्पन्न हुए ॥

अदितिः पुत्रकामा साध्येभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मौदनमपचत् ॥ तस्या उच्छेसणमददुः ॥ तत्प्राश्नात्सारेतोऽधत्त ॥ तस्यैधाताचार्यमा चाजायतां ॥ मित्रश्च वरुणश्च जायेतां अंशश्च भगश्चाजायेतां ॥ इन्द्रश्च विविस्वांश्चाजायेताम् ॥

तै० ब्रा० १-१-९-१...३ ॥

अदिति पुत्र कामनावाली सृष्टिके साधक देवताओंकी उत्पत्तिके लिये विराट्रूप अन्नको राँधती भयी, विराट्को पूर्णरूपसे विकास किया, उस विराट्के अवशेष भागको भक्षणके लिये ले लिया—मृत्युकार्यको क्रिया भक्षण करने को तैयार हुई। उसको विकासरूपसे भक्षण करने लगी गयी कि उस भक्षण से वह गर्भवती हुई। सोमको अग्नि विशेष अवस्थामें आनेके लिये विकास करने लगी, यही गर्भ है। उस सूत्रात्मा अदितिसे धाता और अर्यमा प्रगट हुए। मित्र और वरुण प्रगट हुए। अंश और भगदेव प्रगट हुए। इन्द्र और विवस्वान उत्पन्न हुए।

द्व्य्योहवाइदमग्रेप्रजाआसुः॥ आदित्याश्चैवाङ्गिरसश्च ॥

श० ब्रा० ३-५-१-१३ ॥

इस जगत्के पहिले आदित्य, और आङ्गिरस ये दो प्रजा थीं ॥

इयं वै प्रजापतिः ॥ तै० शा० ५-१-२-५ ॥

इयं वै विराट् ॥ तै० शा० ६-३-१-४ ॥

यह अदिति प्रजापति है, और यही विराट् है ॥

सप्तसुपर्णाः कवयोनिषेदुः ॥ सप्तहोमाः समिधोह सप्त मधूनि सप्तर्तवोह सप्त ॥ अष्ट-जाताभूता प्रथमजर्तस्याष्टेन्द्रर्त्विजो दैव्याये ॥ अष्टयोनिरदितिरष्टपुत्राष्टमीं रात्रिमभिहव्य-मेति ॥ अष्टेन्द्रस्यषड्यमस्यऋषीणां सप्त सप्तधा ॥ अ० ८-९-१७-२३ ॥

सर्व द्रष्टा सात किरण रूप पक्षी सूर्य मण्डलमें स्थित हैं। सात सोम यज्ञ संस्था, सात अग्नि जिह्वा, सात रस, सात ऋतु हैं। प्रथम आठ प्रजारूप भूत उत्पन्न हुए। आठवाँ इन्द्र है। उस इन्द्र रूप सूर्यके जो सात किरण रूप ऋत्विक् हैं, वे ही सूर्यसे सम्बन्ध रखनेवाले देवता हैं। सात ऋतु देवता और आठवाँ सूर्य ये जगत्के आठ कारण हैं, अदिति आठ पुत्र रूप है, और भूमिके अष्ट दिशाओंमें आठ दिग्पाल रूप से अदिति व्याप्त हुई है। और सूर्य रूप अदिति अपने सात किरण रूप पुत्रोंको मण्डल मय स्वर्गमें समेट लेती है, फिर रात्रि रूप अन्तरिक्षमें हवि-स्वधामय आठमें पुत्र चन्द्रमाको छोड़ देती है। कृष्णपक्षमें

मृतवत् प्रकाश रहित चन्द्र मण्डल होता है, और उस प्रकाश हीन मरे हुए चन्द्रमा रूप अण्डसे शुक्लपक्षमें प्रकाशरूप सोम प्रगट होता है। इन्द्रके आठ मास हैं। आठ महिने जलको किरणों द्वारा धारण करता है, इस लिये ही सूर्यका नाम इन्द्र है। और सूर्य छः मास दक्षिणायन और छःमास उत्तरायन होता है इस हेतुसे सूर्यका नाम छः यम है। तथा सूर्य ही सात प्राण, और सात छन्द रूपसे वेदोंको धारण करता है॥

अष्टयोनीमष्टपुत्रां ॥ अष्टपत्नीमिमां-महीम् ॥ तै० आ० १-१३-१॥

अव्याकृत्, सूत्रात्मा, विराट्, अन्तरिक्ष, वायु, अग्नि, जल, भूमी, ये आठ जगत्के कारण हैं और आठ पुत्र हैं, इस भूमिका आठ दिशाओंके (पत्नीं) रक्षक दिगपाल हैं। यह अग्निका रूप अदिति सब रूप धारण करती हैं॥

सप्तदिशो नानासूर्याः सप्तहोतार ऋत्विजः। देवा आदित्या ये सप्ततेभिः सोमाभिरक्षन इन्द्रायेन्द्रो परिस्रव॥ ऋ० ९-११४-३॥

उत्तर दिशाको छोड़कर सात पूर्वादि दिशाओंमें नाना सूयरूप ऋत्विक हवन करनेवाले सात ऋतु हैं। उत्तरमें चन्द्रमाकी शीत रूपसे विशेषता है, और सात दिशाओंमें सूर्यकी विविध गतिरूप सात ऋतुओंका एकके पीछे एकका लय और दूसरेका

आगमन-चक्र भ्रमण करता है, वे ऋतु लय रूपसे हवि और आगमन रूपसे हवन करता सात ऋत्विक हैं। जो आदित्य देवता हैं उन सातोंके सहित, आठवें हे सोम तुम हमारी रक्षा करो। और इन्द्रके लिये हे सोमरस तुम झरो।

आदित्याः सप्त ॥ का० शा० ११-६॥

अदितेगर्भं भुवनस्य गोपां ॥ का० शा० १५-१६॥

सात आदित्य हैं। भूमिके गर्भ भुवनके पालक अग्निको सेवन करो॥

स्वयम्भूरसि श्रेष्ठोरश्मिः ॥ मा० शा० २-२६॥

हे सूर्य, स्थित भर्ग तू अकृतक-उत्पत्ति रहित स्वयंसिद्ध है, चेतन हिरण्यगर्भ श्रेष्ठ है, उस मण्डलकी सात किरण हैं, चारों दिशाओंमें चार, एक ऊपर, एक नीचे, चन्द्रमा पर सुषुम्ना किरण गिरती है जिससे चन्द्रमा प्रकाशित होता है। आठवाँ सूर्यमण्डल है॥

अजाता आसन्नृतवोथोधाता वृहस्पतिः॥
इन्द्राग्नी अश्विनातर्हिकंते ज्येष्ठमुवासते ॥

अ० ११-१०-५ ॥

सृष्टिके समय ऋतु उत्पन्न हुई, और उन ऋतुओं के अभिमानी देवता प्रगट हुए, वसंतऋतु-चैत्र वैशाखका धाता। ग्रीष्मऋतु-ज्येष्ठ, आषाढ का (वृहस्पतिः) सब देवोंका

स्नेही अर्यमा। वर्षाऋतु–श्रावण भाद्रका, इन्द्र,। शरदृऋतु अश्विन कार्तिकका अग्नि। हेमन्त शिशिरऋतु–मार्गशीर्ष, पौ और माघ फाल्गुनका अश्विनीकुमार देवता हैं। वे सब देव (कं) सुखरूप सूर्यमण्डल स्थित हिरण्यगर्भ की उपास करते हैं॥

प्राणपानौ वा इन्द्राग्नी ॥ गो० ब्रा० २-२॥

प्राणपानौ मित्रावरुणौ ॥

तै० शा० ७-२-७-२॥

अश्विनौ प्राणस्तौ ॥ मित्रावरुणयोः प्राणस्तौ ॥ का० शा० ११-७॥

रुद्रा ॥ ऋग्० ५-७३-८॥

अश्विनौ ॥ ऋग्० ७-७४-५॥

प्राण अपान ही इन्द्र और अग्नि है। प्राण मित्र अपान वरुण है। प्राण अपानही दो अश्विनीकुमार हैं, प्राण अपानही ये दोनों मित्र वरुणके रूप हैं। दो मार्ग व्यापी अश्विनीकुमार हैं। अश्विनीकुमार का अर्थ व्यापक है। मित्रवरुणरूप ही अश्विनीकुमार है॥

मित्रो अर्यमा भगोनस्तु विजातोवरुणो दक्षो अंशः ॥

ऋग्० २-२७-१॥

मित्रवरुण । दक्ष–धाता । इन्द्र । अर्यमा–बृहस्पति । भग-अग्नि है । यज्ञरूप धनवाला ही अग्नि भगवान् है । ये षडृतु के छः देवता हैं । सातवाँ ऋतु षड्ऋतुओंका ही अंश है, इस अधिक मास अंशके भेदसे सूर्यका भी सातवाँ अंश है, सोही सातवाँ आदित्य है और आठवाँ सूर्यमण्डलरूप इन्द्र है ॥

सूर्योवाइन्द्रः ॥ कपि० शा० ५–३ ॥

सूर्य ही इन्द्र हैं ।

अविकृतं हाष्टमं जनयाञ्चकार मार्तण्डᳪ संदेघोहैवासयावाने वोर्ध्वस्तावांस्तिर्यङ् पुरुष-संमितइत्त्युहेकआहु ॥ शा० ब्रा० ३–१–३–३ ॥

अदितिने आठवें अविकृत क्षय–परिणाम रहित स्वयम्भू सूर्यको उत्पन्न किया सोही विराट्रूप अण्डके द्यौ भूमि दोनों कपालों को भेदकर मार्तण्ड हुआ, द्यावाभूमि के मध्यमें वास है, जितना ऊपर प्रकाशित है उतना ही नीचे पूर्णरूप से व्यापक है, सातकिरणों के सहित षोडशकला पुरुष–सूर्यमण्डल एक ही सूर्य है ऐसा वेदज्ञ कहते हैं । सात किरण और एक मण्डल ही आठवाँ है ॥

षोडशकलो वै पुरुषः ॥ तै० ब्रा० १–७–५–५ ॥

षोडशकला वै पशवः ॥ श० ब्रा० १२–८–३–१३ ॥

षोडशकलं वा इदं सर्वं ॥ शां० ब्रा० ८–१ ॥

असौ वै षोडशीयोऽसौतपति। इन्द्रउवै षोडशी

शां० ब्रा० १७-१

सोलहकला सूर्यमण्डल देह है, और सूर्यमण्डल देह किरणोंके द्वारा सबको देखता है, इसलिये ही सूर्यमण्डल ही किरणोंके द्वारा सबको देखता है, इसलिये ही सूर्य पशु सू॰ सोलहकला अधिदैवरूप से यह सब व्यष्टि चराचर ज रूप है। जो यह सूर्य तपता है सो ही मण्डलवर्ती पुरुष सोलह कलावाला है। यही चेतन इन्द्र पूर्ण पुरुष है॥

मार्तण्डः....सविता॥ ऋग्० २-३८-८

चेतन पुरुष ही सविता मार्तण्ड है॥

यंउहतद्विचक्रुः सविवस्वानादित्यस्तस्येमा प्रजाः॥

श० ब्रा० ३-१-३-४॥

जिस मार्तण्डने विविधवर्ण किरणों को प्रगट किया, प किरणरूप उषा प्रगट होती है, उसके पीछे सूर्य उदय होता है येही किरणरूप देवता सूर्यको रचते हैं, सो ही आदित्य वि स्वत् है, उसकी ये सब प्रजा हैं। आठ महिने जलको भूमि आकर्षण करके उस जलरूप वीर्य को द्यौ में सिंचता है, सो सूर्य इन्द्र है, और चारमास जल वर्षाता है, सो ही सूय विष्णु इस हेतु से ही इन्द्र ज्येष्ठ भ्राता है और विष्णु लघु भ्राता है

कश्यपोऽष्टमः समहामेरुंन जहति॥ यत्ते

शिल्पं कश्यप रोचनावत्॥ इन्द्रियावत्पुष्कल

चित्रभानु ॥ यस्मिन्त्सूर्या अर्पिताः सप्तसा-
कम् ॥ ते अस्मै सर्वे कश्यपाज्ज्योतिर्लभन्ते ॥
तान्त्सोमः कश्यपादधिनिर्धमति भ्रस्ताकर्मकृ-
दिवैवम् ॥ तै० आर० १-७-१-२ ॥

जो आठवाँ कश्यप नामका सूर्य है सोही (महामेरूं) महा आकाशको त्यागता नहीं है, हे कश्यप नाम सूर्य, जो आपका जगत् प्रकाशक लक्षणवाला विचित्र कर्म है, जिस अपने प्रकाशमें नाना कर्मवाले सात सूर्य आपके साथ स्थापित हैं, वे सब साथ सूर्य भी इस जगत् को प्रकाश करनेके लिये, आठवें कश्यप सूर्यसे प्रकाश पाते हैं। उन सात सूर्योंको, सोम देवता कश्यपके प्रकाशसे ही अधिक प्रकाशयुक्त करता है, जैसे सुनार धोंकनीसे अग्निको प्रज्वलित कर अग्निके द्वारा सुवर्णादिके मलको जला कर सोनेको शुद्ध करता है। तैसे ही सोम देवता, उन सात सूर्योंके अप्रकाश मलको कश्यप सूर्यके प्रकाशसे प्रकाशित करता है। सूर्य तेज चन्द्रमा पर गिरता है, चन्द्रमा उस सूर्यतेजको शीत करके सात ऋतुओंको सिंचन करता है, वे ऋतु अपने २ समयमें उत्पन्न होनेवाले अन्न आदि वृक्षोंको समृद्धि युक्त करती हैं जिस अन्नादिसे सबका पोषण होता है।

विष्णवेतेदाधथ पृथिवीमभितो मयूखैः ॥
तै० आर० १-८-३ ॥

हे विष्णो, तू अपनी किरणोंके द्वारा इन द्यौ भूमि (अभितः) ऊपर नीचेसे धारण करता है। सूर्यकी सात किरणें ही सात सूर्यरूप देवता हैं। भूमिका रात्रि उदर है, भूमि अदिति सात किरणोंके सहित सूर्यको उदयरूप जन्म देती है और फिर सायंकालमें अदिति सात किरणोंको भूलोकसे हटा कर अन्तरिक्षमें नक्षत्रों पर ले जाती है, जिस तेजसे नक्षत्र चमकते हैं और सूर्य तो आकाशमें अचल है इसलिये आकाशमें छोडना कहा है। भूमिका भ्रमण ही सूर्यका उदय अस्त है सात किरणें सूर्य—मण्डलसे प्रकाशित हुई नक्षत्रोंको प्रकाशित करती हैं॥

कश्यपः पश्य को भवति॥ यत्सर्वं परिपश्यतीतिसौक्ष्म्यात्॥ तै० आर० १-८-८॥

जो यह अष्टमा सूर्य सूक्ष्म दिव्य दृष्टिसे सब प्रपंचको सर्वत्रसे देखता है सोही कश्यप नामका देखनेवाला सूर्य है॥

ऋतवो वै देवाः॥ श० ब्रा० ७-२-४-२६॥

तस्य ये रश्मयस्ते देवामरीचिपाः॥

श० ब्रा० ४-१-१-२५॥

ऋतु अभिमानी देवता हैं। उस सूर्यकी जे किरण हैं उन किरणोंके देवता हैं और किरणोंके द्वारा अमृतपान करते हैं॥

सूर्योवै सर्वेषां देवानामात्मा॥

श० ब्रा० १४-३-२-९॥

सूर्य ही समस्त देवताओंका स्वरूप है ॥८॥

सप्तभिः पुत्रैरदितिरुपप्रैत्पूर्व्यं युगम् ॥ प्रजायमृत्यवेत्वत्पुनर्मार्ताण्डमाभरत ॥९॥

ऋ० १०-७२-१...९ ॥

इस चराचर विश्वकी उत्पत्तिसे पहिले कल्पसृष्टिमें सात पुत्रोंके सहित अदिति स्वर्गको चली गयी, और आठवें सूर्यको जन्म मरणके लिये आकाशमें रख दिया। इस सूर्यके उदय अस्तसे ही प्राणियोंका जन्ममरण होता है ॥

आपोवाइदमग्रे सलिलमासीत्तस्मिन्प्रजापतिर्वायुर्भूत्वाऽचरत्सइमामपश्यत्तां वराहो भूत्वाऽहरत्तां विश्वकर्मा भूत्वा व्यमार्ट्सा‌ऽप्रथतसा पृथिव्यभवत्तत्पृथिव्यै पृथिवित्वं तस्यामश्राम्यत्प्रजापतिः । सदेवानसृजत वसून्रुद्रानादित्यान् ॥

तै० शा० ७-१-५-१ ॥

इस जगत्के पहिले व्यापक सलिल था। उस आकाशमें ब्रह्मा वायु होकर विचरने लगा। उस सूत्रात्माने इस कार्यमय विराट् भूमिको अपनेमें ही देखा। उस मृत्यु सोमात्मक भोग्यको वराह होकर हरण किया, सामान्यसे विशेषरूपमें प्रकाशित किया सोही ऊपर लाया, इस उत्तम आहारको आधार पाकार, हिरण्यगर्भ-प्राण विशेष रूपमें आनेके लिये-विश्वकर्मा-वाणीरूप हुआ,

उस वाणीने विशेष रूपसे विस्तृत किया, वह फैल गयी सो पृथिवी हुई, उसके फैलनेसेही पृथिवी नाम हुआ। उस विस्तृत भयी भूमिमें सो ब्रह्मा स्थित होकर (श्राम्यत्) विचार किया इस विराट् आधारको मेरा सूत्रात्मा देह भक्षण कर लेगा, तो आगे विविधरूप सृष्टि नहीं होगी, इसलिये चेतन ब्रह्माने अपने समष्टि प्राण हिरण्यगर्भको और विराट् अन्नको विभक्त किया विराट्के द्यौ, आकाश, भूमि रूप तीन भाग हुए। और भूमि अग्नि, आकाशसे वायु, द्यौसे सूर्य ये तीन भाग प्राणके हुए उस भगवान् ब्रह्माने अग्निसे आठ वसु उत्पन्न किये, वायुसे ग्यारा रुद्र प्रगट किये, सूर्यसे बारह आदित्य उत्पन्न किये॥

आपोवाइदमासन। सलिलमेव स प्रजापतिर्वराहो भूत्वोपन्यमज्जत्। तस्ययावन्मुखमासीत्तावतीं मृदमुदहरत्। सेयमभवत्॥ य वराह विहतं भवत्यस्यामेवैनं प्रत्यक्षमाधत्ते। वराहोवा अस्यामन्नं पश्यति॥ कपि० कठ शा० ६-७।

इस विश्वरचनाके प्रथम व्यापक (सलिलं) आकाश ही था; उस अव्याकृतवासी ब्रह्माने वराह रूप धारण किया-शुद्ध रूप उत्तम आहार भोजनको करनेवाला ही अमृत रूप प्राण ही वराह है, उस भोग्य आधारमें प्राण आधेयरूपने डुबकी मारी-गोता लगाया, उस प्राणका जहां तक प्रतीक रूप विशेष विकास था उतनी मृत्तिकाको ले लिया, अर्थात् अमृतने मृत्युके कार्यों

शको भक्षण कर लिया, सो ही भोजन प्राणको आच्छादन करता हुआ विशेष स्थूलके आकारमें प्रगट हुआ, सोही यह विराट् भूमि हुई, जो वराहसे विकास पाई सोही विराट् भूमि है—इस विराट् में ही ब्रह्मा इस प्रत्यक्ष पंचभूतात्मक जगत्को स्थापन करता है, (वराहः) उत्तम आहारके करनेवाला हिरण्य गर्भ अपने आधार रूप इस विराट्में ही अन्न देखता है। विराट्, समष्टि आधार अन्न है, उस उत्तम आहारको पाकर हिरण्यगर्भ समष्टि आधेय भोक्ता प्राण है। यह अग्नि जैसे २ सोमको भक्षण करता है, तैसे २ ही सोम अग्नि आधेयको आवरण करता हुआ विराट्के रूपमें प्रगट होता है, उस विराट्को आधार पाकर अमृत भी विशेषरूपमें क्रिया करने लग जाता है, उस प्राणके साथ ही स्वधा भी प्राणको ढँकती हुई विशेष कार्य के रूपमें घनीभूत होने लग जाती है, प्राणका विशेष भाग विराट् में आकाश, वायु, अग्नि है, और स्वधाका विशेष विकास, जल, भूमि है। इसी विशेष अवस्था रूप अन्नको देखता है; उस अन्नके द्वारा प्राण भी अग्नि, वायु, सूर्यरूप भोक्ता होता है॥

सलिलः सलिगः सगरः ॥कपि॰ शा॰ ८–२॥

सलिलः ॥ तै॰ शा॰ ५–५–१०–३॥

सलिल नाम प्राणका है।

सगरस्य ॥ ऋ॰ १०–८९–४॥

सगर नाम आकाश है, सलिल—हिरण्यगर्भ है, सलि
चेतनका नाम है, सगर—अव्याकृतका नाम है ॥

मुखं प्रतीकं ॥ श० ब्रा० १४-४-३-७

मुखही प्रतिनिधी है । अवस्थान्तर रूपही छाया है ॥

आपोवाइदमग्रे सलिलमासीत्स प्रजापति
पुष्करपर्णे वातो भूतोऽलेलायत्स प्रतिष्ठां नावि-
न्दत सएतदपां कुलायमपश्यत्तस्मिन्नग्निमचि-
नुत तदियम भवत्ततो वै स प्रत्यतिष्ठत् ॥
तै० शा० ५-६-४-२-३।

इस जगत्की उत्पत्ति के पूर्व व्यापक सलिल ही था
चेतन ब्रह्मा अव्याकृत कमल के मध्यमें हिरण्यगर्भ देहसे यु
स्थूल देहके रूपमें आने के लिये सूक्ष्म देहसे स्थूल के आका
में विकास करने लगा, किन्तु उसमें भी उसने आधारको नहीं
पाया, फिर विकासकी कुछ अवस्था कठिन हुई, अव्यक्तके इस
घनीभूत तरल घोंसलेको देखा, जैसे पक्षी घोंसलेको रचकर फि
अण्डा रखता है, तैसेही ब्रह्माने अपनी अमृतदेहके सहित मृत्यु
को सूक्ष्मसे स्थूलके रूपमें चिन्तवन किया। उस विचार के पीछे
सूक्ष्मसे कुछ स्थूलमें विकास हुआ सो ही तरल भाग गृह है।
उस घररूप घौंसलेमें कार्यक्रियामय प्राण—रयिका परस्पर संघात
तेज अण्डेको सम्पादन किया सो ही तेज पुञ्जपूर्ण अवस्था-

वाला यह विराट् रूप पृथिवी हुई। उस विराट् के प्रगट होनेके पीछे वह ब्रह्मा सवितारूप से सूर्यमण्डलमें विराजमान हुआ ॥

आपो वा इदमासन्त्सलिलमेव । स प्रजापतिरेकः पुष्करपर्णे समभवत् । तस्यान्तर्मनसि कामः समवर्तत । इदꣳसृजेयमिति । तस्माद्यत्पुरुषो मनसाऽभिगच्छति । तद्वाचा वदति । तत्कर्मणा करोति ॥

इस चराचरके पहिले व्यापक सलिल ही था, सो अद्वितीय ब्रह्मा अव्याकृत आकाशके मध्यमें अप्रतिहत अद्वैतरूप सो ब्रह्मा प्रगट था, उस समष्टि पुरुषके मनमें कल्प प्रलय पूर्व कर्म संस्कार ही सृष्टिके रूपमें स्फुर्ण हुए, इस जगत् को रचूँ यह इच्छा हुई। जैसे पुरुष मनसे विचारता है, सो ही वाणी से वोलता है, जो वाणी से वोलता है सो ही कर्मको करता है। तैसे ही उस सर्वज्ञ ब्रह्मासे सृष्टिकामना उत्पन्न हुई ॥

सतपोऽतप्यत ॥ सतपस्तप्त्वा ॥ शरीरमधूनत ॥ तस्य यन्मांसमासीत् ॥ ततोऽरुणाः केतवोवातरशना ऋषयउदतिष्ठत् ॥ येनखाः ॥ ते वैखानसाः ॥ ये वालाः ॥ ते वालखिल्याः ॥ ये रसः सोऽपाम् ॥ अन्तरतः कूर्मं भूतं सर्पन्तं ॥

तमब्रवीत् ॥ मम वै त्वंमांसा ॥ समभूत ॥ नेत्यब्रवीत् ॥ पूर्वमेवाहमिहाऽऽसमिति ॥ तत्पुरुषस्य पुरुषत्वम् ॥ सहस्रशीर्षा पुरुषः ॥ सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥ भूत्वोदतिष्ठत् ॥ तम ब्रवीत् ॥ त्वं वै पूर्वंसमभूः ॥ त्वमिदं पूर्वं कुरुष्वेति ॥

सो ब्रह्मा सृष्टिके विचारको विचारने लगा, उस विचारसे विचारकर कार्य, क्रियामय देहको कँपाया, उसका जो मांस था, उससे अरुण, केतव, वातरशना नामके तीन ऋषिगण उत्पन्न हुए। जो नख थे वे ही वैखानस हुए। जो बाल थे वे ही वालखिल्य ऋषि हुए। जो रस था सो ही कार्यरूप जलमें गिरा। वह रस जलके द्यौके मध्यमें कूर्म होकर विचरने लगा, उस कूर्मको ब्रह्माने कहा हे कूर्म तू मेरे अग्नि सोममय देहके कार्यांशसे उत्पन्न हुआ है। कूर्मने प्रति उत्तर दिया, मैं आपके देहसे उत्पन्न नहीं हुआ हूँ मैं तो इस कूर्म देहकी उत्पत्ति से प्रथम ही इस स्थानमें था सो ही पुरुषका पुरुषपना है, अर्थात् सर्वव्यापक पूर्णही चेतनका नाम है, अपूर्ण, एकदेशीकी उत्पत्ति होती है। सर्वगत चेतन तो नित्य परिपूर्ण है, उसकी उत्पत्ति और नाश कभी नहीं होता है। आपके देहसे मेरा कूर्म शरीर ही उत्पन्न हुआ है, मैं तो एक अखण्ड चेतन शुद्ध हूँ। ऐसा कहकर अपनी सामर्थ्यको दिखा

नेके लिये अनन्त शिर, मुख, हाथ, पग आदि अंगोंसे युक्त होकर प्रगट हुआ। उस समय उस कूर्मको ब्रह्माने कहा, हे कूर्म तू मेरे शरीरसे पहिले था, तो इस सब जगत्को रच डाल, ऐसा कहा जब॥

स इत आदायापः। अञ्जलिना पुरस्तादुपादधात्। एवाह्येवेति। तत आदित्य उदतिष्ठत्। सा प्राचीदिक्, इति॥

उस अरुणकेतुक रूपधारी कूर्मने सब सृष्टिसे प्रथम ही सलिल था उस सलिलमें से कुछ जल हाथमें लेकर पूर्व दिशामें उस वाणीरूप उपधानको धारण किया, कौन मंत्रसे ? "एवाह्येवेति" इस मंत्रसे। उस अभिमंत्रित सलिलसे आदित्य उत्पन्न हुआ, सो ही पूर्वदिशा हुई। इस प्रकार दक्षिणमें अग्नि, पश्चिममें वरुण, वायव्ये वायु, उत्तर में इन्द्र सोम उत्पन्न हुए। अधोभाग दिशा में पूषा, ऊर्ध्व दिशामें देव, मनुष्य, पितर, गन्धर्वाप्सरा उत्पन्न हुए सो ही ऊर्ध्व दिशा हुई। उपधान प्रदेशसे वाहर जो अञ्जलिमें से जलविन्दु गिरे उनसे दैत्य, राक्षस, भूतप्रेत, पिशाच जाति उत्पन्न हुई। वह जल कैसा था जिसने (दक्षं) वृद्धिशीलगर्भ को धारण किया, कूर्मरूपी स्वयम्भू को उत्पन्न किया॥

तत इमेऽध्वमृज्यन्तसर्गाः। अद्भ्यो वा इदं समभूत्। तस्मादिदं सर्वं ब्रह्म स्वयम्भ्विति, इति॥

उसके उत्पन्न होनेके पीछे जलको गर्भरूप कूर्म वि
अण्डेसे इन तीन लोकरूप भुवनोंको उत्पन्न किया। यह स
चराचर जलोंसे उत्पन्न हुआ विराट् अभिमानी चेतन अथर्वा
रचा है। इसलियेही यह सब जगत् स्वयंसिद्ध ब्रह्म स्वरूप है
अव्यक्त कारण पुष्करमें ब्रह्मा स्थित है, उस ब्रह्माके सूक्ष्म क्रि
और कार्यमय देहसे विराट्रूप कूर्म उत्पन्न हुआ, सोही सर्व
स्थूलात्मक त्रिलोक है, और विराट् अभिमानी देवता
अथर्वा है॥

तस्मादिदं सर्वं शिथिलमिवाध्रुवमिवा भवत्, इति॥

जिस चेतन की छाया से यह सब जगत् उत्पन्न हुआ
वह जगत् अपनी स्वतः सत्ता से रहित विनाशरूप चंचल स्व
भाववाला था इसलिये ही यह जगत् चेतनता रहित जड है॥

प्रजापतिर्वावतत्। आत्मनाऽऽत्मानं वि- धाय। तदेवानुप्राविशत्, इति॥

फिर उस प्रजापतिने विविधरूप धारण करनेके लिये अपने
को ही सविता, अथर्वा-रुद्र-नारायण नामसे, कूर्म देहके द्वारा
प्रगट किया। उस कूर्म अभिमानी चेतन सविताने अपने विराट्
जड समष्टि देहसे व्यष्टि जड शरीरोंको रचकर पीछेसे उन
व्यष्टि शरीरोंमें जीवरूपसे प्रवेश किया। अव्यक्तका पूर्ण विकास

हिरण्यगर्भ, हिरण्यगर्भका पूर्ण विकास सूर्य कूर्म है, और आदित्यका विविधरूप यह जगत है। तथा अरुण, केतव, वातरशनादि महर्षि तप लोकवासी सिद्ध हैं, और वैखानस ऋषि वानप्रस्थ और वालखिल्य ब्रह्मचारी महर्लोकवासी हैं॥

सर्वमेवेदमाप्त्वा । सर्वमवरुध्य । तदेवानुप्रविशति। यएवं वेद ॥ तै० आर० १-२३-१....९ ॥

जो मनुष्य प्रजापतिकी सृष्टि रचनाके प्रकारको जानता है, वह जाननेवाला इस जगत्में जो कुछ विद्यमान है उस सबके फलको पाता है, और सब जगत्को वश करके सर्वात्मरूप प्रजापति होता है॥

अथ यत्सर्वमस्मिन्नश्रयन्त तस्मादु शरीरं ॥
श० ब्रा० ६-१-१-४ ॥

अशरीरं वै रेतोऽशरीरावपायद्वैलोहितं यन्मांसं तच्छरीरम् । शरीरं हृदये ॥
तै० ब्रा० ३-१०-८-७ ॥

परिमण्डलं हृदयं ॥ श० ब्रा० ९-१-२-४० ॥

जो ये सब इस देहमें आश्रित हैं इसलिये ही यह शरीर है। शरीर रहित ही वीर्य है, अशरीर अवपा है, जो रक्त है सो ही मांस है, जो मांस है सो ही शरीर है । संकल्पमें शरीर है। सब व्यापक सूर्य मण्डल ही समष्टि हृदय है। इस हृदयमें सब व्यष्टि शरीर है॥

वैखानसा वा ऋषय इन्द्रस्य प्रिया आसन्।

तां० ब्रा० १४-४-७॥

वैखानस ऋषि ही मर गये फिर इन्द्रने जीवित किये, इ
लिये इन्द्रके प्यारे हैं॥

प्राणा वै वालखिल्याः॥ ऐ० ब्रा० ६-२८।

अन्न जल रहित केवल प्राणधारी वालखिल्य ब्रह्मचारी है

स यः प्राणस्तत्साम॥ जै० आर० १-२५-१०।

सामयद्वाक्॥ जै० आर० २-२५-४।

**स्वरित्येव सामवेदस्य रसमादत्त। सोऽ
सौद्यौरभवत्। तस्ययोरसः प्राणेदत्स आदि
त्योऽभवद्रसस्यरसः॥** जै० आर० १-१-५।

उस प्रजापतिका जो प्राण है सोही साम है। जो साम
सो ही वाणी है। सामवेदके स्वनामके रसको ग्रहण किया,
ही यह द्यौ उत्पन्न हुआ। उस द्यौका जो रस प्रगट हुआ सो
सूर्य प्रगट हुआ। सारका भी सार सूर्य है। हिरण्यगर्भका स
द्यौ है, और द्यौका सार ही सूर्य कूर्म है॥

**पंचपादा वै विराट्। तस्या वा इयं पादः।
अन्तरिक्षं पादः। द्यौः पादः। दिशः पादः।
परोरजाः पादः॥** तै० आर० १-२५-३।

विराट्के पाँच रूप हैं, उस विराट्का यह भूमि एक भाग है। अन्तरिक्ष दूसरा भाग है। द्यौ तीसरा भाग है। दिशायें चौथा भाग हैं। तमरूप पापसे रहित सूर्य पाँचवाँ स्वरूप है॥

य आण्डकोशे भुवनं बिभर्ति। अनिर्भिण्णः सन्नथ लोकान्विचष्टे। यस्याण्डकोशं शुष्ममाहुः प्राणमुल्बम्। तेनक्लृप्तोऽमृतेनाहमस्मि॥

तै० आर० ३-११-४॥

जे पंच होता देव ब्रह्माण्डके मध्यमें अभेद रूपसे स्थित हैं, समस्त प्राणि मात्रको धारण करते हैं, तथा विराट्के विभाग भूरादिलोकोंको विशेष करके प्रख्यात करते हैं। जिस देवका प्रवल ब्रह्माण्ड अवकाश है, और वायु गर्भ वेष्टनसे विराट् लपेटा है, उस अमृत देवकी सामर्थ्यसे मैं विशेष चेतन हूँ॥

स यत्कूर्मो नाम एतद्वैरूपं कृत्वा प्रजापतिः प्रजा असृजत॥ यदसृजाताकरोत्तद्यदकरोत्तस्मात्कूर्मः कश्यपो वै कूर्मस्तस्मादाहुः सर्वाः प्रजाः काश्यप्य इति॥

श० ब्रा० ७-५-१-५॥

रसो वै कूर्मः॥ श० ब्रा० ७-५-१-१॥

स य स कूर्मोऽसौ स आदित्यः॥

श० ६-५-१-६॥

प्राणो वै कूर्मः प्राणोहीमाः सर्वाः प्रजाः करोति ॥ श० ७-५-१-७॥

द्यावापृथिव्यो हि कूर्मः ॥

श० ७-५-१-१०॥

प्राणो वा अर्णवः ॥ श० ७-५-२-२१॥

प्राणोऽथर्वा ॥ वाग्वैदध्यङ्ङाथर्वणः ॥

श० ब्रा० ६-४-२-२-३॥

उस ब्रह्माने जिस नाम रूपको धारण किया सोही यह कूर्म है। उस कूर्मके द्वारा ब्रह्माने प्रजा रची, जो रचता है सो पालन करता है, जो पालन करता है सोही संहार करता है। इस हेतुसे कूर्म कश्यप है। कूर्म ही सब प्रजारूप है, इस कारणसे ही प्रजाको काश्यप्य कहते हैं। सूत्रात्माका सार ही कूर्म है। जो सार रस है सो ही कूर्म है, जो कूर्म है सोही यह सूर्य है। हिरण्य गर्भ प्राणकी विशेष अवस्था सूर्य प्राण है, यह सब प्रजाही सूर्यरूप है और सूर्य ही रचता है। द्यौ भूमिरूप कूर्म देह है, जिस देहमें अग्नि सूर्य प्राण है। उस प्राणमें चेतनका विशेष स्वरूप भासता है, सोही सूर्य अग्निस्थित चेतन पुरुष है। प्राण ही समुद्र है। प्राण ही अथर्वा है और वाणी ही दध्यङ्ङाथर्वण है ॥

अथर्वा प्रजापतिः ॥ ऋ० १-८०-१६॥

प्रजापतिर्वा अथर्वा ॥ मै० शा० ३-१-५॥

प्रजापतिर्वै कः ॥ मै० शा० १-१०-१० ॥

अथर्वा प्रजापति है । कः नाम ब्रह्माका और ब्रह्माके पुत्र सवितारूप अथर्वाका है ॥

पुरुषो ह वै नारायणं प्रजापतिरुवाच यजस्व यजस्व ॥ गो० ब्रा० ५-११ ॥

पुरुषो ह नारायणोऽकामयत । अतितिष्ठेयं सर्वाणि भूतान्यहमेवेदं सर्वंस्यामिति ॥

श० ब्रा० १३-६-१-१ ॥

प्रसिद्ध पुरुष ब्रह्माने नारायण को कहा, हे नारायण तू सृष्टि रचनारूप यज्ञकर । नारायण पुरुषने कामना किया विशेष रूपसे स्थित; सर्व प्राणिस्वरूप हूँ, मैं यह सब चराचर जगत् रूप होऊँ, इस प्रकारकी इच्छा किया ॥

प्रजा वै नरः ॥ ऐ० ब्रा० २-४ ॥

व्यष्टि प्रजा मात्र ही नर हैं । व्यष्टि प्राणियों के समष्टि समूहका नाम नारायण है ॥

रश्मयोह्यस्य विश्वे देवाः ॥ श० ब्रा० ३-९-२-६ ॥

प्राणा वै देवताः मै० शा० २-३-५ ॥

प्राणो वै मनुष्यः ॥ तै० शा० ६-१-१-४ ॥

मनुष्यावै विश्वे देवाः ॥ कपि० शा० ३१-२ ॥

इस सूर्य की किरण ही सब देवता हैं। प्राण ही देवता और प्राण ही मनुकी प्रजा है, मनुष्य ही विश्वे देवता हैं।

नरो वै देवानां ग्रामः ॥ तां० ब्रा० ६-९-२

मनुष्य देह में अध्यात्म इन्द्रियें स्थित हैं, उन इन्द्रियों अधिदैव देवता हैं, इसलिये ही मनुष्य देवताओं का ग्राम। किरणों का समूह सूर्यमण्डल है, उसका चेतन ही नारा कूर्म, कश्यप, अथर्वा आदि नामवाला सविता है ॥

अथर्वाणं ब्रह्माऽब्रवीत्प्रजापते प्रजाः सृष्ट्वा पालयस्व । अथर्वा वै प्रजापतिः प्रजापतिरि वै स सर्वेषु लोकेषु भाति य एवं वेद ॥

गो० ब्रा० १-४

अथर्वाय ज्येष्ठ पुत्राय प्राह ॥ मु० उ० १-१-१

ब्रह्माने अथर्वाको कहा, हे प्रजापते, तू प्रजाओं को रच पालन कर, अथर्वा ही प्रजापति है। ब्रह्मा के समान प्रजापति सो ही सूर्यरूप से तीनों लोकों में प्रकाशता है। जो ऐसा जान है सो ही प्रजापति के समान होता है ॥ ब्रह्माने वडे पुत्र अथ को उपदेश किया। जो अथर्वा विराट् अभिमानी था सो सूर्यस्थ पुरुष गर्भ है, जो गर्भ है सो ही सर्व प्राणिस्वरूप है।

याम‍थर्वामनुः पितादध्यङ्धियमत्नत ।

ऋ० १-८०-१६

यां धियं यत्कर्मेत्यर्थः ॥ अथर्वा मनुश्च-पितापालयिता वा स्वापत्यानां मानवानां । दध्यङ्च एते त्रय आदित्य तेजोऽवस्था विशेषाः ॥

निरुक्त १२–३४–३–१५ ॥ स्कन्द स्वामी भाष्य ।

अथर्वा प्राणरूप मन है, मन ही सृष्टि संकल्पात्मक मनु है, मनु संकल्प पिता है और संकल्प की क्रिया ही वाणीरूप दध्यङ् है। अथर्वाने जिस कर्म को किया, सो ही मनुष्यादि प्रजा की उत्पत्ति और पालन है, इसलिये ही अथर्वा, मनु, और दध्यङ् ये तीनों सूर्य के तेजकी विशेष अवस्थारूप है ॥

आत्मै वैषारथो भवत्यात्मा इव आत्मा युधमात्मेष आत्मा व सर्व देवस्य देवस्य ॥

निरुक्त ७–४–१५ ॥

एक चेतन ब्रह्मा अपनी शक्ति के द्वारा देह, इन्द्रिय, विषय, मन आदि होता है, यह आत्मा सब जगत् रूप है, और सब जड प्रपंच से रहित देवोंका देव है। इस सूक्तके जपसे सब संशय नाश होता है। और मरकर प्रजापति लोकमें जाता है॥९॥

अघमर्षण सूक्तस्याघमर्षण ऋषिरनुष्टुप्छन्दः ॥ सृष्टिकर्ता प्रजापति देवता ॥

अश्वमेधावभृथे विनियोगः॥ ऋतञ्च सत्य
ञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत । ततोरात्र्यजाय
ततः समुद्रोऽअर्णवः ॥१॥

सर्वत्र प्रकाशमान स्वयं ज्योति स्वरूप महेश्वरने प्रलय
पीछे सृष्टि रचने की इच्छा किया, मैं एक हूँ बहुत होऊँ;
संकल्पी के संकल्प से (ऋतं) असत् अप्रगट अवस्था अव्य
हुआ, उस अव्याकृत, प्राण से (सत्यं) प्रगट अवस्था हिर
गर्भ उत्पन्न हुआ (च) फिर (ततः) उस हिरण्यगर्भ से वि
उत्पन्न हुआ, उस विराट् से (समुद्रः) द्यौ (अर्णवः) अन्त
(रात्रिः) भूमि क्रमसे उत्पन्न हुए ॥

आपो वै समुद्रः ॥ श० ब्रा० ३-८-४-११

आपो वै द्यौः ॥ श० ब्रा ६-४-१-९

अर्णवे सदने ॥ मा० शा० १३-५३

अन्तरिक्षं वा अपां सधस्थं ॥ श० ब्रा० ७-५-२-५७

अन्तरिक्षमेतं ह्याकाशं ॥ श० ब्रा० १०-३-५-२

अर्णवः ॥ ऋग्० १०-६६-११

असो वै लोकः समुद्रः ॥ श० ब्रा० ९-४-२-५

रजता रात्रिः ॥ तै० ब्रा० १-५-१०-७ ॥

आप, समुद्र नाम द्यौ का है। अर्णव—अन्तरिक्ष का नाम है। अन्तरिक्ष ही आकाश है। अर्णव—मेघोंका स्थान अन्तरिक्ष है। यह द्युलोक ही समुद्र है। (रजता) पृथिवी ही रात्रि है॥

ऋतं प्रथमं ॥ ऋग० ९-७०-६ ॥

ऋतेन ऋतमपिहितं ॥ ऋग० ५-६९-१ ॥

मनो वा ऋतं ॥ जै० आर० ३-६३-५ ॥

ब्रह्म वा ऋतं ॥ श० ब्रा० ४-१-४-१० ॥

प्रथम ऋतं—जल ही है। निर्विकारी ऋत विकारी अव्यक्त ऋत से ढक गया। मनरूप संकल्प ही ऋत है। व्यापक संकल्प क्रिया ही ऋत है॥

ऋतं वै सत्यं ॥ मै० शा० १-८-७ ॥

ऋत ही सत्य है। अद्वितीय रुद्र ही माया के द्वारा विविध नाम रूपों में चेतनरूप से व्यापक है ॥१॥

समुद्रादर्णवादधिसंवत्सरो अजायत ॥
अहो रात्राणि विदधद्विश्वस्यमिषतोवशी ॥२॥

द्यौ से सौर संवत्सरात्मक सूर्य और अन्तरिक्ष से चान्द्र संवत्सर रूप चन्द्रमा उत्पन्न हुआ, फिर सूर्य से पल, निमिष, काष्ठा, कला, मुहूर्त, पहर, दिन, रात्रि, पक्ष, मास, ऋतु आ-

यन, वर्ष हुए। जो इस सब जगत् को रचनेवाला तथा स्थि
रूप पालन करनेवाला है, सो ही संहार कर्ता समस्त ब्रह्मा
का स्वामी है ॥२॥ इन दो मंत्रो में महाप्रलय के पीछे जो सृ
उत्पन्न होती है उसकाही वर्णन है और तीसरे मंत्र में प्रलं
ब्राह्म प्रलय कल्पसृष्टिका वर्णन है ॥

सूर्याचंद्रमसौधाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथोस्वः ॥

ऋग्० १०-१९०-१...३

जिस प्रकार प्रत्येक ब्रह्मा की रात्रिरूप कल्प के आ
रम्भ में त्रिलोकी का संहार करके अव्यक्त गुहामें शयन कर
है फिर रात्रिके अन्त में और दिनरूप कल्प के आरम्भ
जागकर पहिले कल्पों में ब्रह्मदेवने सूर्य चन्द्रमा आदिको जै
रचा था, वैसे ही इस वर्तमान कल्प में भी द्यौ को, अन्तरि
को और भूमि को उत्पन्न किया। फिर भूमि आकाश, द्यौ
क्रमवद्ध अग्नि, वायु, सूर्य को प्रगट करता है। इस प्रथम खण्ड
से यह निश्चय हुआ, कि एक ही रुद्र अनन्त नामरूप से जगत्
की उत्पत्ति स्थिति लय करता है। जैसे नदी एक और घाट
अनेक हैं, तैसे ही चेतन देव एक और नाम रूप उपाधि
अनेक हैं ॥

इति श्री राजपीपलानिवासि स्वामी शंकरानन्दगिरिकृतायां वेद-
सिद्धान्तरहस्य भाषाटीकायां प्रथमं खण्डं समाप्तम् ॥

॥ अथ वेद सिद्धान्त रहस्य ॥

दूसरा खण्ड

ॐ षोडशर्चस्य सूक्त ऋषिर्नारायणः स्मृतः ॥ छन्दोऽनुष्टुप्त्रिष्टुबन्ते देवता पुरुषः स्मृतः ॥ विनियोगः॥ पुरुषमेध प्रोक्षणीय पुरुषस्तुतौ ॥ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥ सभूमिंविश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ १ ॥

जो एक ब्रह्मा समष्टि पुरुष ही असंख्य व्यष्टि प्राणियों के भेदको लेकर ही अनन्त शिर, नेत्र, हाथ, चरणादि अवयववाला है। सो ही ब्रह्मा अपनी हिरण्यगर्भ देह से विराट् देहको सर्वत्र से वशमें करके दश दिशा व्यापी सूर्यमण्डल में विशेष स्वरूप से सविता विराजमान हुआ। और प्रत्येक शरीरों में नाभि से दशाङ्गुल ऊपर हृदय में जीवरूप से स्थित है ॥

इमे वै लोकाः पूरयमेवयोऽयंपवतेसोऽस्यां पुरिशेतेतस्मात्पुरुषः ॥ श० ब्रा० १३-६-२-१ ॥

ये जडात्मक विराट् के विभागरूप लोक जिस हिरण्यगर्भ से पूर्ण हैं सो ही यह ब्रह्मा इस आदित्यपुरमें प्रकाशित है और सो ही व्यष्टि शरीरों में प्राण के द्वारा चेष्टा करता है इस लिये ही पुरुष है ॥

प्राण एष स पुरिशेते स पुरिशेते इति। पुरिशयं सन्तं प्राणं पुरुष इत्याचक्षते ॥

गो० ब्रा० १-३९।

यह अमृत युक्त चेतन है सो ही समष्टि व्यष्टि पुरि-देह में अहंरूप से स्थित है, जो देहस्थित है, उस प्राणको ही पुरुष इस नामसे-कहते हैं । प्राणयुक्त चेतन पूर्ण है, और प्राणरहित भी प्राण रुद्र पूर्णसे भी परे है ॥

सहस्रो वै प्रजापतिः ॥ मै० शा० ३-३-४॥

पूर्णो वै प्रजापतिः ॥ पूर्णः पुरुषः ॥

कपि० शा० ७-८॥

आत्मा वै पुरुषः ॥ क० शा० २०-५॥

सर्वो वै पुरुषः ॥ क० शा० ८-१२॥

अपां पुष्पं पृच्छामि यत्र तन्माययाहितं॥

अ० १०-८-३४॥

प्रजापति वैं ब्रह्मा ॥ का० शा० १-१४॥

आदित्य एष रुद्रः ॥ तै० शा० ६-५-६-८॥

असौ वा आदित्यो ब्रह्म ॥ तै० आर० २–२–२ ॥

सर्वो वै रुद्रः पुरुषो वै रुद्रः ॥

तै० आर० १०–१६–१ ॥

प्राणा वै रश्मयः ॥ दशवसवइन्द्र एकादशः ॥ दशरुद्रा इन्द्र एकादशः ॥ दशादित्या इन्द्र एकादशः ॥ का० शा २८–३ ॥

प्राणा वै वसवः ॥ प्राणा वै रुद्राः प्राणा वा आदित्याः ॥ ऐ० आर० ४–२–३ ॥

दश वै पाशोः प्राणा आत्मैकादशः ॥

का० शा० २६–४ ॥

समष्टि प्रजापति ही अनन्त व्यष्टि स्वरूप है। समष्टि–व्यष्टि-पूर्ण स्वरूप प्रजापति ही पूर्ण पुरुष है। आत्मा ही पुरुष है, सर्व-रूप पुरुष है। अव्याकृत के सारको पूछता हूं, जिस हिरण्य गर्भ विद्यामें स्थित है, सो ही ब्रह्मा विराट देहरूप अविद्यासे आच्छादित है। यह ब्रह्म लोकवासी ब्रह्मा ही, सूर्यमण्डलवासी ब्रह्मा है, यह सूर्यमण्डलवर्ती पुरुष ही रुद्र है। यह आदित्य ब्रह्म है। सर्वव्यापक रुद्र है, सो ही पूर्णका भी पूर्ण पुरुष रुद्र है। सूर्यकी किरण ही प्राण हैं—इन प्राणसमूह मण्डलमें चेतन पुरुष है। भूमिके दश प्राण ही वसु हैं, उन दशोंका प्रेरक चेतन देवता ग्यारहवाँ अग्नि है। अन्तरीक्षके दश प्राणरूप रुद्र हैं। उनका प्रेरक

ग्यारहवाँ वायु है। द्यौके दश आदित्य रूप प्राण हैं, उनक ग्यारहवाँ देव सविता है। दश पाश ही प्राण हैं उनका अन्तर्यामी एकादश आत्मा है॥

प्राणा वै दशवीराः ॥ दशदिशः ॥

श० ब्रा० ६-३-१-२१ श० ब्रा० १२-८-१-२२।

दशस्वर्ग लोकाः ॥ गो० ब्रा० उ० ६-२।

स्वर्गो हि लोकोदिशः ॥ श० ब्रा० ८-१-२-४।

दिशो वै प्राणाः ॥ जै० आर० ४-२२-११।

एषः स्वर्गोलोकः ॥ तै०ब्रा० ३-८-१०-३॥

दश ही प्राण सहायक हैं। दश दिशाएँ दशही स्वर्गलोक हैं। स्वर्ग लोकही दिशा है। दश दिशायें प्राण हैं। यह सूर्य स्वर्ग लोक है॥

उक्षासमुद्रो अरुषः सुपर्णः ॥ मध्ये दिवो निहितः दशगर्भश्च रसेधापयन्ते ॥

ऋ० ५-४७-३-४॥

कामनाओंकी वर्षा करनेवाले प्रकाशमान् सूर्यमण्डलरूप समुद्र है—यह समुद्र द्यौ और भूमिके मध्यमें स्थित है, दश दिशायें अपने गर्भरूप आदित्यमण्डलको दैनिक गतिके लिये प्रेरणा करती हैं॥

समुद्र आसांसदनं ॥ अ० २-२-३॥

किरणरूप नदियोंका स्थान सूर्यमण्डल ही समुद्र है॥

बहूनि वै रश्मीनां रूपाणि आदित्यो बहुरूपः ॥ मै० २-८-११ ॥

किरणोंके बहुत रूप हैं इसलिये सूर्य भी बहुत स्वरूप-वाला है॥

आदित्यं गर्भंपयसासमङ्ग्धि सहस्रस्यप्रतिमां विश्वरूपम् ॥

काण्व शा० २-४-४-४ ॥ मा० शा० १३-४१ ॥

असंख्य व्यष्टि शरीरोंका सूर्यमण्डलस्थ सार समष्टि सर्व स्वरूप रुद्रको दुग्धसे-अग्निमें सिञ्चन करो-अग्निहोत्र, उपासना ध्यानसे चिन्तवन करो ॥१॥

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्चभव्यं। उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥२॥

जो कुछ जगत् हुआ, तथा जो कुछ होनेवाला है, और जो यह सब जगत् वर्त्तमान है सोही पुरुष है। तथा जो हिरण्य-गर्भ देहका स्वामी ब्रह्मा है सोही विराट्के द्वारा विशेष स्वरूपको प्राप्त हुआ ॥

अन्नं वै विराट् ॥ मै० शा० १-६-११ ॥

अन्न ही विराट् है ॥२॥

एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्चपू
रुषः ॥पादोऽस्य विस्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं
दिवि ॥ ३ ॥

यह सब जगत् उसकी विभूति है वह तो इस महिम
श्रेष्ठ पुरुष है। इस पुरुषकी समस्त चराचर प्रजायें एक चतु
वैखरी वाणीरूप विराट् क्षर भाग है, और इसके अक्षर-
तीन भाग द्यौ में सूर्यमण्डल रूप है। मृत्यु अविद्याका
विराट् है और अमृत-विद्याका पूर्ण विकास सूर्यमण्डल त्रिप
रूप ऋग्, यजु, साम स्वरूपसे तपता है ॥

यज्ञो महिमा ॥ शा० ब्रा० ६-३-१-१८

विराड्वै यज्ञः ॥ शा० ब्रा० १-१-१-२२

विराट् ही महिमा है। विराड् ही यज्ञरूप है ॥

चतुर्विधोह्ययमात्मा ॥ शा० ब्रा० ७-१-१-१८

यह आत्मा चार प्रकारकी है ॥

आत्मा वै हविः ॥ कपि० शा० २६-२

विराट् रूप हवि व्यापक-आत्मा है ॥

आत्माहि वरः ॥ मै० शा० ४-६-६

आत्मा ही श्रेष्ठ है ॥

सर्वं वै वरः ॥ शा० ब्रा० २-२-१-४

सर्व व्यापक ही उत्तम है। अमृत छाया तीन पाद है—और अमृत छायाकी प्रतिछाया मृत्यु विराट एक पाद है॥

आदित्यस्त्रिपात्तस्येमेलोकाः पादाः॥

गो० ब्रा० २-२॥

सूर्य ही तीन पाद रूप है और उस सूर्यके ये सब विराडात्मक लोक पाद हैं, अर्थात् एक विराट् भागके अनेक भागरूप पाद हैं॥

आदित्यो वा एष एतन्मण्डलं तपति तत्र ता ऋचस्तदृचामण्डलं सऋचां लोकोऽथ य एष एतस्मिन्मण्डलेऽर्चिषि पुरुषस्तानि यजूंषि स यजुषामण्डलं स यजुषांलोकः सैषात्रय्येवविद्या तपति य एषोन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषः॥

तै० आर० १०-१३-१॥

यह सूर्य ही देखनेवाला यह मण्डलरूपसे तपता है, उस मण्डलमें प्रातःकालके सूर्यरूप ऋग्वेद मंत्र प्रकाशित हैं, उन ऋचाओंके देवता मण्डलमें विराजमान हैं, जो प्राणरूप विशेष तेज मध्याह्नमें तपता है सो ही यजुर्वेद मंत्र तपते हैं, उन मंत्रोंके देवता मण्डलमें स्थित हैं। सूर्य अस्तके समय इस मण्डलमें भास्वर तेजसे जो प्रकाश है सो ही सामवेद ऋचायें तपती हैं, उनके देवता मण्डलमें अवस्थित हैं। गायत्री आदि पद छंदबद्ध ऋग् मंत्र, गद्यात्मक यजुमंत्र, विकृति गायन साम मंत्र रूप

तीन विद्या जिस मण्डलमें प्रकाशित हैं। इन तीन विद्या रूप मण्डलका स्वामी है सो ही सूर्यमण्डल रूप त्रिपादके बीचमें विराजमान स्वयं ज्योति स्वरूप पूर्ण पुरुष रुद्र है। चन्द्र मण्डलसंबन्धी कर्म ही पितृमार्गरूप अविद्या हैं, जब चन्दमा क्षय वृद्धियुक्त है तब उसके प्राणि भी पुनरावृत्तिवाले हैं, यह चन्द्र अविद्यारूप चतुर्थ पाद है। और सूर्य अविनाशीके साथ जो कर्म सम्बन्ध है, सोही विद्यारूप अपुनरागमन है।

ऋक्चवाइदमग्रे सामचास्तां ॥ ऐ० ब्रा० ३-२३॥

जो प्रातःकालमें यह मण्डल तपता है, सोही ऋग्वेद है और जो सायंकालमें अस्त होते समय तपता है सोही सामवेद है।

पितृलोकः सोमः ॥ शां० ब्रा० १६-८॥

देव लोको वा आदित्यः ॥ शां० ब्रा० ५-७॥

आदित्य एव देवलोकः ॥ जै० आर० ३-१३-१२॥

कर्मणा पितृलोको विद्यया देवलोकः ॥

श० ब्रा० १४-४-३-२-४ ॥ बृ० उ० १-५-१६ ॥

पितृ लोक चन्द्रमा है। और देवलोक ही सूर्य है। भेदरूप अविद्यासे पितृलोक, और सूर्यस्थ चेतनकी अभेद उपासनासे सूर्यलोक प्राप्त होता है। विराट् उपासना ही अविद्या है, और हिरण्यगर्भ उपासनाही विद्या है। अमृत हिरण्यगर्भ देहमें तीन पाद और मृत्यु-विराट्में एक पाद कल्पना है, चेतनमें पाद कल्पना नहीं है ॥

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोस्येहाभव-त्पुनः ॥ ततो विष्वङ्व्यक्रमत साशनानशने अभि ॥ ४ ॥

ऊपर पुरुष तीन पादसे द्युलोकमें नित्य उदय है, और प्रयतिकी प्रति छाया स्वधा एक पाद इस संसारके रूपमें रहती है। प्राणको स्वधा अच्छादन करती हुई नाना जड पदार्थोंके रूप में प्रगट हुई, इस एक पादरूप स्वधा आधारको पाकर, तीन पाद प्रयति प्राणात्मक जंगमरूप से व्यापक हो रही है, जहां पर प्राण का विकास है, तहां पर चेतन विशेषरूप से भास रहा है और स्वधा का जहाँ पर पूर्ण विकास है वहाँ पर प्राण अच्छन्न हुए स्वधा ही स्थावर रूपसे प्रगट हो रही है। यह सब भोग्य भोक्ता स्थावर जंगम अग्नि सोमात्मक हैं ॥ ४ ॥

तस्माद्विराडजायत विराजो अधिपूरुषः ।
सजातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथोपुरः ॥५॥

उस सूक्ष्म अमृत हिरण्यगर्भ से, मृत्यु विराट् उत्पन्न हुआ, तथा विराट् से सृष्टिकरता पुरुष स्वायम्भुव मनु प्रगट हुआ, उस उत्पन्न होनेवाले मनु के अतिरिक्त कोई नहीं था। फिर अपनी उत्पत्ति के पीछे मनुने भूमि पर विविध योनिवाले शरीरों को रचा ॥

विराजो वै योनेः प्रजापतिः प्रजा असृजत ॥
मै० शा० १-१०-८ ॥

ब्रह्माने विराट् योनि से मनुरूप प्रजा रची ॥

मनुर्वै प्रजा कामोऽग्निमाधास्यमानः ॥

मै० शा० १-१-१३

मनोर्दश जाया आसन् दश पुत्रा ॥

मै० शा० १-५-८

मनुने प्रजा को रचने की इच्छा की फिर अग्नि को सम्पादन किया। मनु के दश प्रतिछाया रूप स्त्री उनसे पचपन पुत्र उत्पन्न हुए ॥

विराड् वैराज पुरुषस्तत्पुरुषमनुः ॥

का० शा० ३३-३

जो वैराज पुरुष है सो ही विराट् पुत्र पुरुष मनु है ॥

मनुः प्रजा असृजत ॥ मै० शा० ३-११-३

मनुः पिता ॥

ऋ० ८-५२-१

मनु पिता है ॥ ५ ॥

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शर-
द्धवि ॥ ६ ॥

जिस समय पुरुष की हविरूप से यज्ञके देवताओं विस्तार किया, इस यज्ञका घृत वसन्त ऋतु, इन्धन ग्रीष्मऋतु और हवि शरदऋतु हुई ॥ ६ ॥

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः ॥
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥ ७ ॥

जो सबसे पहिले विराट् उत्पन्न हुआ उस स्वधाकार्यरूप पुरुष को यज्ञीय पशुके स्थान में प्रौक्षण आदि संस्कार से पवित्र किया गया, फिर उसका आलम्बन करके साध्योंने और ऋषियोंने यज्ञमें यज्ञ पुरुषका पूजन किया ॥

प्रजापतिस्तपोऽतप्यत तस्य ह वै तप्यमानस्य मनः प्राजायत देवांस्सृजेयमिति त इमेदेवा असृजन्त दिवा देवानसृजत नक्तमसुरान् यद्दिवा देवानसृजत तद्देवानां देवत्वंयदसूर्यं तदसुराणामसुरत्वं यत्पीतत्वं तत्पितृणां देवा वै स्वर्गकामास्तपोऽतप्यन्त तेषां तप्यमानानांरसो जायत पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौरिति ते अभ्यतप ᳪ स्तेषांतप्यमानना ᳪ रसो जायत ऋग्वेदः पृथिव्या यजुर्वेदोऽन्तरिक्षा सामवेदोऽमुष्मात्ते अभ्यतप ᳪ स्तेषां तप्यमानानां रसो जायत ऋग्वेदाद्गार्हपत्यो यजुर्वेदाद्दक्षिणाग्निः सामवेदादाहवनीयस्तेअभ्यतप ᳪ स्तेषांतप्यमाना

नांपुरुषो जायत सहस्रशीर्षाः सहस्राक्ष सहस्रपात्तेदेवाः प्रजापतिमुपब्रुवन् वेदशरी वा इदममृतशरीरं नहवाइदं मृत्योः ससा प्स्यतेति ते ब्रुवन्को नामासीति सहोवाच यज्ञो नामेति तेषां प्रजापतिः सद्यो यज्ञ संस्थामुपैति।

षड्विंश ब्राह्मणा ४।१।

ब्रह्माने पहिले विचारको विचार कर उस विचार करने के सूक्ष्म देहसे विराट् उत्पन्न हुआ। फिर ब्रह्माने विराट् के अवयवरूप देवताओं को रचूँ ऐसा विचार करके दिनमें देवताओंको रचा। दिनसे उत्पन्न हुए सो ही देवोंका देवत्व रात्रि से असुरों को रचा। जो असुरों में रात्रिबल है, सो असुरों का असुरपना है। कव्यरूप अमृत के पीने से पितृगण उत्पन्न हुए, साध्य देवोंने अग्निहोत्र से स्वर्ग में जाने के लिये इच्छा की। उनने महा:कठिन विचाररूप तप किया उस तप से तीनों लोक तप्त हो उठे—उन तीनों भूमि आकाश द्यौ से सार प्रगट हुआ। उस भूमि के सारसे ऋग्वेद, अन्तरिक्ष के सारसे यजुर्वेद, द्यौ के सारसे सामवेद प्रगट हुआ। फिर ब्रह्माने उनका दुहन किया, उस ऋग्वेद के सार से गार्हपत्य अग्नि, यजु के सारसे दक्षिणाग्नि, सामके सारसे आहवनीय अग्नि उत्पन्न हुआ। फिर ब्रह्माने उन तीनों अग्नियों को विचाररूपसे तपाया, उस विचार के पीछे उन तीनों अग्नियोंके तेज

एक असंख्य शिर, चक्षु, पगवाला पुरुष प्रगट हुआ, यही चतुर्थ पुरुष है, फिर उस पुरुष की उत्पत्ति के अनन्तर वे सब देवता ब्रह्मा के पास जाकर कहने लगे, हे पितामह, यह पुरुष तीनों वेदके सारभूत तीनों अग्नियों के सारसे उत्पन्न हुआ है, सो मृत्यु से नाश नहीं होगा, यह अमर देवता है, इसका नाम क्या है सो हमको बतावो। ब्रह्माने देवों से कहा यह यज्ञ है, अग्निहोत्र यज्ञका अभिमानी चेतन पुरुष है। इसके द्वाराही यज्ञ करो, जो शांखायन ब्राह्मण के छठे अध्याय में ब्रह्माने चमस रचा, यह चमसही तीन अग्नि हैं, उस चमस से एक कुमार प्रगट हुआ सो ही रुद्र था। यहाँ पर भी वही रुद्र है। तीन अग्निरूप मूल—नेत्रों को धारण करनेवाला चतुर्थ यज्ञ पुरुष है। सूर्यमण्डल आहवनीय अग्नि है, उसमें जो चतुर्थ चेतन पुरुष है सो ही यज्ञ पुरुष है। जिसका कहीं कूर्म, कहीं रुद्र, कहीं यज्ञ आदि नाम से वेदोंने गायन किया है वह तो एक ही है॥ ७॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्।
पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्या नारण्यान् ग्राम्याँश्चये॥

जिस यज्ञमें सर्वात्मक पुरुषका हवन होता है, उस मानस यज्ञसे दधिमिश्रित घृत आदि पदार्थ उत्पन्न हुए। उसीसे वायुसे रक्षित वनके हरिणादि और ग्रामवासी कुत्ता आदि पशु उत्पन्न हुए॥

पशवो वै पृषदाज्यं ॥ मै० शा० १-१०-७।

वायुर्वै पशूनां प्रियं धाम ॥ का० शा० १९-८।

पशु ही दूध दहीं, घृतके कारण हैं॥ वायु ही प्राणि मात्रका प्रिय आधार है॥८॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसिजज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥९॥

सर्वात्मक पुरुषके होमयुक्त उस यज्ञसे ऋग्वेद-ऋचाएं और सामवेद गायन मंत्र उत्पन्न हुए, उससे गायत्री आदि सात छन्द प्राणरूप छन्द प्रगट हुए, और उसीसे गद्यात्मक यजु मंत्र प्रगट हुए॥

प्राणावै छन्दांसि ॥ शां० ब्रा० ७-९॥

प्राण ही छन्द हैं। प्राणोके देवता ऋषि हैं, उन-ऋषियोंके हृदयमें वेद मंत्र स्फुरित हुए॥

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥ १० ॥

उस यज्ञात्मक पुरुषसे घोड़ा तथा अन्य ऊपर नीचे दाँतों वाले पशु मात्र उत्पन्न हुए, और गौ, बकरी, भेड़—घेंटा—ऊनीवाले भी उत्पन्न हुए॥

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरूपादा उ-
च्यते ॥ ११ ॥

जो विराट् पुरुष उत्पन्न किया गया उसकी कितने प्रकार से कल्पना की है, और उसके मुख, दो हाथ, दो जंघा, दो पग कौन हुए ॥ ११ ॥

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यःकृतः।
ऊरूतदस्ययद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥१२॥

उस विराट्के मुखसे ब्राह्मण हुआ। दोनों हाथोंसे क्षत्रियको रचा, उसकी दोनों जंघाओंसे वाणिज्य करनेवाला वैश्य उत्पन्न हुआ—उसके दोनों चरणोंसे शूद्र उत्पन्न हुआ ॥

प्रजापतिर्वाव ज्येष्ठः सहचेतेनानाग्रेऽय-
जते प्रजापतिरकामयत प्रजायेयेति समुखत-
स्त्रिवृतं निरमिमीत तमग्निर्देवाऽन्वसृज्यत ।
गायत्री छन्दोरथन्तरँसामब्राह्मणो मनुष्याणा-
मजः पशूनां तस्मात्तेमुख्यामुखतोह्यसृज्य-
न्त, इति ॥

ब्रह्मा ही सबसे श्रेष्ठ है, उसने विराट्को उत्पन्न करके पहिले यज्ञ किया। फिर मैं एक हूँ बहुत प्रजावाला होऊँ इस

संकल्पके पीछे वह अपने विराट् देहके द्वारा प्रजा रचने लगा मुखसे त्रिवृत्स्तोम रचा, फिर देवताओंके मध्यमें अग्निको रचा छन्दोंके बीचमें गायत्री छन्द रचा, सामोंके बीचमें रथंतर साम रचा। इनकी उत्पत्तिके पीछे मनुष्योंके बीचमें रथंतर साम रचा। इनकी उत्पत्तिके पीछे मनुष्योंके बीचमें ब्राह्मण रचा और पशुओंके मध्यमें बकरा रचा, ये सब मुखसे रचे गये इस लिये श्रेष्ठ हैं॥

उरसो बाहुभ्यां पञ्चदशं निरमिमीत तमिन्द्रो देवताऽन्वसृज्यत त्रिष्टुप्छन्दो बृहत्साम राजन्यो मनुष्याणामविः पशूनां तस्मात्ते वीर्यावन्तो विर्याद्ध्यसृज्यन्त इति ॥

दोनों हाथोंसे पंच दश स्तोम रचा—और देवताओंके मध्यमें इन्द्र, तथा त्रिष्टुप्छन्द रचा और बृहत्साम, मनुष्योंमें क्षत्रिय, पशुओंमें मेष—भेड रचा, जो ब्रह्माके हाथोंसे प्रगट हुए इसलिये वे सबही बलवान हैं॥

मध्यतः सप्तदशं निरमिमीत तं विश्वेदेवा देवता अन्वसृज्यन्त जगतीछन्दो वैरूप साम वैश्यो मनुष्याणां गवः पशूनां तस्मात्त आद्या अन्नधानाद्ध्यसृज्यन्त ॥

मध्यभाग से सप्तदश स्तोम, देवताओं के बीचमें विश्वेदेवा, जगती छन्द वैरूपं साम रचा, और मनुष्योंमें वैश्य, पशुओंमें गौ रचा। वैश्य खेती व्यापार गौ रक्षण करता है। गौसे दूध घृत रूप देवों का अन्न उत्पन्न होता है। और बैलसे खेती, खेतीसे अन्न होता है, इसलिये ही वैश्य तथा गौको अन्न कहा है॥

पत्त एकविंशं निरमिमीत तमनुष्टुप्छन्दोऽन्वसृज्यत वैराजं साम शूद्रोमनुष्याणामश्वः पशूनां तस्मात्तौ भूतसंक्रामिणावश्वश्च शूद्रश्च तस्माच्छूद्रो यज्ञेऽनवक्लृप्तो नहि देवता अन्वसृज्यत तस्मात्पादावुपजीवतः पत्तो ह्यसृज्यताम्॥

ब्रह्माने पगसे इक्कीस स्तोम, अनुष्टुप छन्द वैराज साम रचा, और मनुष्यों में शूद्र पशुओंमें घोड़ा रचा। प्रथम होनेवाले द्विजाति की सेवा करना इन दोनों का धर्म है। इसलिये ही शूद्र यज्ञ का अधिकारी नहीं हैं, क्योंकि उसके साथ किसी देवता की उत्पत्ति नहीं हुई है। इस हेतु से शूद्र पगसे चलकर अपनी जीविका करे, पगसे शूद्र और घोडा को रचा है॥

प्राणा वै त्रिवृदर्धमासाः पञ्चदशः प्रजापतिः सप्तदशस्त्रय इमेलोका असावादित्य एकविंशः॥ तै० शा० ७-१-१-४-५-६॥

प्राण ही त्रिवृत स्तोम है। पितरों का कृष्णपक्ष दिन है, और शुक्लपक्ष ही रात्रि है। आधे महिने के पन्द्रह दिन ही पंचदश स्तोम है,। पञ्चदश तिथि और सोलहवाँ आमावस्या है, सप्तसूर्य है। यही सप्तदश स्तोम है। तीन लोक, और हेमन्त शिशिर को एक ऋतु माना है, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद् ये पाँच ऋतु हैं, बारह महिना, ये इक्कीस स्तोमरूप प्रजापति है।

न शूद्रोदुह्यादसतो वा एष संभूतोऽसत्स्यात्। यद्वावपवित्रमत्येति तद्धविरग्निहोत्रमेव शूद्रो-नदुह्यात् ॥ का० शा० ३१-२ ॥ कपिष्ठल कठशाखा ४७-२॥

शूद्र पगसे उत्पन्न हुआ है, वह अपवित्र है, इसलिये यज्ञ न करे। प्रजापति के उत्तम अंगोसे पग अधम अंग है, उससे प्रगट हुआ शूद्र है। जो चतुर्थ वर्ण पवित्रता का अतिक्रमण करता है सो ही अपवित्र है, अर्थात् अपने वर्णके कर्म को त्यागता है, सो ही अपवित्र, इसलिये शूद्र कभी वैदिक अग्निहोत्र को न करे। क्योंकि द्विजाति का यह कर्म है। और शूद्र यज्ञमें सहायता करे, जिससे उसको भी यज्ञकर्त्ताकी आशीष से स्वर्ग मिलेगा ॥

ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्रायचार्य्याय ॥

अ० १९-३२-८ ॥

चत्वारोवै पुरुषा ब्राह्मणो राजन्योवैश्यः शूद्रः ॥

मै० शा० ४-४-६ ॥

चत्वारोवै वर्णाः ॥ ब्राह्मणो राजन्यो-
वैश्यः शूद्रः ॥ श० ब्रा० ५-५-४-९ ॥

अनृतंस्त्रीशूद्रः श्वाकृष्णः शकुनिस्तानि न
प्रेक्षेत ॥ श० ब्रा० १४-१-१-३१ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये चार वर्ण हैं। वैदिक सकाम्य अनुष्ठान करते समय, उत्तम अधम विचाररहित हो असत्य है। असत्यभाषी और अभक्षी, स्त्री, शूद्र, कुत्ता, काग पक्षी इनको नहीं देखे॥

पञ्चकृष्टिषु ॥ ऋ० २-२-१०-४-३८-१०-७-१८-८ ॥

पञ्चमानुषान् ॥ ऋ० ८-९-२ ॥

चार वर्ण पाँचवी भील जाती है॥

इमाः प्रजाअजनयन्मनूनाम ॥ ऋ० १-९६-२॥

मनुकी प्रार्थनासे अग्निने--ब्रह्माने इन मानवी प्रजाओंको उत्पन्न किया था॥

मंत्रं ये वारंनर्या अतक्षन्॥ ऋ० ७-७-६ ॥

जो मनुष्य वैदिक विधियुक्त गर्भाधान, उपवीत आदि मंत्र संस्कारसे शुद्ध हुए हैं, उन द्विजातियोंने ही अग्निको यज्ञ रूपसे प्रज्वलित किया है।

वसन्तो वै ब्राह्मणस्यर्तुः ॥ ग्रीष्मो वै
राजन्यस्यर्तुः॥ शरद्वैश्यस्यर्तुः॥ कपि० शा० ६-६ ॥

ब्राह्मणका वसन्त ऋतु, क्षत्रियका ग्रीष्म ऋतु है, वैश्यका शरद् ऋतु है, अपने २ ऋतुओंमें उपनयन आदि संस्कार करना ॥

प्रसृतो हवै यज्ञोपवीतिनो यज्ञोऽप्रसृतो नुपवीतिनी यत्किञ्च ब्राह्मणो यज्ञोपवीत्यधीते यजत एव तत् ॥ तस्माद्यज्ञोपवीत्येवाधीयी तयाजयेद्यजेतवायज्ञस्य प्रसृत्यै इति ॥ दक्षिणं बाहुमुद्धरतेऽवधत्ते सव्यमिति यज्ञोपवीतमेतदेव विपरीतं प्राचीनावीतं संवीतं मानुषम् ॥

तै० आ० २-१-१ ॥

निवीतं मनुष्याणां प्राचीनावीतं पितृणामुपवीतं देवानामुपव्ययते ॥

तै० शा० २-५-११-१ ॥

यज्ञोपवीतवाले द्विजाति के जो यज्ञ है सो अनन्त फल वाले हैं, और जो उपवीतहीनके यज्ञ हैं, वह पापरूप निष्फल हैं । उपवीतयुक्त ब्राह्मण सर्वत्र यज्ञके अनुष्ठानसे दिव्य फल पाता है ॥ वाम कन्धके ऊपर और दक्षिण कन्धेके नीचे लटके सो जनेऊ देवकर्ममें उत्तम है तथा कण्ठमें धारण कर दोनों हाथोंके बीचमें लटके सोही ऋषि तर्पणमें उत्तम है। और दाहिने कन्धेके ऊपर धारण करे सो ही पितृकर्ममें उत्तम है ॥

न मांसमश्नीयान्नस्त्रियमुपेयान्नोपर्या-
सीत जुगुप्सेतानृतात् इति ॥ पयो ब्राह्मण-
स्यव्रतं यवागू राजन्यस्याऽऽमिक्षा वैश्यस्य
इति ॥ तै० आर० २-८-१ ॥

तीनो वर्णोंके व्रत भिन्न हैं। व्रतके आरम्भसे समाप्ति
पर्य्यन्त, मांस, स्त्री, खाट, निन्दा, मिथ्या भाषण आदिका
त्याग करे। ब्राह्मण गौदूध पीकर रहे, क्षत्रीय यवका पिष्ट जलमें
राँधके पीवे, और गर्म दूधमें दहीं डाल दे, फिर उस फटे दूधकों
खाकर वैश्य रहे। वैदिक यज्ञ दीक्षामें फल मूल निषेध हैं॥

नस्त्रियैदद्यान्नशूद्राय सोमपीथं ॥

का० शा० ११-१० ॥

स्त्री और शूद्रके लिये सोम रस नहीं देना। ये दोनों वैदिक
संस्कार रहित हैं, इसलिये सोम पानकरने योग्य नहीं है॥

पयो वै सोमः ॥ तै० शा० २-५-५-१ ॥

ब्राह्मणः सोमं पिवति ॥ का० शा० २६-१ ॥

पाप्मा वै सुरा ब्राह्मणः सुरां न पिवति ॥

का० शा० १२-११-१२ ॥

गौ दूध मिश्रित सोम रस पीवे। दारु महा पाप है। ब्राह्मण
दारु कभी नहीं पीता है। जो ब्राह्मण शूद्रके समान अभक्षाभक्ष

करता है, वह ब्राह्मण नहीं है। वह तो वमन अन्नके समान है अर्थात् जैसे वमन अन्न अभक्ष है तैसे ही वह वैदिक कर्मरहित अपूज्य है ॥

सकामाँ२ अध्वनस्कुरु संज्ञानमस्तु मेऽमुना ॥ यथेमाँ वाचङ्कल्याणी मावदानि जनेभ्यः ॥ ब्रह्मराजन्याᳪंशूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च ॥ प्रियोदेवानां दक्षिणायै दातुरिहभूयासमयम्मेकामः समृध्यतामुपमादोनमतु ॥ काण्व शा० २८-२-३ ॥ मा० शा० २६-२ ॥

इस मन्त्रका विवस्वानृषि प्रजापत्यानुष्टुपछन्द, वाणी देवता। अग्नि, वायु, सूर्य, भूमि, अन्तरिक्ष, द्यौ, आप वरुणादि तुम सब देवता हमारे कर्म, उपासना, ज्ञान मार्गको सफल करो। मेरा सब देवताओंके साथ समागम होवे। जैसे मैं इस देव प्रार्थना सुखमयी वाणीको बोलता हूँ, तैसेही, यज्ञ सेवक ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रके लिये और तटस्थ जाति समूहके लिये तथा मेरे कुटुम्बके लिये स्वर्गमय सुख दिया जाय, इस यज्ञमें यह सर्व सुखकार वाणीको सर्वत्रसे उच्चारण करता हूँ। दक्षिणासे यज्ञ सफल होता है, उस श्रद्धामयी यज्ञके फल दाता अग्नि, वायु, सूर्य—ब्रह्मा आदि देवताओंका, मैं प्रिय होऊँगा, मेरा यह मनोरथ पूर्ण हो, तथा अमुक स्वर्गलोकरूप फल मरणके पीछे मेरेको प्रसन्न करे। जैसे एक भोजन राँधता—दूसरा सामग्री लाता,

तीसरा इन्धन लाता, चौथा जल लाता है। भोजनका भाग चारोंको मिलता है। तैसे ही यज्ञकर्ताकी चारों वर्ण सहायता करते हुए यज्ञके फलको चारों वर्ण स्वर्गमें भोगते हैं। यही बात उपरोक्त मंत्रसे स्पष्ट है॥

शुभ्रो वा एता यज्ञस्य यद्दक्षिणः ॥

तां० ब्रा० १६-१-१४ ॥

तस्मा नादक्षिणे न हविषा यजेत ॥

श० ब्रा० १-२-३-४ ॥

चतस्रो वै दक्षिणः ॥ हिरण्यं गोवासोऽश्वः ॥

श० ब्रा० ४-३-४-७ ॥

अन्नं दक्षिणा ॥ ऐ० ब्रा० ३-३ ॥

अग्ने रेतो हिरण्यं ॥ श० २-२-३-२८ ॥

तस्यरेता परापतत् ॥ तै० ब्रा० १-१-३-८ ॥

तत्सुवर्णं हिरण्यमभवत् ॥

तै० ब्रा० ३-८-२-४ ॥

जो दक्षिणा दी जाती है सो ही यज्ञ का शुभ कर्म है। इसलिये ही दक्षिणा रहित हविसे यज्ञ न करे। यज्ञमें चार दक्षिणा कही हैं, सुवर्ण, गौ, वस्त्र, घोडा। इन चारोंका यदि अभाव होवे तो, धनहीन यजमान की दोसौ छप्पन मुट्ठी यव-वा-व्रीहि-चावल ही पूर्णपात्ररूप दक्षिणा है। इस पाँचवें अन्नके सिवाय और यज्ञमें दक्षिणा चाँदीकी कभी नहीं देना॥

अग्निका वीर्य ही सुवर्ण है। उस अग्निका जो कुमार उत्पत्ति के समय वीर्य गिरा सो ही कार्त्तिक स्वामी हुए और जो भिन्न २ भूमि में कण व्याप्त हुए, सो ही सुवर्ण हुआ। दूध-और सुवर्ण ये दोनों अग्निका वीर्य है। सो वीर्य सुवर्ण हिरण्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ॥

आयुष्यं वर्चस्यं रायस्पोषमोद्भिदम्॥ इदं हिरण्यवर्चस्वज्जैत्रायाविशतादुमाम्॥

मा० शा० ३४-५०।

सुवर्णही आयुकी वृद्धि करता है, जो सुवर्ण भूमिमें उत्पन्न होता है यह-आयु-तेज-धन-बल-और स्वर्गका दक्षिणा से साधन तथा दुर्भिक्षमें अन्न का कारण है, सो सुवर्ण मेंसे कभी त्याग न करे॥

अग्नये हिरण्यं॥ रुद्रायगां॥

कपि० शा० ८-१२।

अग्नये इस मंत्र से सोनेकी दक्षिणा देवे। और रुद्राय- मंत्रसे गौकी दक्षिणा देना॥

यदश्रुशीयत तद्रजतं हिरण्यमभवत्तस्मा द्रजतं हिरण्यमदक्षिण्यमश्रुजंहियोबर्हिषिद दाति पुराऽस्य संवत्सराद्गृहे रुदन्तितस्मद्बर्हिषि नदेयम्॥

तै० शा० १-५-१-१-२॥

जो अग्नि रोया—उस रोनेसे अश्रुजल गिरा सोही चांदी हिरण्य श्वेत प्रकाशवाला धन हुआ, इस कारण से चाँदी दक्षिणा के अयोग्य है। जो कोई भी मूर्ख यजमान अग्निके आँसू से उत्पन्न हुई चांदी को यज्ञ में दक्षिणा देता है, फिर पीछे से एक वर्षपर्य्यन्त दक्षिणा देनेवाले के घरमें रुदन होता है, सब देवपितर, ऋषि रुदन करते हैं। दान लेनेवाला अग्निको असंतुष्ट करता है, अग्नि की अप्रसन्नता से ऋत्विकों को नरक मिलता है॥

दास आर्यः॥ ऋ० १०-३८-३॥

शूद्र उतार्यः॥ अ० ४-२०-४॥

शूद्रार्यौ॥ कपि० शा० २६-४॥ का० शा० १७-५॥

शूद्रार्य्यावसृज्यतां॥

काण्व शा० २-५-८-३॥ मा० शा० १४-३०॥

आर्योदासः॥ मा० शा० ३३-८०॥

दास और द्विजाति। द्विजातिरूप तीन वर्ण आय हैं और यज्ञरहित शूद्रकी दास संज्ञा है। जो वैदिक अग्नि आदि देव, पितर ऋषियों का यज्ञ पिण्ड, तर्पण, वेदाध्यन आदि कर्म करता है, सोही आर्य—श्रेष्ठ है। यज्ञरहित सब प्रजा की दास संज्ञा है॥

रामा॥ का० शा० २२-७॥

रामा इति॥

शूद्रोच्यते कृष्ण जातीया॥ निरुक्त १२-१३-२॥

निकृष्ट अशुभ कर्म करनेवाली जाति शूद्र है ॥

अधोरामः ॥ अधोरामौ ॥ मा. शा. २९-५८-५९।

राम शब्द निकृष्ट काले वर्णका वाचक है, राम और कृ
का एक ही अर्थ है। अभक्ष को भी भक्षण करे सो ही का
जाति का दास—शूद्र है। उदय के पहिले कुछ अन्धकारयुक्त
मता है सो ही काला वर्णवाला सूर्य है। उसी सूर्यकी वि
संज्ञा है, और जो अस्तके समय सूर्य अधोदिशा में जाता
सो ही सूर्यकी यमराज संज्ञा है। यदि शुद्र भी पाक यज्ञ-
वैश्वदेव इन्द्रायनमः ऐसा बोलके कर्म करे तो वह उत्तम शूद्र
उसकी गति अच्छी होगी। यदि द्विजाति नीच कर्म करे
नरकमें गिरेगा ॥ १२ ॥

**चन्द्रमामनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजा-
यत ॥ मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजा-
यत ॥ १३**

चन्द्रमा विराट् के मनसे, सूर्य नेत्रसे—उत्पन्न हुआ
अग्नि और इन्द्र मुखसे उत्पन्न हुए, तथा प्राणसे वायु उत्पन्न
हुआ ॥

मनो वै समुद्रः ॥ श० ब्रा० ७-५-२-५१।

मनही समुद्र है ॥ १३ ॥

नाभ्याआसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ॥ पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकां अकल्पयन् ॥ १४ ॥

विराट् की नाभि-उदर भागसे आकाश, शिरसे द्यौ, चरणों से पृथिवी, कानसे दिशाएँ आदि भुवन रचे गये ॥

चतस्रोदिशस्त्रय इमेलोका एते वै सप्त देवलोकाः ॥ श० ब्रा० १०-२-४-४॥

पूर्वादि चार दिशाएँ, और ये भूरादि तीन लोक, येही सात देवलोक हैं ॥

त्रयस्त्रिंशदक्षरा वै विराट् ॥ शां० ब्रा० १४-२ ॥

त्रयस्त्रिंशद्वै सर्वा देवताः ॥ शां० ब्रा० ८-६ ॥

त्रयस्त्रिंशद्देवताः प्रजापतिश्चतुस्त्रिंशः ॥ तां० ब्रा० १०-१-१६ ॥

जो तेतीस अक्षररूप विराट् है। सोही विराट् सर्वाङ्ग परिपूर्ण तेतीस सर्व देवस्वरूप है। आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, एक द्यौ अभिमानी इन्द्र और भूमि देवता अग्नि, ये तेतीस देवता विराट्के अवयव हैं। और तेतीसमें विराट्को रचनेवाला चौंतीसवाँ ब्रह्मा है॥१४॥

सप्तस्यासन्परिधयस्त्रिःसप्तसमिधः कृता ॥
देवायद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरुषं पशुम् ॥१५॥

विराट्के अंगरूप देवताओंने मानसिक यज्ञके सम्पाद
कालमें जिस समय पुरुषरूप पशुको बाँधा–आलम्बन किय
उस समय सात परिधियाँ (या सात छन्द) बनायी गयीं, त
बारह मास–पाँच ऋतुएँ, तीन लोक–और इक्कीसवाँ सूर्य है
ये ही इक्कीस ब्रह्माण्डयज्ञकी समिधा बनायीं गयीं ॥

एकविंशो वै संवत्सरः पञ्चर्तवो द्वादशमा
सास्त्रयइमे लोका असा आदित्य एकविंश
एष प्रजापतिः ॥ का० शा० १२-६॥

इक्कीसरूपवाला वर्ष है। बारह मास, पांच ऋतु, तीन लो
और यह सूर्य इक्कीसवाँ है, यही प्रजा उत्पादक तथा पाल
है ॥ १५ ॥

यज्ञेनयज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि
प्रथमान्यासन् ॥ तेहनाकं महिमानः सचन्त
यत्रपूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥ १६ ॥

ऋ० १०-९०...१६ ॥

देव ऋषियोंने मृत्यु विराट् यज्ञके द्वारा अमृत यज्ञका यजन
किया, वेही मुख्य यज्ञरूप कर्म जगत्के पालक हुए। जि
स्वर्गमें प्राचीन यज्ञ साधक अङ्गिरागण और देवता निवास कर

हैं, उस दुःखरहित स्वर्गको उत्तम वैदिक कर्म उपासनावाले श्रेष्ठ पुरुष प्राप्त होते हैं ॥

यज्ञेन वै तद्देवायज्ञमयजन्त यदग्निनाऽग्नि मयजन्त ते स्वर्गँल्लोकमायन् ॥ ऐ० ब्रा० १-१६ ॥

देवोंने यज्ञसे यज्ञ पुरुषका पूजन किया, अग्निहोत्रसे जिस अग्निका यजन किया उस अग्निकी कृपासे वे देवता स्वर्ग लोकको गये ॥

अग्ने सहस्राक्ष शतमूर्द्धञ्छतन्ते प्राणाः सहस्रँव्यानाः ॥ त्वं सहस्रराय ईशिषे तस्मै ते विधेम वाजाय स्वाहा ॥ मा० शा० १७-७१ ॥

हे व्यापक रुद्र, आपके अनन्त नेत्र, अनन्त मस्तक असंख्य प्राण, व्यानरूप हाथ-पग-मुख हैं। तुम असंख्य धन समूह पुष्टिके स्वामी हो, उस अनन्त शिरवाले आपके स्वरूपके लिये हविषान्न हम देते हैं। वह हवि स्वीकृत हो ॥

रुद्रो वा अग्निः ॥ कपि० शा० ४०-५ ॥

शतशीर्षा रुद्रोऽसृज्यत इति ॥

शा० ब्रा० ९-२-३-३२ ॥

रुद्र ही अग्नि नामवाला है ॥

ब्रह्माने अपने शिरसे रससे, सारसे अनन्त शिरवाले रुद्रको प्रगट किया, सो ही रुद्र सूर्यमण्डल में विराजमान हुआ,

सामान्यरूपसे सर्वत्र है, और विशेष रूप से सूर्यमें है। तीनों अग्नियों के द्वारा ऋषि देवता यज्ञ पुरुष रुद्रकी दया से स्व गये ॥

विप्राविप्रस्येति प्रजापति वैं विप्रोदेवा विप्राः ॥ श० ब्रा० ६-३-१-१६।

विप्ररूप अग्निकी उपासना करनेवाले ही ब्राह्मण है। प्रजापालक अग्निही ब्राह्मण है, । और अग्निहोत्र करनेवाले ही ब्राह्मण है ॥

अग्नि वैं ब्राह्मणः ॥ कपि० शा० ४-५॥

अग्नि ही ब्राह्मण है। अग्नि पूजनके लिये ही ब्राह्मण उत्पन्न किया है॥

अग्नि वैं प्रजापतिः ॥ कपि० शा० ७-१॥

अग्नि ही प्रजापति है ॥

अग्नावग्निश्चरति ॥ तै० शा० १-३-७-२॥

वैदिक अग्निमें चेतन रुद्र स्थित है ॥

प्रजापति वैं रुद्रं यज्ञान्निरभजत् ॥

गो० ब्रा० उ० १-२॥

स वै दक्षोनाम ॥ श० ब्रा० २-४-४-२॥

स्वायम्भुव मन्वन्तरमें दक्ष प्रजापति हुआ। उसने अग्निके अन्तरर्यामी चेतनको नहीं जाना यही त्याग करना, और वह

अग्निको ही देवोंका रक्षक मानकर यज्ञ करने लगा। विराट् के अवयवरूप सब देवताओंका आवाहन किया, दक्षका नाम प्रजापति है ॥

देवा वै यज्ञात् ॥ रुद्रमन्तरायन्

तै० शा० ६-४-६-२ ॥

देवोंने रुद्रको यज्ञसे पृथक् किया ॥

रुद्रं वै देवा यज्ञादन्तरायंस्तानायतया भिपर्य्यावर्तत तस्माद्धा अबिभयुस्ते देवाः ॥ प्रजापतिमेवोपाधावन्त्स प्रजापतिरेतं शत-रुद्रियमपश्यत्तेनैनमशमयत्तद्य एवं वेद वेदा ह व एवं प्रजापति नैनमेष देवो हिनस्ति ॥

मै० शा० ३-३-४ ॥

रुद्र सब देवोंके प्रथम प्रगट होते ही सूर्यमण्डलमय जलमें स्थित हुआ, उस रुद्रके पीछे सब देवता प्रगट हुए। फिर दक्षको अग्रगामी करके देवोंने यज्ञ किया। रुद्रको यज्ञसे बहार किया, अर्थात् रुद्रको वे देवता नहीं जानते थे, इसलिये रुद्रका भाग यज्ञमें नहीं दिया, यही रुद्रको यज्ञसे भिन्न करना है। जब रुद्रने जाना मेरेको देवता भूल गये हैं, तब रुद्रने गर्जना करके सर्वत्रसे यज्ञको घेर लिया। उस रुद्रसे सब देवता भयभीत हुए। वे सब देवता ब्रह्माके पास चले गये। ब्रह्माने भयभीत हुए देवताओंकी शान्तिके लिये शतरुद्रिय मंत्रोंको साक्षात्कार रूपसे देखा। ब्रह्माने

देवोंसे कहा जो इस शतरुद्रियके द्वारा इस रुद्रको प्रसन्न करता है सो ही रुद्रके स्वरूपको जानता है, जो इस प्रकार रुद्रके स्वरूपको जानता है, यह रुद्र उस उपासककी हिंसा नहीं करता है॥

रुद्रंशमयत्यङ्गिरसो वै स्वर्यंतः ॥ मै० शा० ३-३-१

अङ्गिरागण रुद्रको प्रसन्न करके स्वर्ग गये ॥

ते देवा एतच्छतरुद्रियमपश्यस्तेनेनम-शमयन्यच्छतरुद्रियं जुहोतिते नैवैनंशमयति॥ शमयत्यङ्गिरसो वै स्वर्गं लोकं यन्तः ॥

का० शा० २१-६॥

उन भयभीत देवोंने इस शतरुद्रियको देखा, उसके द्वारा इस रुद्रको प्रसन्न किया, और जो शतरुद्रियसे आहुति देता है वह उस हवनसे इस रुद्रको प्रसन्न करता है। रुद्रकी प्रसन्नतासे ही अङ्गिरागण स्वर्गलोकको गये ॥

प्राणा वै देवताः ॥ का० शा० १९-८॥

साध्या वै देवाः ॥ तै० शा० ६-३-४-८॥

प्रणा वै साध्या देवाः ॥

श० ब्रा० १०-२-२-४॥

प्राणा वा अङ्गिराः ॥ श० ब्रा० ६-७-१-२॥

प्राणा अङ्गिराः ॥ कपि० शा० ३१-१३॥

प्राणा वै मनुष्यः ॥ तै० शा० ६-१-१-४॥

मनुष्या वै विश्वेदेवाः ॥ कपि०शा० ३१-२॥

साध्या यज्ञादिसाधनवन्तः ॥ निरुक्त० १२-४१ ॥

प्राणही साध्य देवता हैं। प्राण ही मनुष्य हैं। मनुष्यरूपही सब देवता हैं। विराट् के अङ्गरूप सब देवताओंका पूर्ण विकास मनुष्य ही है॥

छन्दांसि वै साध्या देवास्तेऽग्रेऽग्निनाऽग्निमयजन्त ते स्वर्गंलोकमायन् ॥ आदित्याश्चैवेहाऽऽसन्नङ्गिरसश्चतेऽग्रेऽग्निनाऽग्निमयजन्त ते स्वर्गं लोकमायन् ॥ ऐ० ब्रा० ३-५ ॥

प्राणरूप वस्त्रको धारण करनेवाले यज्ञादिके साधनवाले साध्य देवता थे। उन साध्य देवोंने पहिले तीन अग्नि के द्वारा चतुथ सहस्रशिरवाले अग्निको पूजा वे रुद्रकी कृपासे स्वर्गलोकमें गये। वे पहिले इस भूलोकमें आदित्य और अङ्गिरा नामके ऋषिगण थे। उन्होंने पहिले अग्निके द्वारा व्यापक रुद्रको पूजा। रुद्रकी कृपासे वे स्वर्गलोकको गये॥

साध्या वै नाम देवा आसन्पूर्वे देवेभ्यस्तेषां न किञ्चन स्वमासीत्तेऽग्निमथित्वाग्नौ जुहूत ॥ का० शा० २६-७ ॥

पहले साध्य नामके देव थे। उनका अग्निहोत्र कर्म अग्नि, वायु, सूर्य, रुद्र प्रजापति आदि देवोंके लिये था, अपने लिये कुछ भी नहीं था, अर्थात् वे अपने व्यष्टिरूपकी अधिदैवस्वरूप उपासना करते थे। उन्होंने अग्निको मथकर अग्निमें हवन किया।

अग्नौ हि सर्वा देवता इज्यन्ते ॥

कपि० शा० ३८-६॥

अग्निर्मुखं प्रथमो देवतानां ॥

ऐ० ब्रा० १-१-२॥

अग्निः सोमो वै देवानांमुखं ॥

गो० ब्रा० १-१६॥

अग्नि वै देवानामन्नपतिः ॥

का० शा० १०-६॥

अग्निना वै देवा अन्नमदन्ति ॥

कपि० शा० ६-१॥

प्रथमो हि यज्ञः ॥ कपि० शा० ४०-२॥

यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म ॥ कपि० शा० ४६-६॥

यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्माणि ॥ का० शा० ३०-१०॥

अग्निः पवित्रं ॥ कपि० शा० ४-३॥

अग्निर्वाव देवयजनं ॥ कपि० शा० ३८-६॥

मुखं देवानामग्निः ॥ कपि० ०-३१-२०॥

अग्नि वैं यज्ञः ॥ तां० ब्रा०.१२-५-२॥

अग्नि होत्रमें सब देव पूजे जाते हैं। अग्नि ही सब देवोंका मुख है। अग्नि प्रथम मुख है, और दूसरा सोम मुख है। अग्निही देवताओंके अन्नका स्वामी है। अग्निके द्वाराही देवता अन्न खाते हैं। यज्ञ ही प्रथम धर्म है। यज्ञ ही अति उत्तम कर्म है। अग्नि पवित्र है। अग्नि सब देवोंका पूज्य स्वरूप है। देवोंका मुख अग्नि है। अग्नि ही यज्ञ है॥

विष्णुः ॥ तै० शा० १-८-१ ॥

विष्णुः ॥ ऋ० १०-६५-१२ ॥

विष्णोः ॥ तै० शा० २-६-१२ ॥

विष्णो ॥ तै० शा० १-६-२-२ ॥

विष्णुर्गोपाः ॥ ऋ० ३-५५-१० ॥

स्वर्गीय फल व्यापक होनेसे यज्ञका नाम विष्णु है। अग्निका नाम विष्णु है। अग्नि सबका रक्षक है॥

इन्द्रोवै यज्ञो विष्णुर्यज्ञस्तद्यज्ञस्यैवैष आरम्भः ॥

मै० शा० ४-३-७ ॥

यज्ञस्वरूप इन्द्र है और यज्ञका जो आरम्भ है सो ही यह विष्णु यज्ञ है॥

वैष्णव्या ऋचा विष्णुर्वै यज्ञः ॥

मै० शा० ४-६-२ ॥

विष्णु ही यज्ञ है और वैष्णव वेदमंत्र हैं॥

विष्णुर्वै यज्ञो वैष्णवा वनस्पतयः ॥

तै० शा० ६-२-८-७।

वैष्णवोहि यूपः ॥ मै० शा० ३-९-३।

विष्णुर्वै यज्ञो वैष्णवो यजमानः ॥ विष्णु
नैव यज्ञेनात्मानमुभयतः सयुजं कुरुते ॥

कपि० शा० ३५-१।

विष्णु ही यज्ञ है, वैष्णव ही कुश, पलाश आदि समिध है। यज्ञमण्डप के स्तम्भ ही वैष्णव हैं। यज्ञ ही विष्णु है, और यज्ञकर्त्ता यजमान हो वैष्णव है। दृष्टादृष्ट व्यापक फल यज्ञके द्वारा यजमान आपही दोनों लोकके सायुज्य सम्बन्ध जुड जाता है ॥

यजमानो वै यज्ञपतिः ॥ मै० शा० १-७-६॥

यज्ञका स्वामी यजमान है ॥

अग्नि हि देवाँ अमृतो दुवस्यत्यथा धर्माणि सनतान दुदुषत् ॥ ऋ० ३-३-१॥

अमर अग्नि हविके द्वारा देवताओंका सत्कार करता है, इस लिये सनातन यज्ञों को कोई भी द्विजाति दूषित नहीं कर सकता ॥

धर्माणि ॥ ऋ० ९-६४-१॥

कर्मोंको धारण करते हो ॥

त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे कर्माणि चक्रुः ॥ ऋ० ९-९६-११ ॥

हे सोम हमारे पूर्वजोंने तेरी सहायतासे ही अग्निष्ठोमादि यज्ञ कर्म किये थे ॥

श्रुष्टीदेव प्रथमो यज्ञियो भुवः ॥
ऋ० ८-२३-१८ ॥

हे अग्निदेव, तुम देवोंमें मुख्य हो, उस समयमें ही यज्ञके योग्य हो गये थे ॥

अग्नि वैं देवानां प्रथमं ॥ ऐ० ब्रा० २०-१ ॥

अग्निं देवतानां प्रथमं यजेत् ॥
कपि० शा० ४८-१६ ॥

सब देवताओंमें अग्नि पहिला देव है। सब देवताओंके पहिले अग्निका यजन करे ॥

इदमित्था रौद्रं गूर्तवचा ब्रह्मक्रत्वा शच्यामन्तराजौ ॥ क्राणा यदस्य पितरामंहनेष्ठाः पर्षत्पक्थे अहन्ना सप्तहोतॄन् ॥ सयद्दानायदभ्यायवन्वंच्यवानः सूदैरमिमीत वेदिम् ॥ तूर्वयाणो गूर्तवचस्तमः क्षोदोनरेत इतऊतिसिञ्चत् ॥
ऋ० १०-६१-१-२ ॥

श्राद्ध देव मनुने अपने पुत्रोंको सम्पत्तिका भाग बाँट दिया उसके अनन्तर मनुका सबसे छोटा पुत्र ब्रह्मचर्य्य आश्रम समाप्त कर गुरुकी आज्ञा लेकर पिताके पास आया। उस नाभानेदिष्ठ क्षत्रिय ब्रह्मचारीने पितासे कहा मेरा भाग मेरेको दो। श्राद्धदेव मनुने कहा हे पुत्र मैंने तो तेरे ज्येष्ठ भ्राताओंको बाँट दिया। मेरे पास अब धन नहीं है। परन्तु तेरेको एक उपाय बताता हूँ जिससे धन मिले। अंगिरा नामके ऋषिगण छठे दिनमें होने वाले यज्ञ कर्मके स्तोत्रको भूल गये हैं। वह रुद्रस्तवन तू जानता है जिसके जाने विना यज्ञोंके करने पर भी अङ्गिरागण स्वर्ग नहीं जाते। इसलिये तू जा कर कर्मको पूर्ण कर। जिस कर्मकी पूर्णतासे ऋषिगण स्वर्गमें जाते समय तेरेको धन देवेंगे। पिताकी उत्तम वात सुनकर नाभानेदिष्ठ अङ्गिराओंके यज्ञमें जाकर रुद्र स्तुति करने लगा। छठे दिनके कर्मको सात होताओंको कहकर समाप्त किया। वे यज्ञ साधक ऋषि उसको यज्ञका अवशेष गौ-वकरी-भेड-घोडा-मनुष्य-दासको, और सुवर्ण अन्नादिको देकर स्वर्ग गये। उपासकोंको अभिलाषित धन देनेके लिये, और अग्निहोत्रको त्यागनेवाले अवैदिक शत्रुओंका नाश करनेके लिये दिव्यअस्त्र आदिको धारण किये हुए रुद्र प्रगट होकर यज्ञवेदी पर वैठ गया। जैसे मेघ जल वरसाता है, तैसेही रुद्र अपनी महिमाको सर्वत्रसे फैलाता हुआ, महा गम्भीर वाणीसे वोलता भया। हे ब्रह्मचारी, यज्ञ अवशेष धन मेरा है। तू मेरे धनको क्यों लेता है। नाभानेदिष्ठने कहा, हे दिव्य पुरुष, यह धन

मेरेको अङ्गिरा नामके ऋषि समूहने दिया है, वे स्वर्ग चले गये। रुद्रने कहा, हे नाभानेदिष्ट यदि तेरी इच्छा है तो मेरेको यज्ञका भाग दे कर फिर तू मेरी कृपासे यज्ञ धनको ग्रहण करने योग्य होगा। रुद्रके वचनको सुनकर नाभानेदिष्टने मन्थिग्रहसे हवन करके रुद्रको प्रसन्न किया, उसके पीछे रुद्रने सब यज्ञधन नाभानेदिष्टको दिया। यह कथा तै० शा० ३-१-९॥ ४-५-६॥ और ऐ० ब्रा० २२-१० में है॥

यह रुद्र वही है जिसने कहा था, हे प्रजापते आपके सारसे मेरा सूर्यमंडल कूर्म देह उत्पन्न हुआ है, मैं तो इस देहकी उत्पत्तिके पहिलेसे इस स्थानमें विद्यमान था, मेरा जन्म नहीं है। जैसे धर्मसे, सारसे, चमससे, शिरसे, हसनेसे—तीनों अग्निके सारसे इत्यादि ये सब कथायें कल्पके भेदसे भिन्न २ हैं किन्तु रुद्र एक है॥

यच्छतरुद्रियं जुहोतिभागधेयेनैवैनं शमयति अङ्गिरसो वै स्वर्गलोकं यन्त॥

कपि० शा० ३१-२१॥

जिस शतरुद्रियसे हवन करता है उस शतरुद्रिय युक्त हविके द्वारा ही इस रुद्रको प्रसन्न करता है, अङ्गिरस भी रुद्रको प्रसन्न करके स्वर्ग लोकको गये॥

अङ्गिरसो वै स्वर्गलोकं यन्तस्ते मेखलाः संन्यकिरन्॥ ततःशरउदतिष्ठत्॥ यच्छरमयी मेखला भवति॥ कपि० शा० ३६-१॥

महर्षि अङ्गिरागण समूहने स्वर्गलोक को जाते स[मय]
अपनी मेखलाओं को भूमि पर बिखेर दिया। उन बिखरी
मेखलाओं से मूँज उत्पन्न हुई—उस मूँजकी मेखलाको उपनय[न]
के समय ब्रह्मचारी बटुक धारण करता है॥

स्वर्गो वै लोको नाकः॥ श० ब्रा० ६-३-३-१४॥

दुःखरहित ही स्वर्गलोकरूप सुख है सोही नाक है॥

सुखं वै कम्॥ गो० ब्रा० उ० ६-३॥

सुखही कं है। रुद्रात्मक पुरुषसूक्तका जो मनुष्य प[वित्र]
हो कर नित्य पाठ करे तो, सब पापोंसे छूट कर अन्तकाल[में]
सूर्यस्थित भर्गको प्राप्त होता है॥ १६॥

प्रजा ह तिस्त्ररिति मंत्रस्य जमदग्निर्ऋषिः॥
बृहती छन्दः॥ अग्नि वायु सूर्यदेवताः॥ प्रजा-
ह तिस्रो अत्यायमीयुर्न्यन्या अर्कमभितो वि-
विश्रे॥ बृहद्धतस्थौ भुवनेष्वन्तः प्रवमानो ह-
रित आविवेश॥१॥ ऋ० ८-९०-१४॥

प्रलय पूर्व सृष्टिके, जो कर्म भोगने से अवशेष रहे, वे ही
संस्कार प्रलयके पीछे, कर्त्ताओंको फलरूप से सृष्टिके आकार
में सन्मुख हुए। अपने २ कर्मों के सहित प्रजा प्रगट हुई। उन
प्रजाओंमें से एक भाग आस्तिक, और तीन भाग नास्तिक
हुए। नास्तिक प्रजा, पशु, पक्षी, मत्स्य, सर्प, वृक्ष, अन्नादि

बनी—और आस्तिक प्रजाके भी तीन भेद हुए। एक भागने सर्वत्र से अग्निका पूजनरूप अग्निहोत्र आरंभ कर दिया, दूसरे भागने अणिमा आदि सिद्धियोंके लिये सर्वदिशाव्यापी वायु की अग्निहोत्र के सहित उपासनामें प्रवृत हुए, और तीसरे भागकी प्रजा ब्रह्माण्डके बीचमें स्थित महा तेजोराशी सूर्यकी, अग्निहोत्र उपासना के सहित अभेदरूप ज्ञानसे अपने चेतन तथा सूर्यवर्ती चेतन को एक रूपसे ध्यान करने लगी। जैसें पुष्पको सुगंधी—वायुसे दूर देशमें जाती है। तैसेही वैदिक पुण्य कर्म उन अग्नि आदि देवताओं के द्वारा स्वर्गमें कर्त्ताके लिये सुखरूप से प्राप्त होता है। जिन्होंने वैदिक मार्गका त्याग किया वे पराभव दुःखमें गिरे, और जिन्होंने नहीं त्यागा वे महर्षि देवतारूपसे स्वर्गमें स्थित हैं। प्राणि जिस शरीरमें सोता है, उसी देहमें जगता है। जैसे ही जिस जातिके संस्कारसे प्रलय में मरता है फिर उसी संस्कारके सहित प्रलयसे जागकर सृष्टिके आकारमें आता है। इसलिये शुभ कर्म करना चाहिये॥

न ते त इन्द्राभ्यस्मदृष्वायुक्ता सो अब्रह्मतायदसन ॥ ऋ० ५-३३-३ ॥

हे दर्शनीय इन्द्र, जो मनुष्य आपके उपासकों से भिन्न है, जो स्वर्गीय सुखको नहीं चाहता है, सोही आपके साथ नहीं रहता है॥

इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृयन्ति ॥ ऋ० ८-२-१८ ॥

यज्ञ करने वाले यजमान की देवता इच्छा करते हैं, यज्ञादि कर्म रहित सोया है, उसको नहीं चाहते हैं ॥

अपानक्षा सो बधिरा अहासत ऋतस्य-पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः ॥ ऋ० ९-७३-६ ॥

पारलौकिक श्रद्धाहीन अन्धा अशुभदर्शी देवस्तुतिरहित, और पापी नर स्वर्गगामी सूर्यकी किरणोंका त्याग करता है, अर्थात् त्रिलोकवर्ती सूर्यके प्रकाशसे पर अलोकात्मक दिव्य स्वर्गमें जाता है। इसलिये सूर्यके प्रकाशका त्याग कहा है। पापी मनुष्य सत्य—वैदिक मार्गसे नहीं तरता है, वह वारंवार जन्म मृत्युके मुखमें गिरता है। पुण्यात्मा सूर्यकी किरणों द्वारा स्वर्गमें जाता है ॥१॥

रेभऋषि जगती छन्द इन्द्र देवता ॥ य इन्द्र सस्त्यव्रतोऽनुष्वावमदेवयुः ॥ स्वैः ष एवैर्मुमुरत्पोष्यंरयिं सनुतर्धेहितं ततः ॥ २ ॥

ऋ० ८-८६-३ ॥

देवोंको नहीं चाहनेवाला तथा यज्ञरहित जो मनुष्य देवोंके दिये हुए अन्नको देवोंके लिये वषट्कार, स्वाहा, स्वधा रूपसे नहीं देता है, किन्तु स्वयं उस अन्नको आप ही खाता है, वह परलोक धर्मसे सोया हुआ है, सो चोर मोहवश होकर नींद लेता है। वह यज्ञरहित पापी अपने अवैदिक कर्मसे परलोकमें पोषण अन्नरूप सुखका नाश करता है, अर्थात् काक, गीध, कुत्ता

आदिकी योनिमें गिरता है। हे इन्द्र, तुम कर्महीनको नरकमें गिराओ—यदि वह पापी जीवित रहेगा तो भोले मनुष्योंको वैदिक धर्मसे हटाकर नास्तिक बना देगा।

यज्ञं सुकृतस्ययोनौ ॥ ऋ० ३-२९-८ ॥

मैं होता उत्तम यज्ञको करता हूँ, यजमानको स्वर्गमें स्थापन करो॥

येदेवासो अभवतासुकृत्या ॥ ऋ० ५-३५-८ ॥

जे सुधन्वाके तीनों पुत्र उत्तम यज्ञ कर्मके द्वारा मनुष्योंसे देवता बन गये ॥

तृप्तायात पथिभिर्देवयानैः ॥ ऋ० ७-३८-८ ॥

हे प्रजापतिकी विभूती रूप देवताओं सोममयी हविसे तृप्त होकर देवयान मार्गसे जाओ ॥

युवोरित्थाधिसद्म स्वपश्याम हिरण्ययम् ॥

ऋ० १-१-३९-२ ॥

यज्ञशालामें तुम सब देवताओंके दिव्य प्रकाशमय स्वरूपोंका हम दर्शन करेंगे ॥२॥

बृहदुक्थ ऋषि त्रिष्टुप्छन्द इन्द्रदेवता ॥

आरोदसी अपृणादोत मध्यं पंचदेवाँ ऋतुशः सप्तसप्त॥ चतुस्त्रिंशता पुरुधा विचेष्टे सरूपेण ज्योतिषा विव्रतेन ॥३॥ ऋ० १०-५५-३ ॥

सहस्र किरणरूप नेत्रवाले इन्द्रने अपने तेजसे भूमि, आकाश द्यौको पूर्ण किया। इन्द्र प्रत्येक समय पर, पांच जातियोंके देवता और सात मरुद्गण, सात ऋतु, सात किरण, सात अग्निज्वाला आदिको अपने विविध प्रकाशोंके द्वारा धारण करता है। वह इन्द्र सब कार्य एक ही भावसे चलाता है। इस सवन्धमें, आठ वसु, ग्यारा रुद्र, बारह आदित्य हैं, और भूमि, द्यौ, तथा सूर्यमण्डल रूप प्रजापति चौंतीस सब देवता हैं॥

देवमनुष्याणां गन्धर्वाप्सरसां सर्पाणांच पितृणांचैतेषां वा एतत्पंच जनानां ॥

ऐ० ब्रा० ३-३१॥

देवा वै सर्पाः ॥ तै० ब्रा० २-२-६-२॥

देवता मनुपुत्रही मनुष्य विश्वे देवता हैं। सर्प—देवयोनि। सर्प दैत्य, राक्षस, ये तीनोंकी सर्प संज्ञा है। पितर, गन्धर्व अप्सरा, ये देवोंकी पांच जाति हैं। दैत्य, राक्षस, यक्ष, येही देवता सर्प हैं॥

त्रयस्त्रिंशद्वै देवताः सोमपास्त्रयस्त्रिंशद-सोमपा अष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशा-दित्या वषट्कारश्च प्रजापतिश्च ॥

का० श० २६-१॥

तेतीस ही देवता सोमपान करने वाले हैं, और तेतीसही स्तुति से प्रसन्न होने वाले असोमपा हैं। आठ वसु, ग्यारा

रुद्र, बारा आदित्य, एक वषट्कार, और एक प्रजापति है। ये ही सोमपा हैं ॥

प्राणो वै वषट्कारः॥ श० ब्रा० ४-२-१-२९॥

वषट्कार एष प्रजापतिः ॥

मै० शा० १-४-११ ॥

एक अग्निरूप है और दूसरा वायुरूप है। ये सब तेतीस देव हैं, और चौंतीसवाँ सूर्य है ॥

संत्रीपवित्रा विततानि ॥

ऋ० ९-९७-५५ ॥

अग्नि, वायु, सूर्य ये तीन देव व्यापक अति पवित्र हैं ॥

अग्निर्वायुरादित्य एतानि ह तानि देवानां हृदयानि ॥ श० ब्रा० ९-१-१-२३ ॥

आठ वसु नवें अग्निरूप हैं, ग्यारा रुद्र, बारहवें वायु के रूप हैं, बारह मास, अभिमानी आदित्य देवता तेरहवें सूर्य के रूप हैं। इन सब देवताओंका हृदय अग्नि, वायु, सूर्य ॥

अग्नये स्वाहा वायवे स्वाहा सूर्याय स्वाहा ॥ तै० शा० ७-१-२०-१ ॥

अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा ॥

वायुके दो भेद–वायु और सोम है, इसलिये ही प्राण डेढ़ देवता है, एक वायु, और आधा सोम है। अग्नितत्त्व, भूमि वायु, आकाश, सूर्य, द्यौ–चन्द्रमा–नक्षत्र ये आठ वसु हैं, पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच प्राण, ग्यारवाँ मन, येही ग्यारा रुद्र हैं, और अन्तरिक्षमें वायु के ग्यारह देवस्वरूप रुद्र हैं। बारह महिने के बारह अभिमानी देवता हैं। यह कथा बृहदारण्यक उपनिषद् ३–९–३–८ में है ॥

अग्निर्वसुभिः सोमोरुद्रैः इन्द्रोमरुद्भिः वरुण आदित्यैः बृहस्पति र्विश्वेदेवैः ॥

गो० ब्रा० उ० २–२ ॥

नवमा अग्नि वसुओंके सहित, सोम रुद्रों सहित, इन्द्र मरुतों के संग, वरुण आदित्यों के साथ, बृहस्पति मनुके पुत्र मनुष्य–विश्वेदेवोंसे युक्त है ॥ ३ ॥

वसुकर्णऋषि, जगती छन्द ॥ विश्वेदेव देवता ॥ अग्निरिन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमावायुः पूषा सरस्वती सजोषसः ॥ आदित्या विष्णुर्मरुतः स्वर्बृहत्सोमो रुद्रो अदिति र्ब्रह्मणस्पतिः ॥४॥

ऋ० १०–६५–१ ॥

ये सब देव अपनी महिमा से बहुत से रूपधारी हैं ॥

अग्निर्देवता वातोदेवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवतादित्या

देवता मरुतो देवता विश्वेदेवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता ॥

मा० श० १४-२० ॥

अग्नि, वायु, सूर्य, सोम, इन चारोंकी अवशेष देवता विभूती हैं ॥

व्युषि सविता भवसि ॥ उदेष्यन् विष्णुः ॥ उद्यन्पुरुषः ॥ उदितो बृहस्पतिः । अभिप्रयन्मघवन् ॥ इन्द्रोवैकुण्ठो माध्यन्दिने ॥ भगोऽपराह्ने ॥ उग्रो देवा लोहितायन् ॥ अस्तमिते यमोभवसि ॥ अङ्नसु सोमोराजा निशायां पितृराज स्वप्ने मनुष्यान्प्रविशासि पयसा पशून् ॥ विरात्रे भवोभवस्य परात्रेऽङ्गिरा अग्निहोत्रवेलायां भृगुः ॥ तस्य तदेतदेव मण्डलमूधः ॥ तस्यैतौ स्तनौ यद्वा कृच प्राणश्च ॥

सामवेदीय जैमिनीयारण्यक ॥ ४-५-१-२-३-४ ॥

हे सूर्य, तू उषाकाल में सविता है, उषा के पीछे श्यामवर्णका प्रकाश ही विष्णु है, श्यामता के पीछे उदय होनेकी तैयारी है सो ही मित्र पुरुष है—उदयके साथ ही मण्डलका सर्वत्र प्रकाश होना ही बृहस्पति । सन्मुख आनेवाला तू मघवा है, मध्याह्न

में तपनेवाला तू अप्रतिहतगतिवाला इन्द्र है, अपराह्णमें तू भग है, अपराह्ण और अस्तकाल के बीचमें उग्र देव है, अस्तके समय तू यम होता है। भोजनके समय तू सोमराजा है, रात्रिमें तू पितृरूप है, प्राणियोंके सोते समयमें तू निद्रारूप से प्रशेष करता है। दूधरूप से तू पशुओं में प्रवेश करता है। अर्द्धरात्रिमें तू भव है। पिछली रात्रि में तू अङ्गिरा है, अग्निहोत्र कालमें तू भृगुऋषि है। उस भर्गका यह सूर्यमण्डल मधुपान करनेका स्थान है, उसके दो स्तन एक प्राण और दूसरा वाणी है। प्राण-रूप प्रणव है, और वाणीरूप गायत्री है, प्रणवके सहित गायत्री जपता है वह मनुष्य सर्व दुःख से छूटकर ब्रह्मको प्राप्त होता है। एक ही सूर्य सर्व देवस्वरूप है ॥ ४ ॥

विश्वामित्रऋषि त्रिष्टुप्छन्दः अग्निदेवता ॥ त्रीणिशता त्रीसहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवान वचासपर्यन् ॥ औक्षन्धृ तैरस्तृणन्बर्हि रस्मा आदिद्धोतारंन्यसादिन्त ॥ ५ ॥

ऋ० ३-९-९ ॥

तीन हजार तीन सौ उनतालीस देवताओंने अग्निका पूजन किया है। उन देवोंने अग्निको घृतधारासे सिञ्चन किया और उस अग्निके लिये कुश बिछादिया है, फिर उसको होता रूपसे यज्ञमें बैठाया है॥

कतमेते त्रयश्च त्रीचशता त्रयश्च त्रीच सहस्त्रेति ॥ सहोवाच ॥ महिमान एवैषां एते त्रयस्त्रिंशत्त्वेवदेवा इति ॥

शा० ब्रा० ११-६-३-४-५ ॥

वे देव कितने हैं ? उत्तर दिया, उन चौंतीस देवों की महिमा तीन हजार तीनसौ उनतालीस देवता हैं ॥

त्रयो वावलोकाः मनुष्यलोकः पितृलोको देवलोक इति ॥ शा० ब्र १५-४-३-२४ ॥

यज्ञो वै कर्म ॥ शा० ब्रा० १-१-२-१ ॥

विद्या वै धिषणां ॥ तै० ब्रा० ३-२-२-२ ॥

अन्तो वै धिषणा ॥ ऐ० ब्रा० ५-२ ॥

अन्तो वै क्षयः ॥ शा० ब्रा० ८-१ ॥

देवलोको वै लोकानां श्रेष्ठस्तस्माद्विद्यां प्रशंसन्ति ॥ शा० ब्रा० १४-४-३-२४ ॥

देव, पितर, मनुष्य ये तीनलोक हैं। यज्ञ ही कर्म है। विद्या ही धिषणा है, अन्त ही धिषणा है; अन्त ही सूर्यस्थान है। सबलोकमें देवलोक उत्तम है, इसलिये ही विद्याकी प्रशंसा करते हैं ॥

एको हि प्रजापतिस्त्रयो ग्रहीतव्यास्त्रय इमे लोकाः ॥ का० शा० ३३-८॥

जो एक प्रजापति अपने स्थूल विराट् देह से ये तीन-लोक रूप हुआ, और सूक्ष्म से अग्नि ःवायु, सूर्य ये तीन देवता हुआ, सो ही प्रजापति सर्वत्र जानने योग्य है ॥

आदित्यो देवानां चक्षुश्चन्द्रमावै पितृणां चक्षुः॥ मै० शा० ४-२-१ ॥

अग्नेर्वै चक्षुषा मनुष्या विपश्यन्ति ॥ यज्ञस्य देवाः ॥ तै० शा० २-२-९-३ ॥

द्युलोकवासी देवताओंका प्रकाश सूर्य है, पितृलोकवासी पितरोंका प्रकाश चन्द्रमा है। मनुष्य अग्निके द्वारा देखते हैं। और देवता सूर्यके प्रकाशसे देखते हैं ॥

देवलोको वा इन्द्रः ॥ पितृलोको यमः ॥ शां० ब्रा० १६-८ ॥

देवलोकं पितृलोकं जीवलोकं ॥

शां० ब्रा० २०-९ ॥

मृत्युर्वै यमः ॥ मै० शा० २-५-६ ॥

यमः पितृणां राजा ॥ तै० शा० २-६-६-५ ॥

देवलोक इन्द्रलोक है, पितृलोक ही: यमलोक है। एक देवलोक, दूसरा पितृलोक, तीसरा मनुष्यलोक है। मृत्यु ही यम है। यम पितरोंका राजा है ॥

तिस्रोद्यावः सवितुर्द्वा उपस्थाँ एका यम-
स्यभुवने विराषट् ॥ ऋ० १-३५-६ ॥

द्युलोकादि तीनलोक हैं, इनमें द्युलोक और भूलोक ये दो लोक सूर्यके पास हैं, एक अन्तरिक्ष यमराजके घरमें जानेका मार्ग है ॥

त्रीणि वा आदित्यस्य ते गांसिवसन्ता प्रातर्ग्रीष्मेमध्यन्दिनेशरद्यपराह्णे ॥
तै० ब्रा० २-१-४-२ ॥

वसन्तो ग्रीष्मो वर्षाः ते देवा ऋतवः ॥
शरद्धेमन्तशिशिरस्ते पितरः ॥
श० ब्रा० २-१-३-१ ॥

सूर्यके तीन प्रकाश हैं, वसन्त प्रातःकाल। ग्रीष्म मध्याह्न। शरद तीसरा प्रहर है। वसन्त ग्रीष्म, वर्षा ये तीन ऋतु देवताओंकी हैं, और शरद, हेमन्त, शिशिर ये तीन ऋतु पितरोंकी हैं॥

सयःसविष्णुर्यज्ञः स॥ सयः सयज्ञोऽसौ स आदित्यः ॥ श० ब्रा० १४-१-१-६ ॥

जो भूमि देवता अग्नि गार्हपत्य है, सो ही विष्णु है, सो ही गार्हपत्य अन्तरिक्षमें वायु है, सो ही दक्षिणाग्नि रूप यज्ञ है।

जो दक्षिणाग्नि है सो ही आहवनीय अग्नि है, सो ही यज्ञ है, सो ही यह सूर्य है ॥

अथेमं विष्णुं यज्ञं त्रधा व्यभजन्त ॥ वसवः प्रातःसवनं रुद्रामाध्यन्दिनंसवनमादित्या स्तृतीयसवनं ॥

इस त्रैलोक सूर्य यज्ञके तीन विभाग किये, चैत्र वैशाखरूप प्रातसवनमें वसुदेवता सूर्यकी किरणों द्वारा मधु पीते हैं ॥ ज्येष्ठ आषाढमय माध्यंदिन सवनमें रुद्र मधुपान करते हैं। और अपराह्नकाल तीसरे प्रहर अश्विन–कार्त्तिक रूप सायंकाल सवनमें आदित्य देवता सूर्यकी रश्मियों द्वारा मधु–अमृत पान करते हैं ॥

अग्निं चैव विष्णुंच ॥ तै० शा० २–२–९–३ ॥

अग्निं चैव सूर्यंच ॥ तै० शा० २–३–८–१ ॥

विष्णु नाम सूर्यका है॥

अग्निनावै देवतया विष्णुनयज्ञेन देवा असुरान्प्रक्षीय वज्रेण ॥ मै० शा० १–६–६ ॥

गार्हपत्य अग्निदेवताके द्वारा और आहवनीय सूर्य यज्ञके द्वारा देवोंने वज्रसे असुरोंको अति दुःख दिया ॥

विष्णोरेवनाभावग्निं चिनुते ॥ का० शा० २०–७ ॥

यज्ञकी वेदी—कुण्डके बीचमें अग्निको होता स्थापन करता है॥

त्रीणिहवींषि भवन्ति त्रय इमे लोकाः ॥ इमानेवलोकानाप्नोति ॥ त्रिर्विराट्व्यक्रमत ॥ पशुषुतृतीयमप्सु तृतीयमुष्मिन्नादित्ये तृतीयं ॥ त्रिर्वै विराट् व्यक्रमत ॥ गार्हपत्यमाहवनीयं मध्याधिदेवनं ॥ कपि० शा० ७–३–४ ॥

ये विराट् कार्यमय तीन लोक ही भोग्यरूप हवि हैं, इन भोग्यरूप तीनों लोकोंको—हिरण्यगर्भ क्रियाभोक्तारूपसे अग्नि वायु, सूर्यके रूपमें प्राप्त हुआ है। अग्निरूप विराट्ने तीन रूपसे आक्रमण किया, वायु सूर्यकी अपेक्षासे तीसरा गार्हपत्य भूमिमें प्रविष्ट हुआ, सूर्य अग्निकी अपेक्षासे तीसरा दक्षिणाग्नि अन्तरिक्षमें स्थित हुआ, अग्नि वायुकी अपेक्षासे तीसरा द्यौमें आहवनीय रूपसे विराजमान हुआ। यहाँ पर आदित्य नाम द्यौका है। जिस अमृत प्राणरूप विराट्ने तीन रूपसे आक्रमण किया सो ही गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, और आहवनीय है॥

असौवा आदित्य आहवनीयः॥ मै० शा० ४–५–५॥

यह सूर्य ही आहवनीय अग्नि है॥

दिवि यज्ञोऽन्तरिक्षे पृथिव्यां ॥

कपि० शा० ३५–८ ॥

भूमिमें अग्निहोत्ररूप यज्ञ है, आकाशमें वायुवृष्टि रूप यज्ञ है, द्यौमें सूर्य जलधारक, प्रकाशक यज्ञ है॥

यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथः ॥ ऋ० १-८३-५ ॥

यज्ञैरथर्वा प्रथमो विधारयद्देवाः ॥

ऋ० १०-९२-१० ॥

यस्यद्वारा मनुष्पिता देवेषुधियआनजे॥

ऋ० ८-५२-१ ॥

यज्ञोंके द्वारा प्रथम धर्म मार्ग—अथर्वा प्रजापतिने किया। यज्ञोंके द्वारा पहिले अथर्वाने देवताओंको संतुष्ट किया। जिस इन्द्रकी प्राप्तिका साधन कर्म है, उस यज्ञके द्वारा मनुपिताने देवोंके मध्यमें इन्द्रको प्राप्त किया॥

प्रथमं मातारिश्वा देवास्ततक्षुर्मनवेयजत्रम् ॥

ऋ० १०-४६-९ ॥

पहिले (मातरिश्वा) अथर्वाने देवताओंको संतुष्ट करनेवाले अपने पुत्र मनुके लिये यज्ञ रचा, फिर मनुने अपनी प्रजामें प्रवृत्त किया॥

नित्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनयशश्वते ॥

ऋग० १-३६-१९ ॥

हे अग्ने, आपको विविध रूपसे मनुष्य जातिके लिये मनु पिताने स्थापित किया सो हि उत्तम है॥

तद्धैतद्ब्रह्मा प्रजापतय उवाच प्रजापतिर्मनवे मनुः प्रजाभ्यः ॥ तां० आर० ३-४-११ ॥

उस वैदिक कर्म, उपासना, ज्ञानको ब्रह्माने विराट् अभिमानी अथर्वाको कहा, अथर्वा प्रजापतिने अपने पुत्र मनुको और मनुने अपनी प्रजाको उपदेश किया ॥

यद्वैकिञ्च मनुरवदत्तद्भेषजं ॥

तै० शा० २-२-१०-२ ॥

जो कुछ मनुने वर्णाश्रमका धर्म कहा है सो सवही संसार सागर रूप रोगसे मुक्त होनेके लिये औषध है ॥४॥

अङ्गिरापुत्रा कृष्ण ऋषि त्रिष्टुप्छन्द, इन्द्र देवता ॥

पृथक् प्रायन् पथमा देवहुतयोऽकृण्वत श्रवस्यादुष्टरा ॥ नयेशे कुर्यज्ञियां नावमारुहमीर्मैवतेन्यविशन्तके पयः ॥५॥

ऋ० १०-४४-६ ॥

जे मनुष्य प्राचीन समयसे युक्त यज्ञमें देवोंको वषट्कार, स्वाहाकारके द्वारा अवाहन करते थे उन पुरुषोंने महाकार्य करके स्वयं सद्गति पाई है, तथा इस सनातन यज्ञमयी नौका पर जे नहीं चढसके, वे अशुभकर्मी, देव, पितर, ऋषियोंके ऋणी हैं, और नीच अवस्थारूप योनियोंमें जन्ममरणमय गोते खा रहे हैं ॥

जनायदग्निमयजन्त पंच ॥

ऋ० १०-४५-६ ॥

नमस्कारके सहित पाक यज्ञसे और भीलराजाको उत्सा-हित करके वर्षाकी इच्छासे ब्राह्मण यज्ञ करते हैं। इन पाँचोंने अग्निका पूजन किया ॥

श्रियेमार्यासो अञ्जींरकृण्वत सुमसतं नपूर्वी रतिक्षपः ॥

ऋ० १०-७७-२ ॥

मरुद्गण पहिले मनुष्य थे फिर यज्ञरूप पुण्यके द्वारा रुद्र कृपासे देवता वन गये ॥

प्रदैवोदासोअग्निर्देवाँ अच्छानमज्मना॥

अनुमातरं पृथिवी विवावृते तस्थौ नाकस्यसानवि ॥

ऋ० ८-९२-२ ॥

दिवोदासके द्वारा बुलाया हुआ, अग्नि देवभूमि माताके सन्मुख, देवोंके लिये हव्य लेजाने में प्रवृत्त नहीं हुआ, क्योंकि दिवोदासने अश्रद्धापूर्वक अग्निका आवाहन किया था, इसलिये भूमि पर नहीं आया और सो अग्निदेव स्वर्ग में ही स्थित रहा ॥

कुनखीश्यानदति ॥ श्यावदन्परिवित्ते॥ परिवित्तः परिविविदाने॥ परिविविदानोऽग्रेदिधिषौ ॥ अग्रेदिधिषुर्दिधिषूपतौ ॥ दिधिषूपति-

वीरहणि ॥ वीरहा ब्रह्महणि ॥ ब्रह्महा भ्रूणहनि-भ्रूणहनमेनोनात्येति ॥ कपि० शा० ४७-७ ॥

दुष्टनखवाला, काले दाँतवाला वडा अविवाहिता छोटे भाई का विवाह हुआ, वैश्वदेव स्मार्त अग्निका ग्रहण करता है सो ही परिवेत्ता, औ वडाभाई परिवित्ति है। ज्येष्ठ भाईकी मृत्यु होने पर छोटाभाई सन्तानहीन भाभीमें प्रत्येक ऋतुधर्मके पीछे एक वार गमन करे जवतक पुत्र नहीं होवे, फिर पुत्र होनेके पीछे गमन करे तो दिधिषुपति है। वदिक अनुष्ठान करनेवाले, वेदवेत्ता, स्वधर्मपरायण तपस्वी, प्रजापालक राजा इनकी जो हत्या करे सो ही वीर ब्रह्महत्या करनेवाला है ॥ राजाके गर्भस्थित वालकको और, वेदवेत्ता ब्रह्मणके गर्भस्थित वालक को मारे सो ही भ्रूण हत्यारा है। इनका श्राद्ध और यज्ञमें निषेध है। अङ्गहीन, अधिकाङ्ग, दुर्गुणी, यजमान, द्वेषी पंचमहापापी इनका भी त्याग करे, यदि मोहवश श्राद्धमें निमंत्रण करेगा तो, पितर नरकमें गिरेंगे, और यज्ञका फल नाश होगा ॥

ये यजमानस्य सायंच प्रातश्च गृहमागच्छन्ति ॥ यत्कीटावपन्नेन जुहुयादप्रजा अपशुर्यजमानः स्यात् ॥ कपि० शा० ४८-१६ ॥

जे देवता पवित्रता की इच्छावाले यजमानके घरमें सायंकाल और प्रातःकालमें आते हैं फिर वे श्रद्धायुक्त हविको ग्रहण

करके स्वर्गमें चले जाते हैं। घृतादि हविषान्नमें कंकर, कीडे आदि जन्तु होवें तो उन जन्तुयुक्त हविसे होता लोग हवन करते हैं, तो, यजमान पुत्रादि प्रजा और पशु, धनादिसे रहित होता है ॥ ५ ॥

कामगोत्रीय श्रद्धा ऋषि ॥ अनुष्टुप्छन्द॥ श्रद्धादेवता ॥ श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हुयते हविः॥ श्रद्धां भगस्य मूर्धनिवचसावेदयामसि ॥६॥

ऋ० १०-१५१-१ ॥

श्रद्धासे अग्नि जलता है, श्रद्धासे हवियोंकी आहुति दी जाती है, श्रद्धा धनके शिरके ऊपर रहती है, यह सब कथन मैं श्रद्धा देवता, स्पष्ट रूपसे कहती हूँ ॥

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ॥ दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥

मा० शा० १९-३०॥

अग्निहोत्र कर्मसे तपकी वृद्धि होती है, वदिक नियमोंका नाम दीक्षा है, तपसे फलकी प्राप्ती होती है, फलरूप दक्षिणासे, श्रद्धा प्राप्त होती है, उस आस्तिक बुद्धिसे सत्य स्वरूपकी प्राप्ति होती है ॥

तपोदीक्षः ॥

श० ब्रा० ३-४-३-२ ॥

तप ही दिक्षा है ॥

दुग्धेन सायं प्रातरग्निहोत्रं जुहुयात् ॥

शां० ब्रा० ४-१४ ॥

सायंकाल प्रातःकालमें दूधसे अग्निहोत्र करे ॥

तस्मादपत्नीकोऽप्यग्निहोत्रमाहरेत् ॥

ऐ० ब्रा० ७-९ ॥

स्त्रीरहित भी नित्य अग्निहोत्र करे, कभी अग्निका त्याग नहीं करना चाहिये । घृत, यव चावल ही यज्ञमें काम आते हैं ॥

इदमग्नयेच प्रजापतयेच सायं ॥

यह दो मंत्र सायंकाल के समय हवनके हैं ॥

सूर्याय च प्रजापतये च प्रातः ॥

मै० शा० १-८-७ ॥

ये दो मंत्र प्रातः समयके हवनके हैं ॥

ऋतस्य नः पथानयाति विश्वानि दुरिता ॥

ऋ० १०-१३३-६ ॥

हे इन्द्ररूप प्रजापति, यज्ञरूप पुण्यमार्गसे स्वर्ग में ले चलो, हम सब पापों से तर जायँ ॥

अग्नेर्वै धूमोजायते धूमादभ्रमभ्राद्वृष्टिः ॥

श० ब्रा० ५-३-५-१७ ॥

रश्मिभिर्वर्षं ॥ गो० ब्रा० १-३६ ॥

अग्निहोत्रसे धूम, धूमसे बादल, मेघसे जलकी वर्षा होती है । सूर्यकी किरण जलको पीकर फिर मेघद्वारा जल वर्षाती हैं, जिस जलसे अन्न और अन्नसे प्राणि उत्पन्न होता हैं ॥ ६ ॥

अत्रिपुत्री अपाला ऋषि पङ्क्ति छन्द ॥ इन्द्र देवता ॥ असौ य एषिवीरको गृहंगृहं विचाकशत् ॥ इमं जम्भसुतं पिबधानावन्तं करम्भिणमपूयवन्तमक्थिनम् ॥ ७ ॥

ऋ० ८-८०-२ ॥

अपालाने कहा, हे इन्द्र, आप अत्यन्त प्रकाशमान वीर हो। और प्रत्येक घरोंमें असंख्य स्वरूप धारण करके एक कालमें समस्त यज्ञकर्त्ताओंके मनोरथ पूर्ण करने के लिये जाते हो। भूँने हुए जौके सत्तूपुरोडाशादि, तथा, स्तुतिसे युक्त इसी प्रकार दश पवित्र-भेडकी ऊनके द्वारा निचोडा हुआ सोम रसका पान करो। जहाँ पर प्रथम चातुर्वर्ण प्रजा उत्पन्न हुई थी उस स्थान में यव, मुख्य यज्ञ-अन्न उत्पन्न होता था, महाशीत प्रदेश कैलास और खुच्चरनाथ के बीचमें मैंने प्रत्यक्ष यवकी खेतीमें भाद्र कृष्णपक्षमें कच्चे यव देखे। वह आश्विनमें पक जाते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि मूल वैदिक प्रजाका निवास कैलास से पामीर, हिन्दुकुश, काबुल, काश्मीर, कष्टवाड, भद्रवाड, भूलेसा कुल्लु, आदि पर्वतीय और कुरुक्षेत्र सरस्वती-व्यापक देश है ॥ ७ ॥

कक्षीवान पुत्री कुष्टरोगिनी घोषा ऋषि ॥ जगती छन्द ॥ अश्विनीकुमार देवता ॥

इयं वा मह्वेशृणुतं मे अश्विनापुत्रायेव पितरामह्यं शिक्षतम् ॥ अनापिरज्ञा असजात्यामतिः पुरातस्या अभिशस्तेरवस्पृतम् ॥८॥

ऋ० १०-३९-६ ॥

घोषाने स्तुति की हे अश्विनीकुमारो, मैं घोषा तुम दोनों का आवाहन करती हूँ, मेरी वाणी सुनो, जैसे पिता पुत्रको शिक्षा देता है, तैसे ही मेरेको शिशा दो। कुष्ट रोगोके कारणसे मेरा कोई यथार्थ बन्धु नहीं है, मैं यज्ञशून्य हुं, मेरा कुटुम्ब नहीं है, और बुद्धि भी नहीं है। मेरी कोई दुर्गति आनेके पहिले ही उसे दूर करो। इस मंत्रके जपसे कुष्ट आदि रोग नाश होता है॥

पुरुकुत्सानी हि वामदाशद्धव्येभिरिन्द्रा वरुणा नमोभिः ॥ ऋ० ४-४२-९ ॥

हे वरुण, हे इन्द्र, ऋषि द्वारा प्रेरित होने पर पुरुकुत्सकी राणीने, तुम दोनों को हवियों के सहित नमस्कारके द्वारा प्रसन्न किया था ॥

स्त्री हि ब्रह्मा ॥ ऋ० ८-३३-१९ ॥

होता हो स्त्री वन गया। एक राजा शापके कारणसे स्त्री वन गया था, फिर इन्द्रकी कृपासे नर वना ॥

पूर्वीरहं शरदः ॥ ऋ० १-१७९-१ ॥

लोपामुद्राने कहा, हे अगस्त्य, मैं अनेक वर्षोंमें वृद्ध अवस्था लानेवाली हूँ। वेदोंके मंत्रद्रष्टा ऋषियोंके समान ऋषिपुत्री स्त्री, ये भी मंत्रद्रष्टा हैं ॥ ८ ॥

गृत्समद ऋषि अनुष्टुप्छन्द सरस्वती देवता॥ अम्बितमे नदीतमे देवीतमे सरस्वति ॥ अप्रशस्ता इवस्मसिप्रशस्तिमम्ब न स्कृधि ॥९॥

ऋ० २-४१-१६ ॥

हे सरस्वती देवी, तुम माताओं में उत्तम हो, नदियों में अति श्रेष्ठ हो, देवियों में अति उत्तम हो, मैं ऋषि दरिद्र हूँ मेरेको धनवान करो ॥ ९ ॥

भरद्वाज ऋषि गायत्री छन्द सरस्वतीदेवता ॥

उतनः प्रियाप्रियासु सप्तस्वसासुजुष्ट ॥ सरस्वतीस्तोभ्याभूत् ॥१०॥

त्रिषधस्था सप्तधातुः पञ्चजाता वर्धयन्ती ॥ वाजेवाजे हव्याभूत् ॥११॥

ऋ० ६-६१-१०-१२ ॥

सात नदी रूप सात वहिनवाली प्राचीन ऋषियों द्वारा सेवित है, और हमारी अति प्रिय सरस्वती देवी सदा हमारी स्तुति योग्य हो।१०। त्रिलोकव्यापिनी सात नदियोंके सहित, तथा चारों वर्णों और पाँचवें भीलकी सम्पत्ति बढ़ानेवाली,

सरस्वती देवी प्रत्येक संकटमें मनुष्योंके आवाहन करनेयोग्य होती है॥

सरस्वती सप्तथी सिन्धुमाता ॥

ऋ० ७-३६-६ ॥

सात सरस्वती जलोंकी माता हैं॥

अस्य श्रवोनद्यः सप्त बिभ्रति द्यावाक्षामा पृथिवी दर्शतं वपुः ॥

ऋ० १-१०२-२ ॥

इन्द्ररूप सूर्यकी कीर्त्तिको सात किरण सात ऋतु-सात नदियाँ धारण करती हैं, जिन नदियोंके तट पर यज्ञोंके द्वारा यश गाया जाता है, भूमि, द्यौ, और (पृथिवी) अन्तरिक्ष, उस इन्द्रका दर्शनीय रूप धारण करते हैं ॥

सप्त सिन्धून् सप्तलोकान्देवमनुष्य-पितरः

मै० शा० ४-१४-१४ ॥

चार दिशा, और तीन लोक, ये सात लोकोंमें सात २ महानदी हैं, क्रमसे देव, पितर, मनुष्य पीते हैं ॥

त्रिः सप्तनद्यः ॥

ऋ० १-९२-४ ॥

सब इकीस नदियाँ है॥

सप्त सप्त त्रेधा ॥

ऋ० १०-७५-१

द्यौमें सात सूर्य किरण व्यापी जल ही सात सिन्धु हैं, अन्तरिक्षमें सात वायु है, भूमिमें सात अग्नि ज्वाला हैं, इन ज्वालाओंसे सात महानदी प्रगट हुई हैं ॥

सप्त सिन्धून् ॥ ऋ० २-१२-१२ ॥

सूर्यकी सात किरणें ही सात सिन्धु हैं ॥

अन्तरिक्षं सारस्वतेन ॥ ४-२-८-२२ ॥

वायु सातरूपसे अन्तरिक्षमें व्याप्त है ॥

सप्तजिह्वाः ॥ मा० शा० १७-७९ ॥

अग्निको सात ज्वालारूप जिव्हा हैं ॥

पञ्चनद्यः सरस्वतीमपियन्ति सस्रोतसः ॥
सरस्वतीतुपञ्चधासो देशेभवत्सरित् ॥

मा० शा० ३४-११ ॥

चार युग ही एक चौकडी है, ७१ चौकडियोंका एक मनुका राज्य होता है। इस समय वैवस्वत मनुकी २८ अट्ठाइस चौकडी है। पहिली चोकड़ीके त्रेता युगमें ब्रह्माकी आज्ञासे और्व मुनिके कोपरूप वड़वानलको लेकर सरस्वती नदी रूपसे हिमालयके प्लक्षवनके सरोवरमेंसे उत्पन्न होकर कुरुक्षेत्र, गोपवन जयपुर राज्य, पुष्कर आबुके समीप बहती हुई सौराष्ट्र—काठियावाडके समुद्रमें मिल गयी। सरस्वती और समुद्रके संगम पर ही प्रथम ज्योतिर्लिंग रूपसे रुद्र स्थित हुआ, सो ही अति
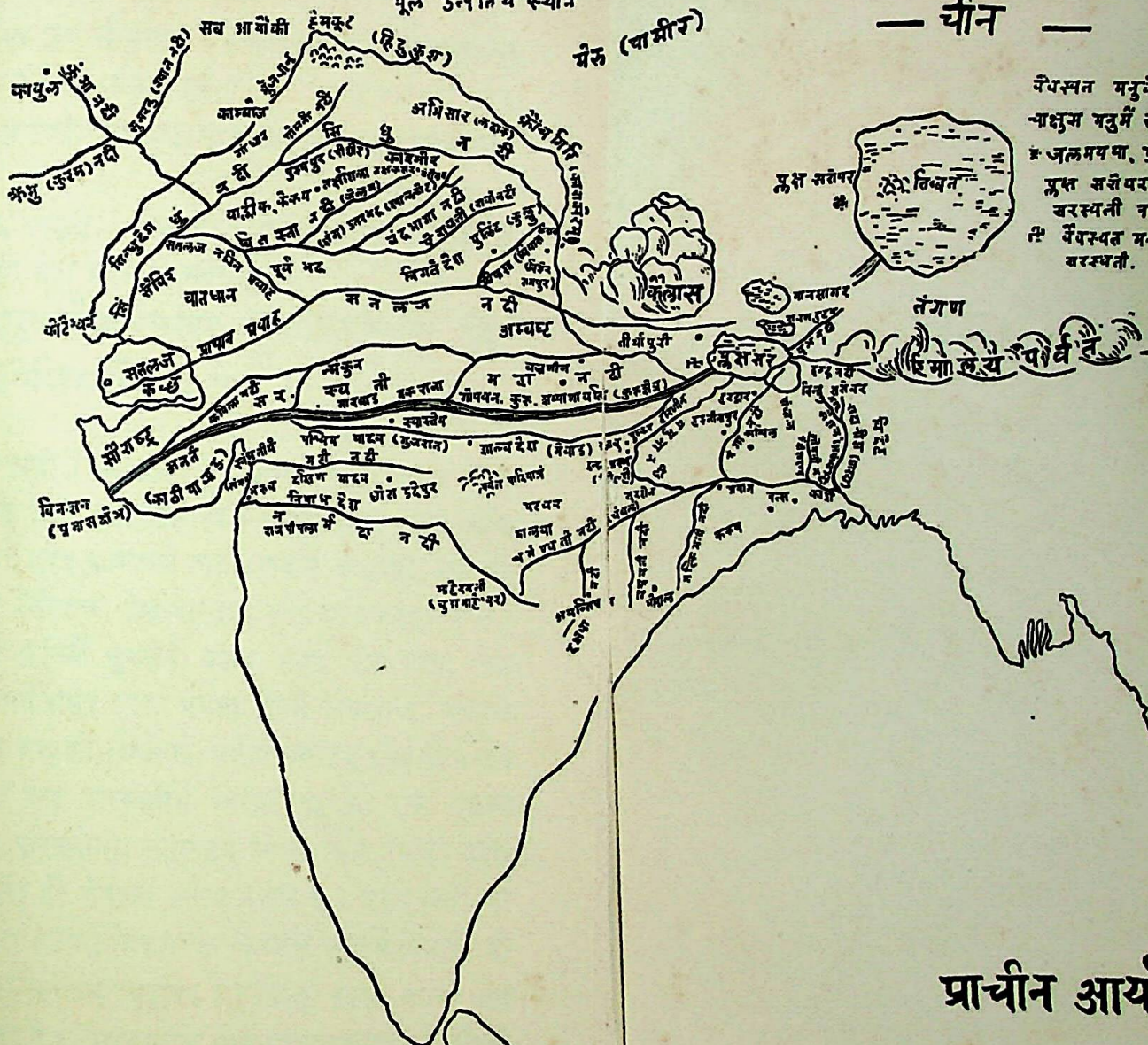
मूल उत्पत्ति स्थान
सब आर्योंकी
हेमकूट
(हिंदुकुश)
मेरु (पामीर)
— चीन —
वैवस्वत मनुके पहिले
चाक्षुस मनुमें सब तीब्बत
जलमय था, इसका नाम
प्लक्ष सरोवर था इसमेंसे
सरस्वती नदी नीकली.
वैवस्वत मन्वन्तरकी
सरस्वती.
काबुल
तिब्बत
कैलास
मानसरोवर
तंगण
हिमालय पर्वत
काश्मीर
सतलज नदी
अम्बष्ठ
तीर्थपुरी
सौराष्ट्र
कच्छ
मालवा
प्राचीन आर्यावर्त
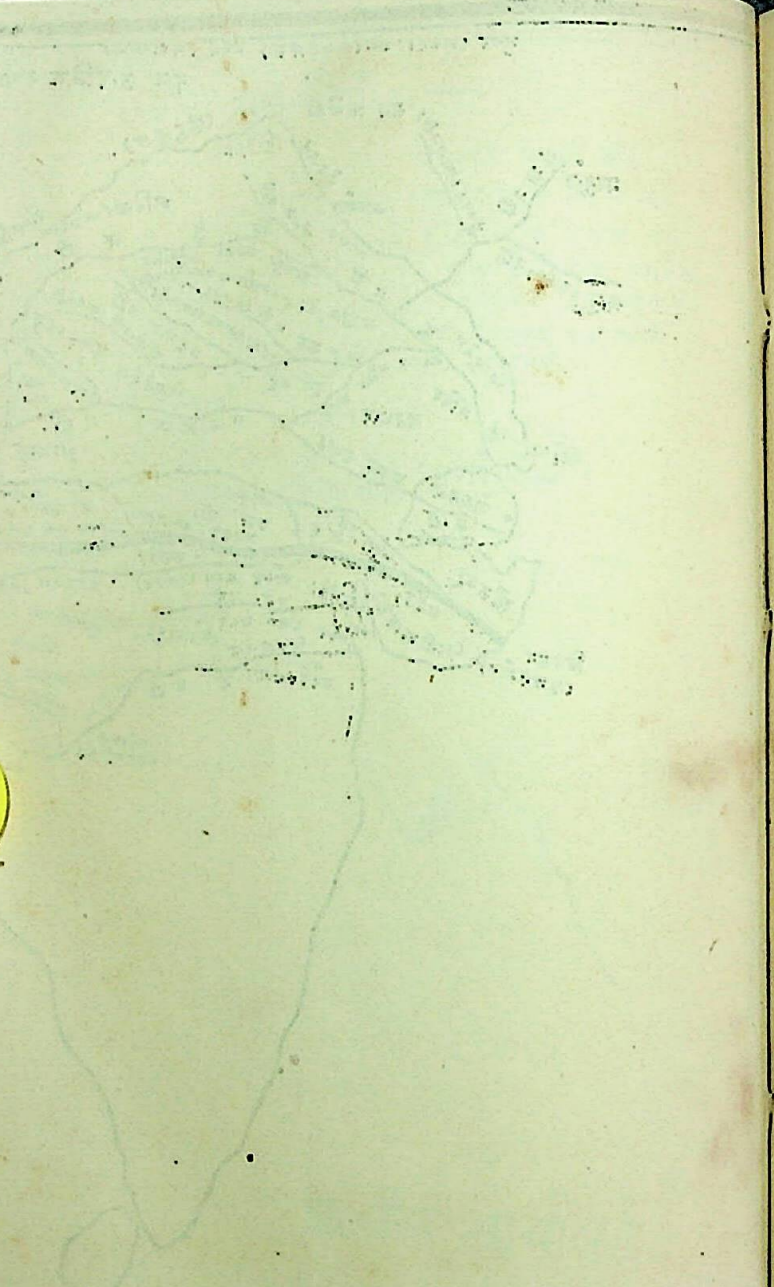
प्राचीन प्रभास क्षेत्र सोमनाथ है। सरस्वतीकी पाँच शाखारूप पाँच भाग रूप देशमें प्रसिद्ध हुईं॥

दृषद्वत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्यां॥

ऋ० ३-२३-४॥

आपया, दृषद्वती, औघमती, अरुणा और सरस्वती ये पाँच समूह ही महा सरस्वती नदी है॥

इयंशुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत्सानु गि-रीणांतविषेभिरूर्मिभिः॥

ऋ० ६-६१-२॥

यह सरस्वती जिस समय हिमालयसे वड़वानलको लेकर समुद्रमें जानेके लिये वडे वेगसे वहने लगी, इसके जल तरंग प्रवाहसे बडे २ पर्वत कमलकी जडके समान उखडकर रेती हो गये। सो ही रेतीवाला देश मारवाड और काठियावाड हुआ। फिर बाईसवें कलिमें कुरुक्षेत्र पर्यन्त समुद्र फैल गया, फिर चौवीसमें त्रेतामें समुद्र हटकर प्रभास क्षेत्रमें चला गया, अब जो सरस्वती नाम मात्रकी कुरुक्षेत्रके समीप पृथोदक् (पेहवा) में है। हिमालयसे जो जल सरस्वतीमें गिरता था सो जल भूकम्प आदि कालके परिवतनसे, सतलजमें मिला, और बिन्दु सरोवरमें मिला, सो ही गंगाका उत्पन्न स्थान है। शतद्रु नदी भी कैलासके राक्षस हृदयसे निकल कर कच्छके समुद्रमें मिलती थी उसके संगम पर कोटेश्वर महादेव है। किन्तु काल गतिसे अब सिन्धुमें मिलती है। सरस्वतीके मूल स्थानका नाम तीर्थपुरी

है। इसके पासही प्लक्ष सरोवर था, यह ज्ञानसी और कैलासके समीप सतलजके इस पार है और जङ्घा स्थान कुरुक्षेत्र पृथोदक है, नाभिस्थान पुष्कर है, और शिरभाग प्रभास क्षेत्र है। ये चारों स्थान मैंने देखे हैं॥

चतुश्चत्वारिंशदाश्वीनानि सरस्वत्या विनशनात्॥ प्लक्षः प्रास्रावणः तावदितः स्वर्गो लोकः॥

तां० ब्रा० २५–१०–१६॥

सरस्वतीके लयस्थान विनशन–प्रभास क्षेत्रसे सरस्वती उत्पत्तिस्थान प्लक्षवन—तिब्बत देशवाला तीर्थापुरी है—सब सरस्वतीका प्रमाण चालीस अश्विन (छयासी हजार योजन) है। इस भूलोकसे अन्तरिक्ष लोक भी छयासी हजार योजन है। यही यमलोक स्वर्ग है॥

यत्र प्राची सरस्वती यत्र सोमेश्वरो देवस्तत्रमाममृतम्॥

ऋ० परिशिष्ट १०–५॥

जहाँ प्राची सरस्वती है, जहाँ पर सोमेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग है उस प्रभास क्षेत्रमें मेरी सायुज्य मुक्ति करे॥

ऋषयो वै सरस्वत्यां सत्रमासत॥

ऐ० ब्रा० २–१९॥

सरस्वतीके तट पर महर्षियोंने यज्ञ किया॥

सरस्वत्या यन्त्येषवै देवयानः पन्थास्तमे-वान्वारोहन्ति ॥ तै० शा० ७-२-१-४ ॥

यह सरस्वती कुरुक्षेत्रमें यज्ञके द्वारा स्वर्गका मार्ग है, इस पवित्र सरस्वतीके तट पर असंख्य ऋषि राजे यज्ञके द्वारा स्वर्ग गये हैं, यही स्वर्ग मार्ग है॥

देवा वै सत्त्रमासत कुरुक्षेत्रे ॥ मै० शा० २-१-४॥

कुरुक्षेत्रमें ही देवताओंने यज्ञका आरम्भ किया था॥

विपाट् छुतुद्रीपयसाजवेते ॥ योनिं देव-कृतं चरन्तीः ॥ ऋ० ३-३३-१-४ ॥

विपाशा (व्यापा) और शतुद्री (शतलज) दोनों नदियें समुद्रकी तरफ जाति हैं। नदी देवताने विश्वामित्रसे कहा, हम दोनों नदियें मिल कर प्रजापति रचित समुद्र रूप घरके सामने जाती हैं। एक कालमें स्वतंत्र शतलज समुद्रमें मिलता था॥

इमं मे गङ्गेयमुने सरस्वति शुतुद्रिस्तोमं सचता परुष्ण्या ॥ असिक्न्या मरुद्वृधे वित-स्तयार्जीकी येशृणुह्या सुषोमया ॥ तृष्टामया प्रथमं यातवेसजुः सुसर्त्वा रसयाश्वेत्यात्यत्वं सिन्धो कुभयागोमतीं क्रुमुमेहत्न्वासरथं याभि-रीयंसे ॥ ऋ० १०-७५-५ ॥ ५-६ ॥

हे गङ्गा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्री (शतलज) आर्जीकीया, विपाशा (वियास) सुषोमा (सोहान) नदी परुष्णी (रावी) असिक्नी (चन्द्रभागा–चिनाब)। मरुद्वृधा नदी मुलेसा देशके नीचे चन्द्रभागामें मिलती है। वितस्ता तक्षक सरोवर भेरीनागसे उत्पन्न हुई है। यवनोंने इसका नाम झेलम् रखा है। सब नदियोंके तुम देवता मेरे स्नानकालकी प्रार्थनाको यथायोग्य विभाग करलो और सुनो। तुष्टामा पहिली नदी सिन्धुमें मिलती है, सुसर्तुं, रसा, श्वेत्या ये तीन नदीयाँ सिन्धुकी पश्चिम सहायक हैं। क्रमु (कुरम्) और गोमती सिन्धुमें मिलती है। इसे इस समय गोमल–गुलम कहते हैं। इस गोमतीके तट पर पहिले वैदिक मूल पुरुषोंकी बहुत बस्ति थी। कुभा (काबुल) नदी सिन्धुमें मिलती है। इस नदीके तीर पर काबुल राजधानी है। यहाँ सब प्रजा द्विजाति वर्ण की थी, सातसौ वर्षसे मुसलमान हो गयी है। मेहत्नू नदी यास्कन्द नगरके नीचे बहती हुई मीठे समुद्र (एरल) में मिलती है, इस समय इस नदीका नाम झर्पसान है॥

त्रिःसप्त सस्त्रानद्यो महीरापः सरस्वती सरयुः सिन्धुः॥

ऋ० १०–६४॥८–९॥

महाजलयुक्त बहनेवाली इक्कीस नदीयाँ हैं, उनमें भी मुख्य समुद्रगामिनी तीन नदी हैं। सरस्वती कैलास के समीप तीर्थापुरीसे निकल कर कुरुक्षेत्र–मारवाड, काठियावाड को प्लावित करती हुई वेरावल के पास प्रभास क्षेत्रस्थ समुद्रमें मिली

है। पुलत्स्य दैत्य-राक्षस हृदय रावण सरोवरसे प्रगट होकर सरयुनदी कच्छके समुद्रमें मिली। इसका नाम हेमवती श्वेतयावरी है। फिर वसिष्ठ के बन्धन को काटने से शुतुद्री नाम पडा सो ही सरयु-सतलज है। और सिन्धु महानदी भी पश्चिम समुद्रमें करांची के पास मिलती है॥

रसा, अनिभा, कुभा, क्रुमु....सिन्धुः.... सरयुः ॥ ऋ० ५-५३-९ ॥

रसा-अनिभा-कुभा-क्रुमु ये सब सिन्धु में मिलती हैं। सरयुका नाम बीचमें आता है, सरसे निकली सो ही सरयुः शतलज है। और जो आज प्रसिद्ध सरयु नदी है वह तो कुमाऊँ अल्मोडासे छपन मिलकी दूरी पर सरमूल नामसे विख्यात है-इस मूलसे चार पाँच मील नीचे मैंने शिवलिंग स्थापन किया वि० सं० १९६२। वैशाखमें उस स्थान पर यात्रीलोग निवास करते हैं। फिर सरयूके उत्पत्ति स्थान पर जाते हैं। यह त्रिशूली पर्वतके नीचे से चार नदी प्रगट हुईं-नन्दा नदी नन्द प्रयागमें, पिण्ड नदी कण प्रयागमें, सरयू-बाघेश्वरमें सो ही मार्कण्डेयका आश्रम है। फिर शारदामें मिलकर साकेत (अयोध्या) में गयी। इसका वर्णन वेदमें नहीं है। और रामगंगा सरयूमें मिल्ती है। दूसरी रामगंगा मुरादाबाद के पास बहती है उसका नाम उत्तानीका है॥

गोमतीमवतिष्ठति ॥ ऋ० ८-२४-३०॥

यह गोमती सिन्धु संगमवाली है, वरुणराजा गोमती के तट पर रहता है। जब भूमि समान थी तब वैदिक प्रजा गोमतीके तीर पर रहती थी ॥

शर्यणावति ॥ ऋ० ८-६-३९ ॥

शर्यणावत्यार्जीके ॥ ऋ० ८-७-२९ ॥

अयं ते शर्यणावति सुषोमायामधिप्रियः ॥
आर्जीकीयेमदिन्तमः ॥ ऋ० ८-६३-११ ॥

कुरुराजाके पहिले कुरुक्षेत्र देशका नाम और कुरुक्षेत्रके सरोवरका नाम भी शर्यणावति था। फिर कुरुक्षेत्र हुआ। यह प्रिय सोम तृणतटवाले शर्यणावति तलाव पर और सोहन नदीके तीरपर ही उद्दालक श्वेतकेतुका निवास था, यह नदी सतलजमें मिलती है। तथा आर्जीकी या नदी—वियासके नामसे तटवर्ती देश भी आर्जीकीया नामसे था। फिर बहुत कालके पीछे त्रिगर्त नाम हुआ, काँगडा जिला, जलन्धर आदि नगर भी त्रिगर्तके अन्तर्गत हैं। वियास नदि पर है इन्द्र, तुमको सोमरस प्रसन्न करता है। इन नदियों पर यज्ञोंसे इन्द्र आदि देवताओंका यजन होता था। शकुन्तला पुत्र भरतने मश्नार प्रांत वर्तमान फिरोजपुर कोटकपूरा आदि नगर हैं। श्वेतयावरी (सतलज)के तट पर हस्थिदान गोदान सुवर्णदान ब्रह्मणोंको दिया था ॥

यआर्जिकीषु कृत्वसु ये मध्येपस्त्यानाम्॥
येवा जनेषु पञ्चसु॥ ऋ० ९-६५-२३॥

जो सोम रस तैयार हुआ है वह आर्जीकीया, (वियास) नदीव्यापी देशात्मक तटोंमें तथा जो कर्मनिष्ठ देश, श्वेतयावरी (सतलज) और सरस्वतीके तीर पर पाँच जातियाँ, ब्राह्मण, क्षत्री वैश्य, शूद्र, और कहार, धीमर, भीलही निषाद है—इन पाँचोंमे, प्रस्तुत हुए हैं, सो हमको इच्छित फल प्रदान करें॥

हविर्वै देवानां सोमः॥ श० ब्रा० ३-५-३-२॥

हवि ही देवताओंका सोम है॥

धानावन्तं करं भिमपूपवन्तं॥
ऋ० ३-५२-१॥

भूँजे जौके सहित दधि मिश्रित सत्तूयुक्त अथवा मालपूआ॥

स्थातुश्चवयस्त्रिवयाः॥
ऋ० २-३१-५॥

स्थावर—यव आदि अन्न—औषधो सोमलता—और पशु, ये तीन अन्न मेरे हैं॥

यवं॥ ऋ० ८-२-३॥

यवं॥ यवेनक्षुधं॥ ऋ० १०-४३॥७-१०॥

यवको खेतीको वर्षा वृद्धि करती है। यवसे भूँख शान्त करते है। वैदिक कालकी प्रजा किसी भी स्थानसे नहीं आई

है, वह तो, गोमती, सिन्धु, सरस्वती आदि नदियोंके तीरवासी थी। यव ही वैदिक प्रजाका मुख्य अन्न था, फिर यवसे गेहूं बनाया गया॥११॥

देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च-ये॥ उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिवि-श्रतः॥

अ० ११-९-२७॥

चौंतीस देवता, पितर, मनुके पुत्र, गन्धर्व, अप्सरा आदि सबही ब्रह्मकी उच्छिष्ट मायासे उत्पन्न हुए हैं और जे द्युलोकमें स्थित हैं तथा अन्तरिक्षमें अवस्थित हैं वे सबही ब्रह्मकी छायारूप मायासे ऊत्पन्न हुए हैं॥१२॥

या आपोयाश्च देवता या विराट् ब्रह्मणा सह॥ शरीरं ब्रह्म प्राविशच्छरीरेधिप्रजा-पति॥१३॥

अ० ११-१०-३०॥

जो अव्याकृत कारण है सोही (ब्रह्मणा) सूत्रात्मा देहके सहित स्थूल विराट् देह है, जो अव्यक्त, हिरण्यगर्भ, विराट् देह है सो ही समष्टि शरीर है, उस त्रिविधका अभिमानी देवता प्रजापति है सो ही (ब्रह्म) ब्रह्माने अपने समष्टि देहसे व्यष्टि अधिदैव, और अधिभौतिक शरीरोंमें विशेष रूपसें प्रवेश किया। वही देव, दैत्य मनुष्यादि प्रजा है॥१३॥

पूर्वो जातो ब्रह्मणो ब्रह्मचारी धर्मं वसानस्तपसोदतिष्ठत् ॥ तस्माज्जातं ब्राह्मणंब्रह्मज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् ॥ १४ ॥

अ० ११-७-५ ॥

ब्रह्मासे पहिले सूर्य देहधारी रुद्र ब्रह्मचारी प्रगट हुआ, सात समिधारूप किरणोंके सहित स्थित हुआ प्रकाश ही जिसका वस्त्र है, उस सूर्यसे ब्राह्मणोंका धनरूप अति उत्तम (ब्रह्म) वेद उत्पन्न हुआ, वेद प्रतिपाद्य अग्नि आदि सब देवता उस आदित्य रूप ब्रह्मचारीके साथ मधुपान करते हैं॥ १४॥

अभिक्रन्दन् स्तनयन्नरुणः शितिङ्गो बृहच्छेपोनुभूमौजभार ॥ ब्रह्मचारी सिञ्चति सानौ रेतः पृथिव्यां तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ॥ १५ ॥

अ० ११-७-१२ ॥

श्वेत शुद्ध देहवाला तरुण वडे लिंगवाला रुद्र मेघरूप कैलासमें गर्जना करता हुआ सर्वत्र दोडता हुआ भूमिके ऊंचे प्रदेशरूप योनिमें जल वर्षारूप वीर्यको सिंचन करता है। चार मास उस वरसादसे चारों दिशाव्यापी प्राणि जीते हैं, और आठ महिना भूमिके रजरूप जलको सूर्य, मण्डलमें खींच लेता है, इसलिये रुद्र उर्ध्व रेता ब्रह्मचारी है॥

इमां भूमिं पृथिवीं ब्रह्मचारी भिक्षामाजभार प्रथमोदिवंच ॥ ते कृत्वा समिधावुपास्ते तयोरार्पिता भुवनानि विश्वा ॥ १६ ॥

अ० ११-७-९ ॥

सूर्यस्थ देव ब्रह्मचारी पहिली इस भूमिसे आहुतिरूप भिक्षा लेता है, दूसरी (पृथिवीं) अन्तरिक्षसे धूमरूप भिक्षा लेता है। उन द्यौ भूमि यज्ञकी त्रिविध रूप भिक्षाको समिधा प्रकाशको विस्तार करके भूमि अभिमानी अग्निकी उपासनात्मक प्रचण्ड तेजसे भूमि तपाता है, उस तपी हुई भूमिको जलकी वर्षारूप भिक्षाको अर्पण करता है, जिस वर्षासे समस्त प्राणि जीते हैं॥

असौवा आदित्यो देवमधु ॥

तां० आर० (छां० उ०) ३-१-१

यही आदित्य ही देवताओंका अमृत है॥

इयं समित्पृथिवी द्यौर्द्वितीयोतान्तरिक्षं समिधापृणाति ॥ ब्रह्मचारी समिधामेखलया श्रमेणलोकांस्तपसापिपर्ति ॥ १७ ॥

अ० ११-७-४ ॥

वह भूमि पहिली समिधा, दूसरी द्यौ है अन्तरिक्षमें पूर्ण करता है, समिधा और मुञ्जकी मेखलको धारण करके गुरुकी

अग्निकी सेवारूप तपसे और इन्द्रियोंको वशमें करके ब्रह्मचारी इन सब लोकोंको पालन करता है॥

तपः स्विष्टकृत् ॥ श० ब्रा० ११-२-७-१८॥

तपसा वै लोकं जयन्ति ॥

श० ब्रा० ३-४-४-२७॥

अग्नि वैं स्विष्टकृत् ॥ श० ब्रा० १०-८॥

रुद्रो वै स्विष्टकृत् ॥ शा० ब्रा० ३-४॥

तप ही स्विष्टकृत् है। अग्नि रुद्रकी परिचर्य्या रुप तपसे, सब लोकोंको जय करता है। अग्नि ही स्विष्टकृत है। रुद्रका भाग ही स्विष्टकृत है॥

सयन्मृगाजिनानिवस्ते....सयदहरहराचार्य्यायकर्म करोति ॥ गो० ब्रा० २-२ ॥

वह ब्रह्मचारी मृगचर्म्म वस्त्र धारण करे। सर्वं वेदार्थज्ञ आचार्य्यकी प्रसन्नताके लिये प्रतिदिन सो ब्रह्मचारी सेवा करता हुआ, जो वेदाध्यन आदिके पठनके लिये गुरु अज्ञा देवे सो ही कर्म करे॥

ब्रह्मचार्य्यहरहरः समिध आहृत्य सायंप्रातरग्निं परिचरेत ॥ गो० ब्रा० २-७ ॥

ब्रह्मचारी प्रतिदिन पलाशादि समिधा लाकर सायंकाल, प्रातःकालमें अग्निकी सेवा करे। यह ब्रह्मचारीका धर्म है॥

त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनंदानमिति प्रथमस्तप एव द्वितीयो ब्रह्मचार्याचार्यकुलवासी तृतीयोऽत्यन्तमात्मानमाचार्यकुलेऽवसादयन् सर्व एते पुण्यलोका भवन्ति ब्रह्म संस्थोऽमृतत्वमेति ॥ तां० आर० २-२३-१॥

चारो आश्रमके सुखके लिये धर्मकी तीन महाशाखा हैं, अग्निहोत्र करना और सोम यज्ञ आदि यज्ञ करना, उस यज्ञकी वेदीके वहार भिक्षुकोंको यथाशक्ति अन्नवस्त्रादि देना। वेदका पारायण करना यह गृहस्थ आश्रमके प्रथम धर्मकी शाखा है। कृच्छ्रचान्द्रायण प्रजापत्यादि व्रत तथा नित्त्य अग्निहोत्र ही वानप्रस्थका तप है। और प्राणायाम, ध्यान, नित्य आरण्यक ग्रन्थों का पठन ही संन्यासीका तप है। यह दूसरी शाखा है। आचार्य्यसे वेदादि षडाङ्ग पढ़कर एक ब्रह्मचारी गृहस्थमें आता है और दूसरा मरणपर्य्यन्त गुरुके पास, अग्निहोत्र वेदाध्यन करता है। यह धर्मकी तीसरी शाखा है॥

किं नु मलं किमजिनं किमु श्मश्रुणि किं तपः ॥ ऐ० ब्रा० १-१३-७॥

खा पीकर शुक्र-शोणितकी वृद्धि करे, करनेयोग्य कर्म न करे तो वह वृथा ही शरीर पुष्ट करनेवाला गृहस्थ है, उससे

क्या प्रयोजन है। मरणपर्य्यन्त ब्रह्मचारी दण्ड, मृगचर्म्म धारण करे, उस आश्रमके कर्त्तव्यको नहीं सिद्ध करे, तो ब्रह्मचर्य्यव्रतसे क्या फल है, कुछ भी नहीं। पंचकेशयुक्त त्रिकाल संध्या स्नान नित्य अग्निहोत्र करे, उस कर्मसे वानप्रस्थके प्राप्तिका स्थान नहीं प्राप्त किया तो सो वानप्रस्थासे क्या प्रयोजन है। अपने व्यष्टि स्वरूपको समष्टि ब्रह्म रूपसे साक्षात्कार नहीं किया तो तपरूप संन्यास आश्रमसे क्या लाभ है। अर्थात् अपने २ आश्रमके धर्मको यथाशक्ति चारों आश्रम पालन करे। और वैदिक उपनयन संस्कारयुक्त ब्रह्मचारी वेदाध्यन करे। विवाह करके नित्य संध्या, पंचमहायज्ञ करे॥

पञ्चैव महायज्ञाः ॥ तान्येव महासत्राणि भूतयज्ञो मनुष्ययज्ञः पितृयज्ञो देवयज्ञो ब्रह्मयज्ञ इति ॥ श० ब्रा० ११–५–६–१ ॥

जो पाँच महायज्ञ है वेही महासत्र हैं। यथाशक्ति चारों वेदोंके मंत्रोंका पाठ करे सो ही ब्रह्म यज्ञ है, इन्द्रादि देवोंके प्रति आहुति दे सो ही देवयज्ञ। पितृतर्पण करे सो ही पितृयज्ञ है। अतिथि सत्कार करे सो ही मनुष्ययज्ञ है। कुत्ता, चाण्डाल काक आदि प्राणियों को वलीरूप अन्न दे सो ही भूतयज्ञ है। ब्रह्मचारी और संन्यासी मुख्य अतिथि हैं, और भोजन के समय अज्ञात चारों वर्णमें का कोई भी होवे सो ही गौण अतिथि है। वेदधर्म का त्यागनेवाला अतिथि नहीं होता है ॥१७॥

आङ्गिरस संन्यासी ऋषि, जगतीछन्द, दानदेवता ॥ मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमिवधइत्ससतस्य ॥ नार्यमणं पुष्यतिनो सखायं केवलाघो भवति केवलादी ॥१८॥

ऋ० १०-११७-६ ॥

जिसका मन उदार नहीं है, उसका भोजन करना वृथा है। उसका भोजन मृत्युके समान है, जो अर्यमादेवको आहुति नहीं देता है, और पापनाशक संन्यासी मित्रको भी भोजन नहीं देता है, तथा अपने कुटुम्बके सहित स्वयं भोजन करता है वह केवल पापको ही खाता है ॥

एष वा अतिथिर्यच्छ्रोत्रियस्तस्मात्पूर्वो नाश्नीयात् ॥ एतद्वा उ स्वादीयो यदधिगवं क्षीरं वा मांसं वा तदेवनाश्नीयात् ॥ स य एवं विद्वान् मांसमुपसिच्योपहरति ॥ यावद्द्वादशाहेनेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्द्धे तावदेनेनावरुन्द्धे ॥

अ० ९-४-२ ॥ ७-९-७-८ ॥

जो तीनों वेदोंका अर्थ जानता है सो ही श्रोत्रिय है, उस सर्व वेदज्ञ पुरुषसे पहिले गृहस्थ भोजन न करे। अतिस्वादिष्ट गौके दूधमें परिपक्व भात (दूधपाक) मालपूआ और बकरेका मांस भी अतिथिको देकर पीछे गृहस्थ खाये। जो द्विजाति मात्र

इस प्रकार जान कर देव, पितर, अतिथिके निमित्त, सीरा, पूरी दूधपाक, मालपूआ, और मांस देकर, पीछेसे खाय सो ही गृहस्थ उत्तम है। अधिक धनवान् द्वादशाह नामके यज्ञको करता है। जितना पुण्य सम्पत्तिवालेको मिलता है, उतना पुण्य धन-हीन अतिथिको भोजन वस्त्रादिका दान देनेवालेको भी मिलता है। सुपात्रको भोजनादि देनेसे गृहस्थ सब पापसे छूटकर स्वर्गमें जाता है। गृहस्थ पुत्रको घर सौंपकर स्त्रीके सहित वनमें जाकर पौर्णमास, दर्श, चातुर्मास यज्ञ करे। फिर प्रजापत्यनामकी इष्टी करे—अर्थात् वैदिक विधियुक्त विरजा हवन करके संन्यासी बने॥ वैदिक विधिके विना कोई भी जाति यज्ञोपवित धारण करे तो क्या द्विजाती है ? नहीं। तैसेही कोई भी जाति वैदिक विरजा हवनके विना, शिखासूत्र त्यागकर भगवाँ वस्त्र धारण कर ले तो क्या संन्यासी है, नहीं। जैसे शूद्र जनेऊ पहिन कर यज्ञ करावे तो वह ब्राह्मण नहीं है। तैसे ही वैदिक विधि रहित काषाय वस्त्रधारी संन्यासी नहीं हो सकते। जैसे विवाहिता स्त्रीके पुत्रोंमें और रखेली स्त्रीके पुत्रोंमें भेद है, तैसे ही वैदिक अवैदिक संन्यासीमें भेद है॥१८॥ जूतिः (ज्ञानी संन्यासी) ऋषि चौथे मंत्रका वृषाणक ऋषि है, अनुष्टुपछन्द, सूर्य मण्डल मध्यवर्ती चेतन रुद्र देवता है॥

केश्यग्निं केशी विषंकेशी बिभर्तिरोदसी॥
केशीविश्वं स्वर्दृशेकेशीदं ज्योतिरुच्यते॥१९॥

मुनयो वातरशनाः पिशङ्गा वसतेमला ॥ वातस्यानुध्राजिं यन्ति यद्देवा सो अविक्षत ॥ २० ॥ उन्मदिता मौनेयेन वाताँ आतस्थिमावयं ॥ शरीरेदस्माकंयूयंमर्ता सो अभिपश्यथ ॥ २१ ॥ अन्तरिक्षेण पतति विश्वारूपा व चाकशत् ॥ मुनिर्देवस्य देवस्य सौकृत्याय सखाहितः ॥ २२ ॥ ऋ० १०–१३६–१–२–३–४ ॥

सूर्यकी किरणोंका नाम केश है, उस केशसमूहमण्डलको धारण करनेवाला चेतन रुद्र केशी है। केशी द्यौ भूमिको धारण करके, उनमें क्रमसे—भूमिमें अग्निको, अन्तरिक्षमें (विषं) जलको, द्यौमें सूर्यमण्डलको धारण करता है। केशी ही, अपने प्रकाशसे सब जगत्को प्रकाशयोग्य बनाता है, इस सूर्यव्यापी चेतन पुरुषको ज्योतिस्वरूप कहा है।१९। वातरशनके वंशज संन्यासीगण काषय वस्त्र पहिनते हैं। वे सब यतिगण देवस्वरूपको प्राप्त करके हिरण्यगर्भकी गतिके अनुगामी हुए हैं।२०। सब संसारके लौकिक व्यवहारोंको त्याग करनेसे हम सन्यासीगण—उन्मत्त परमहंस दशाको प्राप्त हो गये हैं। हम प्राणके जन्ममरण धर्मके ऊपर जन्ममरण रहित ब्रह्माके लोकमें चढ गये हैं। हे मरणधर्मी मनुष्यो, तुम लोग हमारे ब्रह्मलोकमय दिव्य शरीरको तपके द्वारा देखते हो, वास्तवमें तो हमारी व्यष्टि उपाधिक आत्मा

समष्टिस्वरूप ब्रह्मा हो गयी है। किन्तु दो परार्द्ध पर्य्यन्त हम प्राणियोंके शुभाशुभ कर्मके अनुसार अनेक अवतार लेते हुए भी स्वप्न धनके समान सब पाप पुण्य रहित हिरण्यगर्भ स्वरूप हैं॥ ब्रह्माका तेज प्रवेश करने पर समस्त ब्रह्म लोकवासी सर्व-शक्ति-सम्पन्न होते हैं। जैसे एक दीपकज्योति अन्य दीपकमें प्रवेश करनेसे प्रथम दीपकज्योतिके समान ही होती है, तैसे ही ब्रह्म-लोकवासी ब्रह्माकी आज्ञामें रहते हुए ब्रह्माके समान दिव्य भोग भोगते हुए अपनेको मृत्युमय स्थूल देह क्षरसे-और अमृत प्राण रूप अक्षरसे परे तीसरा चेतन, ब्रह्मा, महेश्वर, स्वरूपसे कथन करते हैं। उनमेंसे कोई एक ब्रह्मदेवकी आज्ञासे इस भूमि पर आकर अलौकिक कर्म करके अज्ञानियोंको चकित करता हुआ, अपने कार्यको समाप्त कर जहाँसे आया उसी स्थान पर चला जाता है। फिर मूर्ख प्रजा उसके ज्ञान आदि उपदेशको मनन नही करती हुई उसके लौकिक शरीरकी चेष्टाओंको और शरीरको परब्रह्म मानकर भक्ति करती है, तथा उस अवतारीके मूल पुरुष भगवान् ब्रह्मा महेश्वरको सामान्य मनुष्यके समान मानकर उनकी पूजा उपासनाको त्याग देती हैं। २१। जिन संन्यासियोंने ब्रह्म सम्पत्तिकी प्राप्तिकी है, वे अनेक रूप धारण करके आकाशमें स्वेच्छासे विचरते हैं, और सब पदार्थोंको देख सकते हैं। वे मुनिगण देव ब्रह्माके स्वात्मस्वरूप मित्र रूपसे स्थित हैं और अपने उत्तम कर्म गतिकी प्रसिद्धि करनेके लिये प्रजाओंको वैदिक मार्गमें लगाते हुए निर्लेप विचरते हैं।

शिखा अनुप्रवपन्ते पाप्मानमेवतद-पघ्नते लघीयांसः स्वर्गलोकमपाप्नोति ॥

तां० ब्रा० ४-१०-२५ ॥

ऋग्यजु कर्म—उपासनाकी प्रधानता रखते हैं, और साम ज्ञानकी प्रधानता रखते हैं, इसलिये ही प्रत्येक यज्ञादि दीक्षाके आरम्भमें शिखाके सहित मुण्डन कराते हैं। जो यज्ञदीक्षामें यजमान शिखाको मुण्डन कराता है, और संन्यास आश्रममें प्रवृत्त होनेवाले द्विज शिखाको मुण्डन कराते हैं वे सब पापसे छूट कर निष्पापरूप हलका होकर स्वर्ग (ब्रह्म) लोकको प्राप्त होता है॥

उपवीतंभूमावप्सुवाविसृजेत् ॥ शिखां यज्ञोपवीतं ॥ ॐ भूः सन्यस्तंमया ॥ ॐ भुवः सन्यस्तंमया ॥ ॐ स्वः सन्यस्तंमयेति त्रिः कृत्वा सखामागोपायौजः सखायोऽसीन्द्रस्य वज्रोऽसीत्यनेनमंत्रेण कृत्वोर्ध्वं वैणवंदण्डं कौपीनं परिग्रहेत् वेदेष्वारण्यकमावर्ततयेदुपनिषदमावर्तयेत् ॥ आरुणेय्युपनिषद् ॥

संन्यस्त लेते समय शिखा सूत्रको भूमि वा जलमें विसर्जन करे। इस मंत्रको तीनवार बोलके तीन कामनाओंका त्याग करे। मैं व्यष्टि उपाधिक चेतन हूँ और सूर्यस्थ चेतन अधिदैव समष्टि चेतन इन्द्र है। हे समष्टिसखा स्वरूप इन्द्र तू मेरी अभेद

रूपसे रक्षा कर। मेरे भेद भावको ज्ञान वज्रसे नाश कर, तू ज्ञानरूप वज्र है। इस मंत्रसे दहिने हाथमें बाँशका दण्ड, और वाम हाथमें कमण्डलू धारण करे, तथा कौपीन शीत निवारण वस्त्र ग्रहण करे। वेदोंमें जो आरण्यक भाग है उसका ही संन्यासी पठन करे। जे उपनिषद् आरण्यक भागमें हैं उन उपनिषदोंका नित्य पाठ करे। ऐतरेयाण्यकका ऐतरेयोपनिषद् और कौषीतकि आरण्यकका कौषीतकि उपनिषद् इन दोनोंका पाठ वनआरण्य नामके संन्यासी करे। जैमिनीयारण्यकके केनका पाठ तीर्थनामा संन्यासी करे। ताण्ड आरण्यक (छांदोग्योपनिषद्) का पाठ आश्रम नामका संन्यासी करे। गिरि मुण्डकका, पर्वत प्रश्नोपनिषद्का, सागर माण्डूक्योपनिषद्का पाठ करे। सरस्वती बृहदारण्यकका, पुरी कठोपनिषद्का, भारती तैत्तरीयोपनिषद्का पाठ करे। ईशोपनिषद्का भोजनके समय सब दशनाम संन्यासी पाठ करें, और समस्त संन्यासीगण नित्य श्वेताश्वेतरोपनिषद्का पाठ करें।

न कर्मणा न प्रजयाधनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः ॥ परेण नाकं निहितं गुहायां विभ्राजते यद्येतयो विशन्ति॥ वेदान्त विज्ञान सुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्वाः॥ ते ब्रह्मलोके तु परान्तकाले परामृता त्परिमुच्यन्ति सर्वे ॥

तै० आर० १०-१०-१ ॥

कर्मसे, धनसे, पुत्रादि प्रजासे, अमरत्वको नहीं प्राप्त होते, किन्तु सब प्रपंचकी बहिर्मुख वृत्तीको त्याग करनेसे दिव्यसुख को प्राप्त होते हैं। स्वर्गसे परे उत्तम अव्याकृत गुहारूप ब्रह्म-लोकमें समष्टि सुखस्वरूप ब्रह्मा स्थित है, जो स्वयं विशेषरूपसे प्रकाशित है, उसी गुहामें संन्यासी प्रवेश करते हैं। चतुर्थ संन्यास आश्रम रूप योगसे युक्त यत्नशील संन्यासीगण जिन्होंने आरण्यक भागके सारभाग उपनिषद्योंको सुन्दर रीतिसे-विचार कर साक्षात्कार अनुभव किया है, ऐसे निर्मल अन्तःक-करणवाले संन्यासी दोपरार्द्ध पर्य्यन्त ब्रह्मोकमें दिव्य सुख भोगते हुए फिर ब्रह्माके अन्त समयमें वे सब संन्यासी अव्याकृतात्मक परम सुखसे भी छूटकर महेष्वर तुरीय स्वरूप होजाते हैं॥

न्यास इति ब्रह्मा ब्रह्मा हि परः परोहि ब्रह्म तानिवाएतान्यवराणि तपाꣳसि न्यास एवात्यरेचयत्॥

तै० आर० १०–६२–१०॥

तीर्थ जप, दम, शम, दान, पूर्त्त कर्म, इष्ट कर्म आदि तप कहे हैं, वे सर्व तप संन्यास आश्रमकी अपेक्षासे निकृष्ट हैं–सब का त्याग करके संन्यास गृहण करे। ऐसे संन्यास धर्मको ब्रह्माने उत्तम कहा है। ब्रह्मा ही परब्रह्म है, और परब्रह्म ही ब्रह्मा है॥

न्यास इत्याहुर्मनीषिणो ब्रह्माणं॥ ब्रह्मा-विश्वः कतमः स्वयंभूः प्रजापतिः संवत्सर इति॥

संवत्सरोऽसावादित्यो य एष आदित्ये पुरूषः स परमेष्ठी ब्रह्माऽऽत्मा इति॥ तै० आर० १०-६३-१३॥

महर्षियोंने कहा है, जो सन्यास धर्म है सो ही ब्रह्माके स्वरूपकी प्राप्ति करता है। जो ब्रह्मा है सो ही सर्व जगत्रूप है, और मातापिता के विना स्वयं प्रगट हुआ है। वह अति सुख स्वरूप प्रजापति ही कालरूप है। सो ही कालरूप सूर्य है। जो यह सूर्य मण्डलमें पुरुष है, सो ही उत्तम अव्याकृतस्थित सर्व व्यापक आत्मा ब्रह्मा है॥

परिव्राड्विवर्णवासा॥ जा० लोप० ५॥

व्यष्टिरूप सर्व कामना त्यागी संन्यासी भगवाँ वस्त्र धारण करे॥

असौयः पन्था आदित्यः॥

ऋ० २-२०५-१६॥

जो यह सूर्य है सो ही विद्यारूप मार्गसे ब्रह्मलोकमें जानेका दिव्य मार्ग है॥ ब्रह्मा नाम सूर्यका भी है। जहाँतक सूर्यका प्रकाश है तहाँतक पाप पुण्यका फल भोगा जाता है, अर्थात् त्रिलोकी में वारंवार पुनरागमन होता है। और जो अव्याकृत गुहावासी है सो ही ब्रह्मा है। उसकी प्राप्ति होने पर पुनरागमन नहीं होता है। सूर्यके रथकी प्रतीत होनेवाली एक दिनरात्रिकी गतिके वेगसे जितना देश नपता है, सो देव रथाहूय के नामसे कहा है, यही भूमिकी दू कक्षा है। इसका हीसरा नाम मानसो-

त्तर गिरि है। इस सीमा तक ही सब प्राणियों के भोगकी समाप्ति है, इस त्रिलोकीके आगे अलोक है। वह मानसोत्तर गिरि ही सप्त सागर सप्तद्वीपवाली पृथिवीकी अन्तिम सीमा है। इस भूमिकी कक्षाका जितना परिमाण है, उससे बत्तीस गुणा स्थान सूर्यकी किरणोंसे व्याप्त है। इस सूर्यकी किरणोंसे व्याप्त स्थानका नाम त्रिलोकी है। यही त्रिभुवन है, यह त्रिलोक लोकालोक नामके पर्वतसे घिरा हुआ है। लोकालोकके एक भागमें त्रिलोक है और दूसरे भागमें अलोकात्मक मह, जन, तप, सत्य लोक हैं। तीन लोक—सूर्य के प्रकाशसे प्रकाशित हैं, और अलोक हैं। लोक—अलोक का नाम भुवनकोश है। इस लोकालोक पर्वतके आगे ह्युकपाल है। वह मक्खी के पंखके और छुरेकी धारके समान आकाश है। यहींतक पंचभूतकी गति है, आगे नहीं। अग्निदेव अश्वमेधीको वायुको देता है, फिर वायु जहाँ अश्वमेधी गये हैं तहाँ पहुँचा देता है। वह वायुरूप आत्मा समष्टि व्यष्टिरूप है। जो व्यष्टि उपासक समष्टि स्वरूप होनेकी इच्छा करता है सो ही पुनरागमन रहित मुक्ति है। यह कथा बृहदारण्यक उपनिशद ३—३—२ में है॥

महात्मनश्चतुरो देव एकः कः स जगार भुवनस्य गोपाः॥ तं कापेय नविजानन्ति मर्त्या प्रतारिन् बहुधा निविष्टम्॥ आत्मा देवानामुत मर्त्यानां हिरण्यदन्तोरपसोऽन

सूनुः ॥ महान्तमस्य महिमानमाहुरनद्यमा-
नोयददंतमन्ति ॥
जै० आर० ३-२-१७ ॥

एक समष्टि स्वरूप ब्रह्मदेव अपने दिनके अन्तमें अधि-दैव-अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्रमा इन चारों महात्माओं को खा जाता है, और कल्प दिनके आदिमें उन चारोंको रचकर फिर उनसे चराचर जगत् की रचना कर तथा पालन करता है। फिर कल्पके अन्तमें सबको अपनेमें लय करता है। हे कापेय, हे प्रतारिन्, उस ब्रह्माको मनुष्य नहीं जानते हैं। वह ब्रह्मा अनन्त स्वरूपसे व्यापक है, जो सन्यासी जानते हैं वे मनुष्य नहीं हैं, वे मरण के पीछे ब्रह्मलोक में जाते हैं। समस्त देव, दैत्य पितर, और मनुष्यादि प्राणिमात्रका ब्रह्मा समष्टि स्वरूप है। दृढ दांतो-वाला प्रलयमें सबका संहाररूपसे भोजन करनेवाला है, इस ब्रह्माको कोई भी भक्षण नहीं कर सकता। अभक्ष स्वरूप ब्रह्मा विराट्मय अन्नको खाता है। इस ब्रह्माकी बडी महिमाको जानो ऐसा ऋषि कहते हैं॥

धाता धातॄणां भुवनस्ययः पतिर्देवं त्राता-
रमभिमातिषाहम् ॥
ऋ० १०-१२८-७ ॥

जो मायिक महेश्वर स्वरूप ब्रह्मा सृष्टिकर्त्ता अग्नि, वायु, सूर्य, इन्द्र, वरुण, विष्णु आदि देवताओंका धाता है, जो समस्त ब्रह्माण्डका स्वामी है, जो पालनकर्त्ता है, और शत्रुओंको

जितनेवाला है, उस अद्वितीय देवकी मैं स्तुति करता हूँ। महेश्वर अपनी मायासे अनन्तरूप धारी है ॥

मायया ॥ ऋ० ९-८३-३ ॥

प्रज्ञाका नाम माया है ॥

मायया ॥ मा० शा० २३-५२॥

प्रज्ञाका नाम माया है ॥

सुमायाः ॥ ऋ० १-८८-१ ॥

उत्तम मार्गकी बुद्धि ॥

मायी ॥ ऋ० ७-२९-४ ॥

बुद्धिमान् ॥

मायया ॥ ऋ० ३-२७-७ ॥ ८-२३-२५ ॥

ज्ञानका नाम माया है ॥

मायया ॥ ऋ० ८-४१-३-८ ॥ ९-७४-३० ॥

कर्मका नाम माया है ॥

मायावान् ॥ ऋ० ४-१६-९ ॥

माया नाम, छलकपट करनेवाले का है ॥

मायया ॥ ऋ० ७-१०४-२४ ॥

कपटजालसे ॥

मायाः ॥ ऋ० १-११७-३ ॥

कार्यात्मक दुःखोंका नाम माया है ॥

मायया ॥

अथर्व ४-३८-३ ॥

मोहका नाम माया है ॥

मायाः ॥

ऋ० ७-२-१० ॥

कार्य तमरूप है ॥

मायया ॥

ऋ० ४-३०-२१ ॥

छलसे ॥

मायिनः ॥

ऋ० ३-५६-१ ॥

अनेक माया रचनेवाले मायावी गण ॥

त्वष्टा माया ॥

ऋ० १०-५३-९ ॥

त्वष्टाकी रचना ॥

स्त्रियं मायया ॥

ऋ० ७-१०४-२४ ॥

राक्षसी मायाके द्वारा नाश करती है ॥

माया मायिनां ॥

ऋ० ३-२०-३ ॥

जिन मायावियोंकी मायाओंको ॥

असुरस्य मायया ॥ मायावां ॥

ऋ० ५-६३-३-४ ॥

पर्जन्यकी सामर्थ्यसे, तुम दोनोंकी सामर्थ्य है ॥

माया ॥

ऋ० २-२७-१६

हे मित्र वरूण आपने शत्रुओंके लिये माया रची, उस मायाको तर जायँ ॥

मायिनोमभिरेरूपमस्मिन् ॥

ऋ० ३-३८-७ ॥

गन्धर्व मायावि हैं, अनेक रूप धारण करते हैं, इस अन्तरिक्षमें ॥

माया ऋ० ५-७८-६ ॥

अदृश्य इन्द्रजाल ही माया है ॥

मायिनं ॥ ऋ० ८-६५-१ ॥

इन्द्र बुद्धिमान है ॥

मायिनः ॥ ऋ० ५-२४-११ ॥

प्रशंसनीय गमनशील है ॥

मायया ॥ ऋ० ६-२२-६ ॥

इन्द्रने मायासे वृत्रको मारा ॥

असुर मायया ॥ शां० ब्रा० २३-४ ॥

मायेत्यसुराः ॥ श० ब्रा० १०-५-२-२० ॥

असुर मायाकी उपासना करते हैं ॥

तेभ्यः तमश्च मायां च प्रददौ ॥

श० ब्रा० २-४-२-५ ॥

ब्रह्माने उन दैत्योंके लिये अन्धकारमयी मायाको दिया॥

प्राणोवाऽअसुस्तस्यैषा माया॥

श० ब्रा० ६-६-२-६॥

प्राण हो असु है उन असुरकी चक्षु आदि इन्द्रियोंको चेष्टा ही यह माया है॥

तां मायामसुरा उपजीवन्ति॥

अथर्व० ८-१३-४॥

उस आसुरी मायाको आश्रय करके दैत्य जीते हैं॥

मायाभिरपमायिनः॥ ऋ० १-५१-५॥

इन्द्रने मायावियोंको मायाओंके द्वारा जीता॥

मायाभिः॥ ऋ० ३-६०-१॥

कर्मोंके द्वारा॥

मायया दधे सविश्वं॥ ऋ० ८-४१-३॥

वह वरुण मायाके द्वारा सब जगत्को धारण करता है॥

समाया....अर्चिना॥ ऋ० ८-४१-८॥

वह सूर्यात्मक वरुण अपने प्रकाशसे तमरूप मायाका नाश करता है॥

होता देवो अमर्त्यः पुरस्तादेति मायया॥ विदथानि प्रचोदयन्॥ ऋ० ३-२७-३॥

सृष्टि स्थिति लयादि कार्य सम्पादन करनेवाले अविनाशी रुद्र, तू प्राणियोंके भोग भोगनेसे पहिले ही प्रत्येक हृदयमें प्राप्त है, अपनी मायाके द्वारा सब जीवोंको अपने २ शुभाशुभ कर्म फलमें प्रेरणा करता है ॥

मायया ॥ अथर्व ४-३८-३ ॥

शक्ति ॥

मायया ॥ ऋ० ९-७३-५ ॥

ज्ञानशक्तिके द्वारा ॥

मायया ॥ ऋ० ८-२३-२५ ॥

इन्द्रजाल कपट आदि छलसे

मायया ॥ ऋ० १-१४४-१ ॥

बुद्धिसे ॥

महीं मायां ॥ ऋ० ५-८५-५ ॥

वरुणकी बडी बुद्धिको ॥

रुद्रकी मायासे जीव ढ़का है ॥ ऋ० १०-१७७-१ ॥

माययैष ॥ ऋ० १०-७१-५ ॥

यह मायाके द्वारा कल्पित है ॥

आसुरी माया ॥ तै०शा० ४-१-९-२ ॥

अचिन्त्य रचनारूप माया है ॥

अनृता ॥ ऋ० २-१६-१ ॥

माया ॥

माया....तमसा ॥ ऋ० ५-४०-६ ॥

तमरूप अन्धकारसे सूर्यको ढाँक दिया ॥

ऋतेन ऋतमपिहितं ध्रुवं॥ ऋ० ५-६२-१ ॥

अविनाशी सत्यस्वरूप जलरूप मायासे आच्छादित है ॥

गुह्या ॥ ऋ० २-३२-२ ॥

गुप्त मायासे ॥

द्वयाविनः ॥ ऋ० १-४२-४ ॥ अथर्व १-२८-१ ॥

मायावाला ॥

अद्वयाः ॥ ऋ० १-१८७-३ ॥ ८-१८-६ ॥

कपटरहित ॥

मायाविनः ॥ ऋ० १०-२४-४ ॥

कपट सहित ॥

अद्वयाविनं ॥ ऋ० ५-७५-५ ॥

माया रहित ॥ बुद्धि, इच्छा, शक्ति, ऋत, ब्रह्म, योनि, प्राण, आप, सलिल, गुहा, तम, द्वया, आकाश, अनृता, तुच्छ, माया, प्रज्ञा, अद्भुत, अज्ञानादि नाम मायाके हैं ॥

रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तस्य रूपं प्रतिचक्षणाय॥इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शतादश ॥ ऋ० ६-४७-१८॥

इन्द्र अपनी मायाकी असंख्य शक्तियों के द्वारा अनन्त स्वरूप धारण करता है, अपने अद्वितीय स्वरूपको प्रत्यक्ष करने के लिये प्रतिनिधि स्वरूपसे भिन्न प्रगट हुआ है। इस इन्द्रके सूर्य मण्डलरूप रथमें दश हजार किरणरूप अश्व जुते हुए हैं, सो ही इन्द्र मण्डलका स्वामी है ॥

रूपं रूपं मघवा बोभवीति मायाः कृण्वानस्तन्वं परिस्वाम् ॥ ऋ० ३-५३-८॥

जिस २ रूपको धारण करनेकी इन्द्र इच्छा करता है, उस २ रूपके आकारमें हो जाता है, मायावी इन्द्र अपने देहको विविध प्रकार बनाता है ॥

बहूनि व रश्मीनां रूपाणी आदित्यो बहुरूपः ॥ मै० शा० २-५-११॥

किरणों के बहुत रूप हैं, इसलिये सूर्य भी बहुत रूप है।

वपूंषि कृण्वन्नसुरस्य मायया ॥

अथर्व० ६-७२-१॥

माया शक्तिका प्रेरक रुद्र मायाके द्वारा अनन्त शरीरोंको धारण करता है ॥

मायया ॥ अथर्व० १३-२-३ ॥

एक सूर्य अपनी मायाके द्वारा वहुत रूप धारण करता है ॥

तन्माययाहितं ॥ अथर्व २०-८-३४ ॥

वह भर्ग पुरुष अपनी तेजोमय मायासे ढका है ॥

अश्विनौ रूपपरिधाय मायां ॥

अथर्व० २-२९-६ ॥

अश्विनी कुमारोंने मायामयी रूपको धारण करके सोम पीया ॥

माया मायिनां ॥ तै० शा० ३-२-११-७ ॥

जैसे इन्द्रजालियोंका खेल मायामय होता है, तैसे ही रुद्रकी मायाका खेल यह विश्व है ॥

इन्द्रजालमिव मायामयम् ॥

मै० उ० ४-२ ॥

यह सब संसार इन्द्रजालके समान मायामय जाल है ॥

तस्याभिध्यानाद्विश्वमायानिवृत्तिः ॥

श्वेता० उ० १-१० ॥

उस रुद्रके निरंतर ध्यानसे सब मायाजाल नाश हो जाता है ॥

अघटितघटनापटीयसी कर्तुरिच्छामनुसरन्ती माया ॥

इस संसारकी अघटित घटना करनेमें चातुरीवाली तथा कर्त्ता रुद्रकी इच्छाके अनुसार जगतको रचनेवाली माया है॥

य आदित्ये सप्रतिरूपः ॥ प्रत्यङ् ह्येष सर्वाणि रूपाणि ॥　　　　जै० आर० १-२७-६॥

जो रुद्र सूर्यमण्डलवर्त्ती है, सो ही जीवरूप चिदाभासात्मक प्रतिरूप है। जो प्रत्येक प्राणियोंके हृदयमें विराजमान है, सोही यह चराचर स्वरूप है॥

संवत्सरो वा विवर्तोऽष्टाचत्वारिꣳ शस्तस्य षडविꣳशतिरर्धमासास्त्रयोदशमासाः सप्तऽर्तवो द्वे अहोरात्रे तद्यत्तमाहविवर्त इति संवत्सराद्धि सर्वाणि भूतानि विवर्तन्ते ॥　शा० ब्रा० ८-४-१-२५॥

वर्ष ही विवर्त है। एक वर्षके तेरह महिने, और तेरह महिनोंके छब्वीस अर्ध मास हैं, तथा सात ऋतु, और दो रात-दिन हैं। जो वे अडतालीस ४८ भेद युक्त वर्ष है, सो ही विवर्त है ऐसा वेदज्ञ पुरुष कहते हैं। जैसे समुद्रसे तरङ्ग बुद्बुदा प्रगट होते हुए फिर उसीमें लय होते हैं, तैसे ही सूर्यात्मक संवत्सरसे सब प्राणिमात्र उत्पन्न होते हुए उसीमें लय होते हैं। जिन व्यष्टि देह उपाधियों को समष्टि मण्डलस्थ पुरुषका साक्षात्कार ज्ञान, होता है, वे सब सूर्यस्थ पुरुषमें अभेद रूपसे मुक्त

हो जाते हैं, और ज्ञानरहित जन्ममरणके चक्रमें भ्रमण करते रहते हैं ॥

याग्रे सर्वं समभवद्यस्यां विश्वमिदं जगत् ॥

काठक ब्राह्मण सरस्वती अनुवाक (काठक गृह्यसूत्र) इस मंत्रपर वेदपाल भाष्य–

याचाग्रे प्रथमं सर्गादौ ॥ सर्वं समभवत् ॥ सर्वं विवर्तरूपा बभूव यस्यां चेदं वर्तमानं विश्वं सर्वं जगदधिश्रितम् ॥

सृष्टिके आदिमें सब विवर्तरूपसे प्रगट हुआ। रुद्रकी वाणी-रूप सरस्वतीमें यह सब प्रपंच अधिष्ठित है। जैसे रज्जूमें सर्प आश्रित है तैसे ही रुद्रमें मायामय जगत् विवर्त रूपसे कल्पित है। यह सब प्रजापतिका विवर्त रूप है ॥

नामरूपे सत्यं ॥ श० ब्रा० १४-४-४-३ ॥

यह नामरूपमय जगत् सत्यका विवर्त है ॥

नर ॥ ऋ० १०-२९-२ ॥

हे विवर्त रूपसे अनेक रूपधारी ॥

मन्थता नरः कविमद्वयन्तं प्रचेतसममृतं सुप्रतीकम् ॥ यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरस्तादग्निं नरो जनयतासुशेवम् ॥ ऋ० ६-२९-५ ॥

तुम सब नेतागण, जन्म-मरण-रहित अविनाशी द्वैतशून्य अद्वैत उत्तम ज्ञान स्वरूप सुन्दर विवर्तरूप सर्व व्यापक अन्तर्य्यामीको कर्म, उपासना, ज्ञानके द्वारा प्राप्त करो। हे नेतागण तुम सब यज्ञ, प्रणव, ज्ञानके प्रकाशक मुख्य सुखदाता रुद्रको मरणसे प्रथमस्वस्वरूपसे साक्षात्कार करो॥

सुप्रतीकस्य॥ ऋ० १-१४३-३॥

जैसे अग्निकी चिनगारियाँ, अग्निके समान ही प्रतीत होती हैं, तैसे ही इस रुद्रका चिदाभास विवर्तरूपसे प्रतीत होता हुआ ही रुद्र स्वरूप है॥

द्वयुः॥ अद्वयं॥ ऋ० ८-१८-१०-१५॥

माया, और मायारहित॥

सयद्वयं यवसादो जनानामहं यवाद उर्वज्रे अन्तः॥ अत्रायुक्तोऽवसातारमिच्छादथो अयुक्तं युनजद्ववन्वान्॥ ऋ० १०-२७-९॥

इस मंत्रके अनेक कल्पमें अनेक मंत्रद्रष्टा ऋषि हुए। इस कल्पमें वसुक्र ऋषि हुआ है। आत्मवेत्ता वसुक्रने कहा, इस जगत्में जो घास खानेवाले प्राणि हैं, वे सब ही मैं हूँ, और जो जवरूप अन्न खानेवाले मनुष्य हैं, वे सबही मैं हूँ, हृदयाकाशमें विराजमान इन्द्र अपने अभेद उपासकको स्वस्वरूपसे चाहता है, जो इन्द्र-रुद्र नामवाला ब्रह्म, विस्तृत सूर्यरूप हृदय

और प्रत्येक प्राणियोंके हृदयमें है सो अन्तर्य्यामी रुद्र मैं हूँ, और आत्मज्ञानहीन अति विषयी प्राणिको रुद्र कर्म-तथा उपासना मार्गमें लगाता है॥

यस्यानक्षादुहिता जात्वासकस्तां विद्वाँ अभिमन्याते अन्धाम् ॥ कतरोमेनिं प्रतितमुचाते यईंवहाते यईंवावरेयात् ॥

ऋ० १०-२७-११ ॥

रुद्रकी अन्धी-जड मायारूप, कन्याको अखण्ड चेतन सत्तासे भिन्न अस्तित्व रूप आश्रय कौन बुद्धिमान् देगा ? जो उसको धारण करता है तथा जो उसका स्वीकर करता है, उस विवर्तरूपधारीकी द्वैतरूपसे कौन हिंसा करेगा। कल्पित माया सत्ता नित्य ज्ञान सत्तासे भिन्न नहीं है। किंतु अनित्य सत्तासे नित्य सत्ता अवश्य भिन्न है। अनित्य द्वैत सत्ता स्वप्नजालके समान है। और अद्वैत ही नित्य एकरस है॥

अहमस्मि महामहोऽभिनभ्यमुदीषितः ॥ कुवित्सोमस्यापामिति ॥ ऋ० १०-११९-१२ ॥

मैं इन्द्र महान्से भी महान् हूँ, मैं आकाशके समान सर्वत्र व्यापक हूँ, मैंने अनेकबार सोम पान किया है॥

ऋतं ॥ ऋ० ८-८६-१५ ॥

ज्ञानस्वरूप इन्द्र है॥

अहं मनुरभवं सूर्यश्चाहं कक्षीवाँ ऋषिरस्मि विप्रः॥ अहं कुत्समार्जुनेयन्यृञ्जेहं कविरुशना पश्यतामा॥ ऋ० ४-२६-१॥

वामदेवने अपनी आत्माकी सर्वरूपसे स्तुति की है। मैं वामदेव, मनुरूपसे प्रजा उत्पादक हूँ, मैं सबका प्रेरक सूर्य हूँ, मैं कक्षीवान् ऋषिज्ञानी हूँ, मैंने अर्जुनीके पुत्र कुत्सको उत्तम ज्ञानीके रूपमें अलंकृत किया था; मैं उशना कवि हूँ। हे मनुष्यो, तुम सब मेरेको श्रवण, मनन, निदिध्यासन रूप उत्तम विधिसे देखो। मैं सर्वव्यापक आत्मा हूँ और तुम भी मेरे समान हो जाओगे॥

असच्छाखां प्रतिष्ठन्तीं परममविजनाविदुः॥ उतोसन्मन्यन्तेऽवरे येते शाखामुपासते॥ अथर्व० १०-७-२१॥

जो अनन्त ज्ञान उमाकी एक परिचय देनेवाली एक शाखारूप हिरण्यगर्भ, तथा विराट् रूपसे अवस्थित है, उस अव्याकृत शाखाको उत्तम ज्ञान स्वरूप रुद्रके समान कितने मनुष्य जानते हैं और उपासना करते हैं, और उन मनुष्योंसे भी बुद्धिहीन जे मनुष्य हैं, वे अव्याकृतकी स्थूल शाखा विराट्को ही निर्विकारी सत्स्वरूप मानते हैं, तथा उपासना करते हैं॥

प्राणा उ ह वावराजन् मनुष्यस्यसम्भूतिरेवेति ॥ जै॰ आर॰ ४-७-४ ॥

हे राजन्, मनुष्यके प्राण ही सम्भूति है, उन प्राणोंके द्वारा मनुष्य जाग्रत अवस्थाको प्राप्त होकर चक्षु आदि इन्द्रियोंके द्वारा विविध विषयोंको भोगता है, फिर सुषुप्तिमें वे सब इन्द्रियें असम्भूति रूपसे लय हो जाती हैं, औषधिके समान प्राणको पोषण करना ही सम्भूति उपासना है, और रसना शिश्नादि इन्द्रियोंके भोगों में लिप्त होना ही असम्भूति उपासना है। ब्रह्माने इन्द्रियोंको बहिर्मुख रचा है, इसलिये ही कोई ज्ञानी इन्द्रियोंको अन्तर्मुख करके रुद्रका ध्यान करता है। हिरण्यगर्भ विद्या है, और विराट् अविद्या है। अविद्यासे व्यष्टि उपाधिको तर जाता है, समष्टि स्थूल उपाधिसे हिरण्यगर्भको प्राप्त होता है, उस विद्यासे ब्रह्माकी सायुज्य मुक्तिको पाता है ॥

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः अहं मित्रावरुणोभाविभर्म्यह मिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥ ऋ॰ १०-१२५-१ ॥

अंभृण ऋषिकी पुत्री अम्भृणीने कहा, मैं वसु, रुद्रोंके स्वरूपको धारण करके भूमि, अन्तरिक्षमें विचरती हूँ, और मैं आदित्योंके रूपको धारण करके द्युलोकमें विचरती हूँ, सब देवोंके स्वरूपोंको धारण करके अनेक लोकोंमें विराजती हूँ। मैं

प्रातःकालमें मित्रका और सायंकालमें वरुणरूप धारण करके प्रजाका पालन करती हूँ, मैं अग्निरूपसे आहुति ग्रहण करके देवताओंका पालन करती हूँ, और इन्द्र रूपसे जल वर्षा करके चराचर जगत्का पोषण करती हूँ, मैं अम्भृणी द्यावाभूमिके रूपको धारण करके सबको धारण करती हूँ। ज्ञानी मात्रमें अद्वैत-भाव रहता है॥

अहं परस्तादहमवस्तादहꣳ विश्वस्य भुवनस्य राजा ॥ अहꣳसूर्यमुभयतोददर्श यदन्तरिक्षं तदु नः पिताभूत ॥

मै० शा० १-३-२६ ॥ मा० शा० ८-९ ॥

भरद्वाज ऋषिने कहा, मैं भुवनकोशके ऊपर हूँ, मैं ब्रह्माण्डके नीचे हूँ, मैं समस्त ब्रह्माण्डवर्ती प्राणियोंका स्वामी हूँ। मैं ऊपर और नीचेसे सूर्यको देखता हूँ, अर्थात् व्यष्टि समष्टि उपाधिक चेतनको मैं अभेद रूपसे साक्षात्कार करता हूँ। जो आकाकाशमें है, सो ही सूर्यमण्डलस्थ पुरुष हम सब प्रजाका उत्पत्ति और पालन कर्ता पिता है॥

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ॥ तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥ ऋ० १-१६४-२०॥

सुन्दर किरणवाले सूर्य—चन्द्रमा संग रहनेवाले मित्र स्वभाववाले दोनों त्रिलोकी वृक्षको आश्रय करके रहते हैं, उन दोनोंमें

एक चन्द्रमा मीठे जलवाली सूर्यकी सुषुम्ना किरणके प्रकाशको भक्षणरूप धारण करता हुआ प्रकाशित होता है, और दूसरा सूर्य किसीके प्रकाशको ग्रहण रूपसे न भक्षण करता हुआ स्वयं सर्वत्र प्रकाशित है ॥

गुहाहितं....नेममुद्यतं ॥ ऋ० ९-६८-५ ॥

एक चन्द्रमा रात्रिरूप गुहामें स्थित है, और दूसरा सूर्य प्रकाशित है ॥

दिवआजाता दिव्या सुपर्णा॥ ऋ० ४-४३-३ ॥

तुम दोनों सूर्य चन्द्ररूप पक्षी आकाशसे प्रगट हुए हो ॥

सुपर्णः ॥ ऋ० ५-४७-४ ॥

सर्वव्यापी सूर्य है ॥

सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वो ॥

काण्वशा० २-१-१-३ ॥ मा० शा० १८-४० ॥

सूर्यकी सुषुम्ना किरण धारण करनेसे चन्द्रमा गन्धर्व है॥

क्रीडन्तौ परियातोर्णवम् ॥ अथर्व ७-८६-१ ॥

सूर्य चन्द्रमा दो बालक रात्रिदिन रूपसे आकाशमें खेलते हैं ॥

सूर्य एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः ॥

काण्व शा० ३-५-३-७ ॥ मा० शा० २३-१० ॥

सूर्य क्षय-वृद्धि-रहित एक ही विचरता है। और चन्द्रमा कृष्णपक्षमें क्षीणरूप मरता है, और शुक्लपक्षमें जन्मता है।

सूर्य नेत्रपति है, तथा चन्द्रमा मनपति है। मन उपाधिक चेतन भोक्ता है, और चक्षु उपाधिक चेतन दृष्टा है। एक ही चेतनके उपाधिसे दो भेद हैं, तथा उपाधि रहित एक तुरीय रूप शिव है। सोम जीव, सूर्य ईश्वरके समीप जाता है सो ही शिवरात्रि है, और एक साथ वास करनेसे आमावस्या है॥

असौवा आदित्य इन्द्रः॥ काठक शा० ३६-१०॥

यह सूर्य ही इन्द्र है॥

चन्द्रमावै सोमः॥ काठक शा० ११-३॥

चन्द्रमा ही सोम है॥

चन्द्रमा....सुपर्णः॥ ऋ० १-१०५-१॥

चन्द्रमा सुपर्ण है॥

वयो वै सुपर्णः॥ शां० ब्रा० १८-४॥

वय ही सुपर्ण है॥

प्राणो वै वयः॥ ऐ० ब्रा० १-२८॥

प्राण ही वय है॥

आदित्यो वै प्राणः॥ जै०आर० ४-२२-११॥

सूर्य ही प्राण है॥

प्रजापति वैं सुपर्णो गरुत्मान्॥

श० ब्रा० १०-२-२-४॥

प्रजापति ही सुपर्ण गरुत्मान् है॥

वागेव सुपर्णी ॥ श० ब्रा० ३-६-२-२ ॥

मायारूप वाणी ही सुपर्णी है ॥

पुरुषः सुपर्णः ॥ श० ब्रा० ७-४-२-५ ॥

रुद्र पुरुष ही सुवर्ण है ॥

द्वाविमौवातौवात आसिन्धोरापरावतः॥
दक्षं ते अन्यआवातु परान्योवातु यद्रपः ॥
ऋ० १०-१३७-२ ॥

समुद्र पर्यन्त—समुद्रसे भी परे स्थान तक, दो वायु चलते हैं, एक वायु तुम स्तोता का बल धारण करे, तथा दूसरा तुम सबके पापको नाश करनेके लिये चले ॥

वायु वैं तार्क्ष्यः ॥ शा० ब्रा० ३०-५ ॥

वायुरेव सविता ॥ जै० ब्रा० ४-२७-५ ॥

वायुरापश्चन्द्रमा ॥ गो० ब्रा० २-८ ॥

वायु ही सूर्य है ॥ वायु ही अन्तरिक्षवासी चन्द्रमा है ॥

पूर्वापरंचरतो माययै तौ शिशू क्रीड-
न्तौ परियातो अध्वरम् ॥ विश्वान्यन्यो भुव-
नाभिचष्ट ऋतूँरन्यौ विदधज्जायते पुनः ॥
ऋ० १०-८५-१८ ॥

ये सूर्य—चन्द्रमारूप दो बालक मायावृक्षके आश्रयसे पूर्व पश्चिममें भ्रमण करते हैं। ये खेल करते हुए आकाशमें जाते हैं। उन दोनोंमेंसे एक चन्द्रमा वसन्तादि ऋतुओंको धारण करता हुआ कृष्णपक्षमें क्षय और शुक्लपक्षमें वृद्धिरूपसे वारंवार उत्पन्न होता है। और दूसरा सूर्य नाशवृद्धिरहित समस्त त्रिलोकीके स्थावर जंगमको सर्वत्रसे देखता है॥

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया· शोचति मुह्यमानः ॥ जुष्टं यदापश्यत्यन्यमी· शमस्य महिमानमिति वीतशोकः ॥

शौनकीयारण्यक (मु० उ०) ३-१-२॥

त्रिलोकी वृक्षरूप विराट्में सूर्यस्थ रुद्र विराजमान है, और तीन देहमय पिण्डमें हृदयमें जीव विराजमान है। समष्टि व्यष्टिरूप समान वृक्षवाले भर्ग और जीव हैं। व्यष्टि देहस्थित देही पुरुषदेहके हर्षशोक आदिको अपने धर्म मान कर मोहमें फंस कर शोक करता है। और जब व्यष्टिदेहसे भिन्न सूर्यस्थित प्रिय रुद्रकी महिमाको देखता है, तब यह जीव जन्ममरणादि शोकरहित होता है।जो सूर्यस्थित पुरुष था, सो ही जीव हुआ है, जो मैं देहस्थित पुरुष हूँ सो ही मैं सूर्यस्थित भर्ग हूँ, ऐसा जब ज्ञान होता है, तब रुद्र होता है। जिस 'द्वा सुपर्णा' मंत्रका अर्थ वेदमें सूर्य चन्द्र परत्व है, उसी मंत्रका आरण्यकमें देहस्थित चेतन और सूर्यस्थित चेतन परत्व है ॥

अर्यमा सप्त होता विषुरूपेषु जन्मसु ॥

ऋग० १०-६४-५ ॥

सूर्य सात किरणवाला नाना शरीरोंमें जन्म लेता है॥

अजः ॥ ऋ० १-६७-३ ॥

सूर्य ही अज है॥

सुपर्णः ॥ ऋ०-१०-३०-३ ॥

सूर्य ही सुपर्ण है॥

पिप्पलं ॥ ऋ० ५-५४-१२ ॥

पिप्पल नाम जलका है॥

नूनं जनाः सूर्येण प्रसूता अयन्नर्थानिक्रुण-वन्नपांसि ॥ ऋ० ७-६३-४ ॥

जीव मात्र निश्चय सूर्यसे ही उत्पन्न हो कर कर्तव्य कर्मोंको करते हैं॥

सूर्यआत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥

मा० शा० ७-४२ ॥

सूर्य ही स्थावर जंगमका स्वरूप है॥

अहमिद्धि पितुः परिमेधामृतस्य जग्रभ ॥ अहं सूर्य इवाजनि ॥ ऋ० ८-६-१० ॥

मैंने वत्स ऋषिने सत्य स्वरूप सूर्यस्थ पिता इन्द्रका अनुग्रह प्राप्त किया है। मैं इस वर्तमान देहमें ही सूर्यके समान प्रकाशित हुआ हूँ॥

एकः सुपर्णः स समुद्रमाविवेश स इदं विश्वं भुवनं विचष्टे॥ तं पाकेन मनसा पश्यमन्तितस्त मातारेह्ळिसउरेह्ळिमातरं॥

ऋ० १०-११७-४॥

एक सुपर्ण प्रजापति है सो ही सूर्य मण्डलमें प्रविष्ट हुआ, सो ही पुरुष इस समस्त ब्रह्माण्डको देखता है। मैं वैरूप सध्रि ऋषि शुद्ध मनके द्वारा अपने समीपवर्ती देहमें उसको अभेद स्वरूपसे देखता हूँ। उसका रात्रि माता सुषुप्ति रूपसे स्वाद लेती है, और वह उस रात्रि माताका जाग्रत रूपसे स्वाद लेता है। जो सूर्यस्थ पुरुष है सो ही भोक्ता अनेक देहस्थ पुरुष है, वही व्यष्टि चेतन मोहरूप माताको जाग्रत ज्ञानरूपमें लय करके, मैं सूर्यस्थ पुरुष हूँ इस प्रकारके ज्ञानसे मोहरहित होता है॥

सुपर्णं विप्राकवयो वाचोभिरेकंसन्तं बहुधा कल्पयन्ति॥

ऋ० १०-११४-५॥

उस सुपर्णकी ज्ञानी ऋषिगण अनेक नामरूपके द्वारा कल्पना करते हैं॥

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ॥ एकंसद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निंयमंमातरिश्वानमाहुः ॥

ऋ० १-१६४-४६ ॥

जे ज्ञानी जन इस एक सूर्यस्थ पुरुषको अग्नि, मित्र, वरुण, इन्द्र और रुद्र, यम, मातरिश्वा आदि नामोंसे कहते हैं, वे ज्ञानी जन उसको बहुत प्रकारसे वर्णन करते हैं, वह दिव्य मायाधारी सुपर्ण है।

ऋचो अक्षरेपरमेव्योमन्यस्मिन्देवा अधिविश्वे निषेदुः ॥ यस्तन्नवेद किमृचाकरिष्यति-य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥

ऋ० १-१६४-३९ ॥

जिस नाशरहित उत्तम सूर्यमण्डलरूप आकाशमें मंत्र समूह और सब देवता अवस्थित हैं, उस मण्डलस्थ पुरुषको जो मनुष्य नहीं जानता है, वे वेद ऋचाओंको पढ कर क्या करेंगे? जो सूर्यस्थ रुद्रको अभेद रूप जानते हैं वेही ज्ञानी पुनरागमन-रहित अभेद स्वरूपसे रहते हैं॥

तस्माद्वै विद्वान्पुरुषमिदं ब्रह्मेतिमन्यते ॥ सर्वाह्यस्मिन्देवता गावोगोष्ठ इवासते ॥

अथर्व० ११-१०-३२ ॥

जैसे दिनमें चरकर गौयें सायंकालको अपनी गौशालामें निवास करती हैं, तैसे ही अधिदैव सूर्यमें किरणरूप देवता निवास करते हैं, और अध्यात्म चेतनमें इन्द्रियें निवास करती हैं। इसलिये ही ज्ञानी इस देहस्थ चेतनको और सूर्यस्थित चेतनको व्यापक है ऐसा जानते हैं, जिस चेतनमें सब देवता आदि प्राणि विवर्तरूपसे कल्पित हैं॥

ये पुरुषे ब्रह्म विदुस्ते विदुः परमेष्ठिनं॥
योवेद परमेष्ठिनं यश्चवेद प्रजापतिम्॥

अथर्व १०-७-१७॥

जो ज्ञानी (पुरुषे) अपने शरीरमें व्यापक जीवको जानता है, वह ज्ञानी सूर्यस्थित रुद्रको जानता है। जो ज्ञानी उत्तम सूर्यमें स्थित रुद्रको जानता है, सो ही ज्ञानी सत्यलोकवासी ब्रह्माको जानता है। सूर्यस्थ पुरुषके द्वारा ही ब्रह्माको प्राप्त होता है॥

ब्रह्मसूर्य समऊज्योतिः॥ मा० शा० २३-४७॥

सूर्यस्थ चेतनके समान देहस्थित व्यापक जीव ज्योति है॥

पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम्॥
तस्मिन्यद्‌यक्षमात्मन्वत्तद्वै ब्रह्मविदो विदुः॥

अथर्व १०-८-४३॥

नव छिद्रयुक्त देहमें बुद्धिरूप कमल है, उस हृदयमें जो भोक्तारूपसे स्थित है, और जाग्रतादि तीन अवस्थासे ढका है

सो ही पूज्य स्वरूप रुद्र है, इस प्रकार प्रणवके अर्थको जानने-वाले जानते हैं॥

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्॥
योसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्॥

मा० शा० ४०-१७॥

मंत्र द्रष्टा दधीच मुनिने कहा, सूर्यमण्डलमय पात्रसे सत्य चेतन रुद्रका स्वरूप ढका है, जैसे अज्ञानी अपने हृदयस्थ चेत-नको नहीं देख सकते, तैसे ही सूर्यस्थित चेतनको भी नहीं देख सकते हैं। जो पुरुष इस सूर्यमें है, सो ही पुरुष मैं दधीच हूँ॥

ऋतस्य तन्तुं विततं विचृत्य तदपश्यत्तद-भवत्तदासीत्॥

मा० शा० ३२-१२॥

नारायण नामके ऋषिने कहा, रुद्रके ब्रह्ममय सन्तान अग्नि, वायु, सूर्यादिके रूपमें विस्तृत हुए हैं। समष्टि व्यष्टि उपा-धिको समाप्त कर, उस निरुपाधिक स्वरूपको देखता हूँ, सोही स्वरूप होता है, पहिले सो ही रुद्र था। अर्थात् जीव जलतरङ्गवत् कल्पित विवर्तरूप होने पर भी वास्तवमें जलरूप रुद्र ही है॥

नतुतद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं य-त्पश्येत्॥

बृ० उ० ४-३-२३॥

उस अद्वैत स्वरूपसे कुछ भी भिन्न नहीं है जिसको देखे॥

ज्योतिरेकं बहुभ्यः॥ ऋ० १-९३-४॥

एक चेतन आत्माही बहु स्वरूपोंके आकारसे दीखता है, यही वितर्त है ॥

तद्योऽहं सोऽसौ योऽसौ सोऽहम् ॥

ऐ० आर० २–३–१२॥

जो मैं वसुक्र ऋषि हूँ सो ही यह सूर्य भर्ग हूँ, जो भर्ग है सो ही मैं हूँ, जो मैं हूँ सो ही निराकार तुरीय रुद्र हूँ॥

ॐ अथातो वैराग्यसंस्कृते शरीरे ब्रह्म यज्ञनिष्ठोभवेदपपुनर्मृत्युं जयति तदु ह वा आत्मा द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य इति ॥ वेदानुवचनेन विविदिषन्ति ब्रह्मचर्येण तपसा श्रद्धया यज्ञेनानाशके नचेति माण्डूकेयः ॥

शांख्यायन आरण्यक १३–१ ॥

प्रथम वैराग्यसे देहको शुद्ध करे, फिर ब्रह्मयज्ञरूप ज्ञानका अधिकारी होवे, उस ज्ञानसे जन्ममरणमय मृत्युको जीतता है। वह निश्चय आत्मा जानने योग्य, सुनने योग्य, मनन करने योग्य, निदिध्यासन करने योग्य है। इस लोक और परलोकके भोगोंकी इच्छासे रहित, नित्य ज्ञानस्वरूपकी प्राप्तिके लिये वेद के वचनसे श्रद्धा पूर्वक, ब्रह्मचर्य्य, वेदाध्ययन, दान, यज्ञ, ध्यानके द्वारा ज्ञानी इच्छा करते हैं, इस प्रकार माण्डूकेय महर्षिने कहा है ॥

तस्मादेवंविच्छान्तोदान्त उपरतस्तितिक्षुः श्रद्धावित्तोभूत्वाऽऽत्मन्येवाऽऽत्मान्येवाऽऽत्मा- श्येदिति माण्डव्यः ॥ शां आर० १३–२ ॥

शान्त, दान्त, उपरति, तितिक्षा श्रद्धायुक्त होकर अपनी देहमें ही आत्माको अभेदरूपसे देखे। इस उपायसे ही आत्माका जाननेवाला होता है, ऐसा माण्डव्यऋषिने अनुभवयुक्त कहा है ॥

योऽयं विज्ञानमयः पुरुषः प्राणेषु स एष नेतिनेत्यात्मन गृह्य इदं ब्रह्मेदं क्षत्रमिमे देवा इमे वेदा इमे लोका इमानि सर्वाणि भूतानीदं सर्वं- यदयमात्मा स एष तत्त्वमसीत्यात्माऽवग- म्योऽहं ब्रह्मास्मीति तदेतद्ब्रह्मा पूर्वमपरम नपर- मनन्तरमबाह्यमयमात्मा ब्रह्म सर्वानुभूरित्यनु- शासनमिति, याज्ञवल्कयः ॥

शां० आर० १३–३ ॥

जो चेतन पुरुष सब इन्द्रियोंमें भोक्ता कर्त्तारूपसे अनुभव कर्त्ता है, सो ही विज्ञानमय पुरुष है। सो यह आत्मा सूक्ष्म देह, और कारण देह नहीं है, यह आत्मा अमुकरूप है, इस प्रकार से आत्माका कोई भी कथन नहीं कर सकता है। यह अव्या- कृत है, यह हिरण्यगर्भ है, ये ये देव हैं, वेद हैं, ये लोक हैं, यह

सब प्रपंच विवर्तरूप है, जो यह आत्मा विवर्तरूप है, सो ही यह तत्त्वमसि है, सो अति सूक्ष्म आत्मा, तू व्यष्टि उपाधिक जीव है, जो तू जीव है सो ही निरूपाधिक ब्रह्म है। इस प्रकार आत्मा अनुभवगम्य मैं ब्रह्म ँ, सो ही यह ब्रह्म उत्पत्ति, निराकार, निरंजन, स्थूल, कृश, दीर्घ, ह्रस्व, पर, अपर, बाहर भीतर आदि धर्मरहित, यह व्यापक ब्रह्म सबके अनुभव गम्य है। नेत्र, मन, वाणी, प्राण जिसके द्वारा अपने २ व्यापार करते हैं सो ही चेतन ब्रह्म है। यह वेदका परंपरागत उपदेश है, यह बात याज्ञवल्क्यने कही ॥

जीवापेतं वाव किलेदं म्रियते इति स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳसर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो ॥ ताण्डयारण्यक ६-११-३ ॥

यह देह जीवरहित होनेपर मरता है, जीव नहीं मरता है, यह बात कर्मके सफलपने आदिसे प्रतीत होती है। जो यह सूक्ष्म तादात्म्य जीवभाव है, सो ही सब प्रपंचका आत्मा है, सो ही यह सत्यस्वरूप ब्रह्मा, भर्ग है, हे श्वेतकेतो, प्रिय पुत्र, सो ही सत्यस्वरूप तुरीय रुद्र तू है ॥

यथा सौम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातꣳस्याद्वाचाऽऽरम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यं ॥ तां० आर० ६-१-४ ॥

भगवान् उद्दालक मुनिने कहा, हे प्रिय श्वेतकेतो, पुत्र, जैसे एक मृत्तिकाके पिण्ड—ढेलेके ज्ञानसे, सब मिट्टीके काय घट, शकोरे कर्वा, आदिका ज्ञान हो जाता है, क्योंकि जो कुछ भी वाणीका विषय विकाररूप कार्य है, वह सब नाममात्र कहने योग्य ही है, सत्य नहीं है, केवल मृत्तिका ही सत्य है, तैसे ही यह नामरूप प्रपंच विवर्तरूपसे कल्पित मिथ्या (अनिर्वचनीय) रूप है, एक ब्रह्म ही सत्य है ॥

अत्रपिताऽपिताभवति माताऽमाता लोकाअलोका देवाअदेवा वेदाअवेदाः

बृ० उ० ४-३-२२ ॥

इस सुषुप्ति अवस्थामें, और मोक्षमें, आत्मा पुण्य पापके सम्बन्ध रहित होता है, उसके लिये, मातापिता अमातापिता होते हैं, लोक अलोक, देवता अदेवता, वेद अवेद होते हैं। जैसे जलमें मधुरता है, तैसे ही ज्ञानीका मोक्षदशामें आनन्द सुख है। ज्ञानीके प्राण प्रारब्ध देहके सम्बन्धरहित होते ही आत्माका परलोकगमन् न होता हुआ उस स्थानव्यापी सामान्य चेतनमें विशेष चेतन उपाधि रहित हुआ सामान्य चेतन स्वरूप हो जाता है। और दूसरा क्रममार्गसे जानेवाला, सूर्य पुरुषको प्राप्त होकर ब्रह्मालोकमें जाता है, फिर भगवान् ब्रह्माके समान दिव्य भोगोंको भोगता हुआ कल्परूप दिनके अन्तमें ज्ञानी संन्यासी ब्रह्मामें समष्टि चेतनरूपसे मोक्ष पाता है ॥

ब्रह्मलोकमभिसम्पद्यते न च पुनराव-र्तते ॥

तां० आर० ८-१५-२॥

ज्ञानी संन्यासी ब्रह्माकी उपासना करनेवाले देहत्याग करके ब्रह्मलोक जाते हैं, फिर ब्रह्मलोकसे लौटकर संसारमें देह धारण नहीं करते हैं ॥

अद्वयः ॥

ऋ० १-१८७-३ ॥

द्वैतरहित ब्रह्मा ॥

अभयं ज्योतिरश्याम् ॥

ऋ० २-२७-१६ ॥

मैं सब भय रहित स्वयं प्रकाशरूप ब्रह्मा होऊँ ॥

नित्यश्चाकन्यात्स्वपतिदमूनायस्माउदेवः सविताजजान ॥

ऋ० १०-३१-४॥

अविनाशी भगवान् ब्रह्मा ज्ञानदाता गुरुके स्वरूपको धारण करके मुमुक्षुओं पर कृपा करे । स्वरूपकी प्राप्ति करनेवालेको सविता अभेदरूप फल देवे । ज्ञानीमात्र ब्रह्मा का रूप है, और सूर्य पुरुष सविता यतियोंके हृदयमें अभेद ज्ञानकी दृढभावनारूप फलको उत्पन्न करता है । सूर्यके द्वारा ही ब्रह्माकी प्राप्ति होती है ॥

विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम तवाहमस्मि त्वं मा पालयस्वानर्हते मानिनेनैवमादा गोपा-

यमा श्रेयसी तेहमस्मीति विद्ययासार्द्धं म्रियते न विद्यामुषरेवपेद्ब्रह्मचारी धनदायी मेधावी श्रोत्रियः प्रियो विद्ययावाविद्यां यः प्राहः ॥

सामसंहितोपनिषद ७ ब्राह्मण । ६ अनुवाक ॥

ब्रह्मविद्या अभिमानी देवता ब्रह्मविद्या ब्राह्मण समूहके पास आकर, कहने लगी, मैं विद्या देवता तेरे पास आई हूँ, तू मेरी रक्षा कर । अयोग्य, अभिमानी, धन सेवारहित मूर्खको मेरा दान मतकर । तू मेरी कुपात्रोंसे रक्षा करेगा तो, मैं तेरा कल्याण करूँगी । इस प्रकार कहकर फिर कहने लगी, विद्याको साथ लेकर मरना उत्तम है, किन्तु ऊपर खेतके समान पात्रमें विद्यारूप बीज नहीं बोना । ब्रह्मचारी, धन देनेवाले, बुद्धिमान, वेदके अर्थ जाननेवाले, प्रिय शिष्यको देना, अथवा विद्यासे विद्याको ग्रहणकर उसको विद्या कहना ॥

तदेतन्नापुत्रायनानन्तेवासिने ब्रूयादिति य इमामद्भिः परिगृहीतां वसुमतीं धनस्यपूर्णांदद्यादिदमेव ततो भूयः ॥ छां० आर० १३-४॥

गुरुके समीप वासरूप शिष्यभाव रहित होवे, ऐसे कुपात्रको इस प्रसिद्ध अध्यात्मज्ञानका उपदेश न करे । जो शिष्य धनसे भरी हुई तथा समुद्रसे व्याप्त हुई भूमिको

देवे उस दानके पीछे फिर इस ज्ञानका ही शिष्यके प्रति उपदेश करे ॥

ॐ ऋचां मूर्धानं यजुषामुत्तमाङ्गं साम्नां शिरोऽथर्वणां मुण्डमुण्डं नाधीतेऽधीते वेदमा हुस्तमज्ञं शिरश्छित्त्वाऽसौ कुरुते कबन्धम् ॥

शां० आर० १४-१ ॥

मंत्रोंका अर्थ ही ऋग्वेदका शिर है, यजुमंत्रोंका अर्थ ही यजुर्वेदका मस्तक है, साममंत्रोंका अर्थ ही सामवेदका शिर है, अथर्वण मंत्रोंका अर्थ ही अथर्ववेदका मस्तक है। जो द्विजाती मात्र वेदको पढ़ता है, किन्तु वेद पढ़ता हुआ भी अर्थ नहीं जानता है, वह द्विज अर्थहीन उस वेदका शिर काटकर कबन्ध करता है। जैसे शिर रहित धड होता है, तैसे ही अर्थहीन वेद धड है ॥

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम् ॥ योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्र मश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मेति ॥

शां० आर० १४-२ ॥

जैसे सूखा वृक्ष जलानेके लिये भार होता है, तैसे ही निश्चय वेद पढ़कर जो अर्थ नहीं जानता है वह द्विज भी वेदका भार उठानेवाला है। जो द्विज अर्थ जानने वाला है

वह समस्त सुखको पाता है, और मरनेके अनन्तर ब्रह्मलोकमें जाता है, विरजा नदी पर पाप पुण्यको ज्ञान अवस्थारूपसे धोकर निर्मल हुआ ब्रह्माके भवनमें प्राप्त होता है ॥

ब्रह्मा स्वयम्भूर्नमो ब्रह्मणे ॥ शां० आर० १५-१॥

मातापितासे रहित स्वयं उत्पन्न हुआ ब्रह्मा है, उस ब्रह्माके लिये मेरा वारंवार प्रणाम हो ॥

इति श्री राजपीपलानिवासी स्वामी शंकरानन्दगिरिकृतायां वेद-सिद्धान्तरहस्य भाषाटीकायां द्वितीयं खण्डं समाप्तम् ॥

॥ अथ स्मृत्यादि सिद्धान्त ॥

परिशिष्टं

॥ अथ स्मृत्यादि सिद्धान्त ॥

स आदिः सर्वजगतां कोऽस्य वेदान्वयं ततः ॥ सर्वं जगद्यस्यरूपं दिग्वासः कीर्त्यते ततः ॥ गुणत्रयमयं शूलं शूली यस्माद्बिभर्ति सः ॥ अबद्धाः सर्वतो मुक्ता भूता एव च तत्पतिः ॥ श्मशानं चापि संसारस्तद्वासी कृपार्थिनां ॥ भूतयः कथिता भूतिस्तां विभर्ति स भूतिभृत् ॥ वृषोधर्म इति प्रोक्तस्तमारूढस्ततो वृषी ॥ सर्पाश्च दोषाः क्रोधाद्यास्तान्बिभर्ति जगन्मयः ॥ नानाविधाः कर्मयोगा जटारूपा बिभर्ति सः ॥ वेदत्रयी त्रिनेत्राणि त्रिपुरं त्रिगुणं वपुः ॥ भस्मी करोति तद्देवस्त्रिपुरघ्नस्ततः स्मृतः ॥ एवंविध महादेवं विदुर्ये सूक्ष्मदर्शिनः ॥

स्कन्द पु० माहेश्वर खं १ । कौ० खं २ । अ० २५ । श्लोक ७१...७६॥

हमने वेदोंको पढा है। उस वेदज्ञानके विना इस रुद्रको कौन जान सकता है ? वह रुद्र सब प्राणियोंका आदिकारण है, सब इस रुद्रके विवर्त रूप हैं, इसलिये ही रुद्रको दिशारूप वस्त्र-वाला कहा है। तीन गुणमय शूलको धारण करता है, इसलिये ही वह शूली है, सब संगसे रहित ज्ञानी प्राणि हैं उनका जो स्वामी होवे सो ही सत्पति है। संसाररूप श्मशान है उसमें प्राणियोंके उद्धारके लिये जो वास करता है, सो ही रुद्र श्मशानवासी है। सब चराचर रुद्रकी महिमा है सो ही भूति कही जाती है उस महिमाको धारण करता है सो ही रुद्र भस्मधारी है। धर्मका नाम वृष कहा है, उस पर सवारी करता है इस लिये ही रुद्र वृषी है। काम क्रोध लोभादि दोषही सर्प है उनको धारण करनेसे रुद्र सर्पधारी है। वह रुद्र विवर्तरूपसे जगत्स्वरूप है, नाना प्रकारके कर्मोंका सम्बन्ध ही केश समूह जटा हैं उनको धारण करनेसे वह रुद्र जटाधारी है। तीन वेद ही तीन नेत्र हैं, त्रिगुणात्मक शरीर ही त्रिपुर नगर है, प्रणवरूप बाणके द्वारा वह रुद्र तीनों शरीरोंके अभिमानी विश्वादिको भस्म करता है, फिर शेष तुरीय रुद्र रहता है, इसलिये ही रुद्र त्रिपुरघ्न कहा जाता है। इस प्रकार जो ज्ञानी रुद्रको जानते हैं, वे सूक्ष्मदर्शी मोक्ष पाते हैं॥

तिस्रोदेवीर्यदा चैव भजते भुवनेश्वरः द्या-मापः पृथिवीं चैव त्र्यम्बकस्तु ततः स्मृतः ॥

म० भा० ७-२०२-१३० ॥

जब उमा देवी तीन रूप धारण करती हैं, तब वह देवीके, द्यौ (आपः) अन्तरिक्ष, भूमि रूपको, अग्नि, वायु, सूर्यस्वरूप धारण करके रुद्र धारण करता है, इसलिये रुद्र त्र्यम्बक कहा जाता है॥

अम्बिकां विविधाः प्राहुस्त्रयम्बकाणियतो द्विजाः॥ तस्मात्संकीर्त्यते लोके त्र्यम्बकश्च सुरेश्वरः॥ स्कन्द पु० नागर खं० ६-१५३-२८॥

हे ब्राह्मणो, द्यौ, आकाश, भूमि ही तीन अम्बक हैं, इसलिये ही नानारूपधारी अम्बिकाको त्र्यम्बका वेदवेत्ताओंने कहा है। त्र्यम्बकाका, मायाका कार्य, द्यौ, अन्तरिक्ष, भूमि है और मायाकी क्रिया—अग्नि वायु, सूर्य है, इन तीनोंका जो प्रेरक है, सो ही त्र्यम्बक है। इस हेतुसे लोकमें रुद्रको त्र्यम्बक कहा है॥

सूर्यसोमाग्निसंबन्धात्प्रणवाख्यं शिवात्मकम्॥ अकारोकारमकाराणां मात्राणामपि वाचकः॥ तथा सोमस्य सूर्यस्य वह्नेस्त्रित्रयस्यच॥अम्बा उमा महादेवो ह्यम्बकस्तु त्रियम्बकम्॥ लिंग० पु० उ० ५४-९-२०॥

सूर्य, सोम, अग्नि इन तीनोंका सम्बन्ध तुरीय मात्रा शिवसे है। यही ॐ शिव है। अकार, अग्नि, उकार वायु—सोम,

मकार सूर्य, इन तीनों मात्राओंका रूप प्रणववाचक है और रुद्र वाच्य है। अग्नि, सोम, सूर्यके रूप ये तीन अग्निही भग, अम्बी स्त्री नामवाले हैं अग्नि अ ॥ वायु-सोम उ ॥ सूर्य म ॥ ज्ञान रूप उमा अर्ध मात्रा ॥ ज्ञान स्वरूप चेतन रुद्र शून्य ० है॥ ॅ अर्द्धनारीश्वर-उमा महेश्वर है ॥

मकार.अव्याकृत सहित रुद्र उमा है॥

अव्याकृत हिरण्यगर्भ सहित उमा महेश्वर है॥
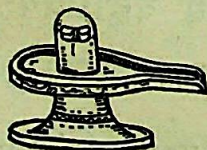
अव्यक्त-सूत्रामा विराट् सहित उमा महेश्वर लिंग स्वरूप है ॥

रजः सत्वं तमोभावस्तस्माल्लिंगाच्च जायते ॥ तस्मिंस्तच्छ्रूयते सत्यं ज्योतिर्ब्रह्म सनातनं ॥ अव्यक्तकारणं सूक्ष्मंयत्तत्सदसदात्मकं ॥ यस्मात्पितामहो जज्ञे प्रभुरेकः प्रजापतिः ॥

स्कन्द पु० आवन्तीका खं० ५ ॥ चतु० २-२५-१८-१९ ॥

सत्त्व, विराट्, रज-सूत्रात्मा, तम-अव्याकृत, ये तीनों उत्पत्ति स्वभाववाले, उस अर्द्धनारीश्वर लिंगसे उत्पन्न होते हैं। उस लिंगमें वह निराकार सत्यरूप स्वयंप्रकाशी अविनाशी चेतन विशेष रूपसे प्रकट होता है, यह अव्याकृत सूक्ष्म कारण है सो ही सत् असत् रूप-अनिर्वचनीय है । इस अव्यक्तसे समष्टि स्वरूप समर्थ अद्वितीय पितामह ब्रह्मा उत्पन्न हुआ है॥

यत्पूर्वमसृजदेवं ब्रह्माणं लोकभावनं ॥ अण्डमाकाशमापूर्य ॥ मा० भा० १३-१४-२०० ॥

जिस रुद्रने महाप्रलयके अन्त और सृष्टि रचनाके पहिले अण्डात्मक-आकाश-अव्याकृतको मैं एक मायिक महेश्वर वहुत होऊँ इस सत्य संकल्पसे भर दिया, उस अव्यक्तरूप अण्डसे लोक रचनेवाले ब्रह्मदेवको उत्पन्न किया॥

अण्ड जातं तु ब्रह्माणं केचिदिच्छन्त्य पण्डिताः ॥ अण्डाद्भिन्नाद्बभुः शैलादिशोंभः

पृथिवीदिवम् ॥ द्रष्टव्यं नैतदेवं हि कथं जायेदजो हि सः ॥ स्मृतमाकाशमण्डं तु तस्माज्जातः पितामहः ॥

महाभारत अनु० १३-१५-३-१६-१७ ॥

वेदज्ञानरहित कितने मूर्ख द्विजातिगण अण्डसे ब्रह्मा उत्पन्न हुआ ऐसा कहते हैं, किन्तु अण्डके दो भाग होने पर, उसमें से अन्तरिक्ष, वायु, द्यौ, अग्नि, जल, भूमि दिशायें, मेघ-पर्वत प्रगट हुए हैं (जो बात अण्डसे कही है वह अण्ड द्यौ भूमि है, उस द्यौ और भूमिके बीचमें सूर्यकी उत्पत्ति है। सूर्यका नाम ब्रह्मा है। और सत्यलोक निवासी ब्रह्मा तो अव्याकृतसे प्रगट हुआ है) परन्तु ब्रह्माने विराट्को रचा है, उसमें पंचभूतोंके सहित जगत्की उत्पत्तिके समय, किसीने भी यह रचना नहीं देखी है, क्योंकि वह ब्रह्मा तो अजन्मा है, महेश्वर ही स्वयं ब्रह्मारूपसे अव्यक्तसे हुआ है ॥

जलमाकाशं ॥ म० भा० ३-३१३-८६ ॥

जलनाम आकाशका है, और आकाश नाम अव्याकृतका है, अण्ड नाम भी अव्याकृतका है ॥

आकाशं खं दिशोऽव्योम अन्तरिक्षं नभाऽम्बरम् ॥ पुष्करं गगनं मेरुर्विपुलंच्च विलं तथा॥ आपो छिद्र तथा शून्यं तमो वै रोदसी ॥

भविष्य पु० १-१२६-१-२ ॥

आकाश, खं, दिशा, व्योम, अन्तरिक्ष, नभ, अम्बर, पुष्कर, गगन, मेरु, विपुल, विल, आप, छिद्र, शून्य, तम, रोदसी, ये १७ नाम अव्याकृत आकाशके नाम हैं ॥

क्षेत्रज्ञः पुरुषो वेधाः शम्भुर्नारायणस्तथा ॥
पर्य्यायवाचकैः शब्दैरेवं ब्रह्मा प्रकीर्त्यते ॥

भविष्य पु० १-२-१७ ॥

क्षेत्रज्ञ, पुरुष, वेधा, शम्भु, नारायण, आदि पर्य्यायवाचक शब्द ही ब्रह्माके वाचक हैं ॥

अव्यक्तप्रभवो ब्रह्मा शाश्वतो नित्य अव्ययः ॥ बा० रा० १-१७१-१९॥

आकाशप्रभवो ब्रह्मा शाश्वतो नित्य अव्ययः ॥ बा० रा० २-११०-५ ॥

अव्यक्त आकाशसे प्रगट होनेवाला ब्रह्मा अविनाशी निरंतर वर्तमान परिणामरहित है ॥

अव्यक्तनाभं व्यक्तारं ॥ म० भा० १२-२११-८॥

अव्यक्तकी नाभिरूप मध्य—व्यक्त अवस्था ही नाम है ॥

ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः अव्याकृतमिदं ॥

मत्स्य पु० १२८-३ ॥ पद्म पु० २-६५-१ ॥ ब्रह्म पु० ४३-४० ॥ कूर्म पु० ९-३ ॥ शिव० पु० ७-१३-६ ॥ वामन पु० ३६-११ ॥ मार्कण्डेय पु० ८१-६९ ॥

ब्रह्मा अव्यक्तसे प्रगट हुआ है, यह सब जगत् अव्याकृत का व्यक्तरूप है ॥

विष्णु मूलप्रकृतिरव्यक्ता॥ कूर्म पु० १६-१३६॥

विष्णुर्बुद्धिः प्रकृतिरीश्वरी ॥

ब्रह्मवैवर्त्त पु० ३-७-७४॥

वासुदेवं जगद्योनिं ॥ पद्म पु० २-९७-२॥

अव्यक्तमूलं ॥ श्रीमद्भागवत ३-८-२९॥

विष्णुरापः ॥ स्कन्द पु० ७-१०५-६१॥

विष्णुशक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथाऽपरा ॥ विष्णु पु० ६-७-६१॥

शाम्भवी शक्तिर्वेदे विष्णुः प्रपठ्यते॥

स्कन्द पु० ४ ॥ उ० ८७-८०॥

अव्यक्तं तु उमादेवी ॥ वराह पु० २५-४॥

अव्यक्तं कारणं यत्र नित्यं सदसदात्मकं॥
प्रधानं प्रकृतिं मायां चैवाहुस्तत्वचिन्तकाः॥

ब्रह्माण्ड पु० १-५-१०३॥

जिस अधिष्ठानमें उत्पत्तिनाशरहित अनिर्वचनीय अव्यक्त कारण अधिष्ठित है, विष्णु, बुद्धि, जगत् योनि,, अव्यक्त मूल, आप, विष्णुपराशक्ति, शाम्भवी उमा, प्रकृति, प्रधान, माया–अव्याकृतको इत्यादि नामसे तत्त्ववेत्ता पुकारते हैं ॥

दृष्टिः पपात तत्कण्ठे नीलकण्ठो बभूव ॥

ब्रह्मवै० पु० कृ० खं० पू० ४–३७–३३ ॥

अनन्तज्ञान शक्ति उमाकी एकवीजसत्तारूप रुद्रके एक भागरूप कण्ठमें मैं एक हूँ वहुत होऊँ यही दृष्टि गिरि सो ही देश नीलकण्ठ हुआ ॥

कण्ठे मायां ॥ अग्नि पु० १०२–२३ ॥

मायाऽऽकाशे ॥ अग्नि पु० १०१–९ ॥

रुद्र अपने एक भागरूप देशमें मायाको धारण करता है, इसलिये ही वह भाग रुद्रका नीलकण्ठ है। वही माया महाप्रलयमें निर्विशेष सत्ताके रूपसे रहती है, इसलिये ही रुद्रका नाम शिति (श्वेत) कण्ठ हुआ। यहि सत्ता सविशेषरूपसे सृष्टिके आकारमें आगमन करती है तव रुद्रका नाम नीलकण्ठ होता है। माया रुद्ररूप आकाशमें स्थित है ॥

अव्याकृतां मायां ॥ अग्नि पु० ५९–६ ॥

यद्गुहायं प्रकृतिं परमं व्योम ॥ कूर्म पु० २८–१७ ॥

अव्याकृतका ही नाम माया है। जो आवरण करनेवाली गुहारूप प्रकृतिको ही परम व्योम कहा है ॥

ममैव सा परामूर्तिस्तोयरूपा शिवात्मिका ॥ ब्रह्माण्डानामनेकानामाधारः प्रकृति परा ॥

स्कन्द पु० ४-२७-७॥

जो जलरूप उमात्मक मेरी परामूर्ति है वह अनेक ब्रह्माण्डोंके नामको धारण करनेवाली पराप्रकृति है ॥

उमेति संज्ञयायत्तत्सदामर्त्ये व्यवस्थिता॥ ओमित्येकाक्षरीभूता ससर्जेमां महीं तदा ॥

वराह पु० ९-५॥

जो एकाक्षरी ॐरूप उमानामवाली नित्य ज्ञान स्वरूप है। प्रलय उत्पत्ति धर्मवाले (मर्त्यें) अव्यक्त मायामें स्थित है उमाने ही अपनी शक्तिके द्वारा इस अव्यक्तको रचा है ॥

उमया हेतुना शम्भोर्ज्ञानलोकेषु संततम्॥ ज्ञानमाताच साज्ञेया शम्भोरर्धाङ्गवासिनी ॥

पद्म पु० १-६२-११ ॥

रुद्रके स्वरूपका ज्ञान उमाके द्वारा तीनों लोकोंमें विस्तृत हो रहा है। तथा रुद्रके अर्धाङ्गमें वसनेवाली वह ज्ञानमाता उमा है, उसको मायाका आधार जानो ॥

उमाच शंकरश्चैव देहमेकं सनातनं ॥ एका मूर्त्तिरनिर्देश्या द्विधाभेदेन दृश्यते ॥

स्कन्द पु० ५-[२] ३९-३४ ॥

उमा और रुद्रकी एक ही देह सनातन है, एक मूर्ति अनिर्वचनीय जगत् भेदको लेकर दो रूपसे दीखती है ॥

उमाशंकरयोर्भेदो नास्त्येव परमार्थतः ॥

लिंग पु० ८७-१३ ॥

उमा और रुद्रमें परमार्थ दृष्टिसे भेद नहीं है, क्यों कि उमा ज्ञान और रुद्र चेतन है, सो ही ज्ञानस्वरूप है ॥

मायया सहपत्न्या च शिवस्य चरितं महत् ॥

स्कन्द पु० १-३२-७७ ॥

माया पत्निके सहित शिवका चरित्र अद्भुत है ॥

मायैव ज्ञानशब्देन बुध्यते ॥

बृहन्नारदीय पु० पू० ३३-७० ॥

माया ज्ञान शब्दसे ही कहीजाती है ॥

सावएतस्य संद्रष्टुः शक्तिः सदसदात्मिका मायानाम महाभाग ययेदंनिर्ममेविभुः ॥

श्रिमद्भाग० पु० ३-५-२५ ॥

हे महाभाग इस सर्वज्ञ दृष्टाकी जो शक्ति है, सो ही अनिर्वचनीय स्वरूप माया नामवाली है, जिस मायाके द्वारा मायिकने यह सब प्रपंच रचा है॥

ब्रह्मादयो यत्कृतसेतुपाला यत्कारणं विश्वमिदंचमाया ॥ अज्ञाकरीतस्य पिशाचचार्य्या अहो विभूम्नश्चरितं विडबनम् ॥

श्रीमद्भाग० ३-१४-२८॥

ब्रह्मादि देवता भी जिसकी बाँधी हुई मर्य्यादाको पालन करते हैं, जो इस सब जगत्का कारण है, और यह जगत् तथा माया, जिस रुद्रकी अज्ञामें रहते हैं, इस प्राणचारी रुद्रका चरित्र अतर्क्य अद्भुत है॥

रेतोऽस्यगर्भो भगवानापोमायातनुः प्रभुः ॥ मूल प्रकृतिरव्यक्ता गीयते वैदिकै रजः ॥ अजनाभौतुतद्बीजंक्षिपत्येष महेश्वरः॥

कूर्म पु० उ० ३९-७४-७६॥

इस रुद्रके वीर्यको भगवान् आप, माया देहवाले समर्थ अव्याकृतने गर्भरूपसे धारण किया। मूल प्रकृतिको अव्यक्त अज आदि नामसे वेद जाननेवाले कहते हैं। अव्याकृतकी पूर्ण-मध्य अवस्थामें मैं एक हूँ बहुत होऊँ, उस विशेष बीजको यह महेश्वर स्थापन करता है॥ सो ही ब्रह्मा होता है॥

प्राणा वै जगतामापोभूतानिभुवनानिच-
अपांत्वधिपतिर्देवोभव इत्येव कीर्तितः ॥

लिंग पु० ९४-३५ ॥

सब जगत्का प्राण ही व्यापक अव्याकृत है, जिस अव्याकृतसे सब प्राणि उत्पन्न होते हैं, उस व्यापक मायाका स्वामी रुद्र देव है ऐसा कहा है॥

कुहकः ॥ नारदीय मनुसंहिता ॥ १-१६४ ॥

यद्रूपं मायया कृतवानसि ॥ इन्द्रजालंच
मायां वै कुहकावापिभीषणः ॥ वयमप्युत्सहे-
मद्यां खं च गच्छेम मायया ॥ रसातलं विशा-
मोऽपिऐन्द्रंवा पुरमेवतु ॥ दर्शयेम च रूपाणि
स्वशरीरे बहुन्यपि ॥ नतु पर्यायतः सिद्धि
्द्धिमाप्नोति मानुषीम् ॥

म० भा० ५-१६०-५४-५७ ॥

दुर्योधनने कहा, हे शकुनीपुत्र, मेरा संदेशा कृष्णको कहना, जो कृष्णने कौरवोंकी सभामें जैसे मायाके द्वारा विराट्रूप धारण किया था, वह विराट्रूप इन्द्रजाल था। मायाको रचनेवाले महा भयानक (कुहकाः) ऐन्द्रजालिक, मायावी होते हैं। हम भी यदि चाहें तो स्वर्गमें पहुँच सकते हैं, और शरीरके असंख्य

रूप हम भी दिखा सकते हैं, परन्तु इस प्रकार करनेसे, अपने कार्यकी सिद्धि नहीं होती, यह विराट्रूप मायाजाल है। हे कृष्ण तेरे जैसा मनुष्य इन्द्रजालके द्वारा प्राणियोंको वश नहीं कर सकता है॥

मनसैव हि भूतानि धातैव कुरुते वशे॥

म० भा० ५-१६०-५८॥

एक ब्रह्मा ही मनसे प्राणियोंको वशमें कर सकता है। जो कृष्णने अर्जुनको विराट्रूप दिखाया था सो भी इन्द्रजालका खेल था॥

दूर्योधन स्वमायया विष्टभ्य सलिलं शेते नास्यमानुषतो भयं॥ दैवींमायामिमाँकृत्वा सलिलान्तर्गतोह्ययं॥ मायाविन् इमां मायां मायया जहि भारत॥

म० भा० ९॥ ३०-३१॥ ८-४-६॥

युधिष्ठिरने कहा, हे कृष्ण, दुर्योधन अपनी मायासे, जलको स्थिर कर, इस सरोवरमें सो रहा है, अब इसको मनुष्योंका भय नहीं है, यह दुर्योधन दैवी मायाको फैला कर जलके मध्यमें सो रहा है। कृष्णने कहा, हे भारत, इस मायावीकी मायाको तुम मायासे नाश करो॥

मायाऽनेकैरुपायैस्तु मायायोगेन चासकृत् ॥ हतास्ते सर्व एवाजौ भवतां हितमिच्छता ॥ म० भा० ९-६१-६३ ॥

कृष्णने कहा, हे राजन् युधिष्ठिर, मैंने केवल तुम्हारा हित करनेकी इच्छासे ही कपटके भरे अनेकों उपाय बताकर बारंबार, सब भीष्म, भगदत्त, जयद्रथ, कर्ण, द्रोण, दुर्योधन आदि महारथियोंको मरवा दिया ॥

वासुदेवस्य मायया ॥ म० भा० ५-६७-२ ॥

कृष्णकी ठगबाजीसे ॥

तमस्तद्वासुदेवेन संहृतं ॥ वासुदेव प्रयुक्तेयं मायेति ॥ म० भा० ७-१४६-१३३ ॥

जयद्रथके वधके पीछे कृष्णने अपने रचे हुए, मायामय अंधकारको हटा लिया। यह कृष्णकी रची माया थी ॥

छादयित्वाऽऽत्मनाऽऽत्मानं मायया योगरूपया ॥ हरिवंश पु० १-५५-४० ॥

अपने योगमाया स्वरूपसे अपनेको छिपाकर ॥

मांसंच मायया कृष्णो गिरिर्भूत्वा समश्नुते ॥ हरिवंश० पु० २-१७-२१ ॥

कृष्णने अपनेको मायासे गोवर्धन पर्वत बनालिया, और मांसआदिका भोजन करने लगा ॥

देवीं मायां समाश्रित्य संविधाय हरिर्नटं ॥ हरिवंश २-९२-४८ ॥

दैवीमायाका आश्रय लेकर कृष्णने नटका वेष धारण किया ॥

माययास्य प्रतिच्छाया दृश्यते हि नटालये ॥ देहार्धेन तु कौरव्य सिषेवेसौ प्रभावतीम् ॥ हरिवंश २-९४-३० ॥

मायाके द्वारा प्रद्युम्नकी छाया, नाटकशालामें दीखती थी, और हे शतानीक, सो प्रद्युम्न आधेदेहसे प्रभावतीको सेवन करता था ।

छायामयीमात्मतनुं निर्म्ममे दयितां रवेः ॥ मार्कण्डेय पु० ७७-११ ॥

सूर्यकी पत्नी संज्ञाने, अपनी देहकी छायाको अपने शरीरके समान रचकर, अपने स्थानपर, सूर्यको प्रसन्न करनेके लिये स्थापित किया । इस छायासे सावर्णिमनु प्रगट हुआ है ॥

विश्वमूर्तिरभूच्छीघ्रं महामाया विशारदः तस्यदेहेहरेः साक्षादपश्यद्विजसत्तमः ॥ दधीचो

देवतादीनां जीवानां च सहस्रकं ॥ भूतानां कोटयश्चैव गणानां कोटयस्तथा ॥ दधीच उवाच-मायांत्यज महाबाहो प्रतिभासो विचारतः ॥ विज्ञातानि सदस्राणि दुर्विज्ञेयानि माधव ॥ मयि पश्य जगत् सर्वं त्वयायुक्तमतंद्रितः ॥ ब्रह्माणंच तथा रुद्रं दिव्यांदृष्टिं ददामिते ॥ इत्युक्त्वा दर्शयामास स्वतनौ निखिलं मुनिः ॥ ब्रह्माण्डंच्यावनिः शम्भुतेजसा पूर्णदेहकः ॥

शिव पु० रुद्रसंहिता सती खं० ३९-३१-३७ ॥ लिंग पु० पू० ३६-६०-६४ ॥

विष्णुने मायाको आश्रय करके शीघ्र ही विराट् रूपको धारण कर लिया, द्विजोत्तम दधीचने उस मायाके विराट्रूपधारी विष्णुके देहमें असंख्य जीव और देवताओंको देखा, करोडों भूत, यक्ष राक्षस, पितर, और करोडों गन्धर्व दैत्य, रुद्रगणोंको देखा, फिर दधीच मुनिने विष्णुसे कहा, हे महाबाहो, तू मायाजालको त्याग कर, यह मायामय विराट् प्रतिभास (इन्द्र-जालका खेल) है, हे माधव, मैं भी हजारों कठिनतासे जानने योग्य पदार्थोंको जानता हूँ। मैं तेरेको दिव्यदृष्टि देता हूँ, तू सावधान होकर मेरे शरीरमें तेरे सहित सब जगत और ब्रह्मा,

रुद्रको देख, ऐसा कहकर च्यवनपुत्र दधीचने अपने देहमें शिवतेजसे युक्त पूर्ण विराट्को धारण करके समस्त ब्रह्माण्ड दिखाया ॥

मायया त्वनया किंवा मंत्रशक्त्याथवा हरे ॥
सत्कामायामिमां तस्माद्योद्धुमर्हसि यत्नतः ॥
शिव पु० ३९-३९ ॥ लिंग पु० ३६-६६ ॥

दधीचने कहा हे विष्णो, इस मायाजाल, अथवा मंत्रशक्तिसे क्या है ? तू मायाजालको त्याग करके, उत्तम कपटरहित इच्छा कर, और प्रयत्नके साथ मेरेसे, तू युद्धकर । फिर विष्णुका घोर युद्ध हुआ, विष्णु दधीचसे हारकर भाग गया ॥

माया इन्द्रजालं ॥
मत्स्य पु० २२२-२ ॥ वामन पु० २७-३१ ॥

इन्द्रजालं स्फुटं वेत्ति मायां जानाति वा पुनः ॥
पद्म पु० ३-२२-४८ ॥

माया इन्द्रजाल है । जो इन्द्रजालको स्पष्ट जानता है सोही फिर ईश्वरीय मायाको जानता है ॥

आश्रित्य दानवीं मायां वितत्य स्वं महावपुः पूरयामास गगनं ॥ मत्स्य पु० १५०-१४८ ॥

कालनेमीने आसुरी मायाको आश्रय करके अपने शरीर में अनेक देह रचकर आकाश भर दिया ॥

महेन्द्रजालमाश्रित्य चक्रेस्तां कोटिश-स्तनुम् ॥

मत्स्य पु० १५०-१४८ ॥

रविने महेन्द्र मायाको आश्रय करके अपने देहसे अनेक शरीर रच दिये ॥

मायाविः....मायामसृजत् ॥ आत्मनः प्रतिरूपान् ॥

म० भा० ३-२९० ॥ ५-११ ॥

रावणने माया रची। रावणने अपने शरीरसे असंख्य राम लक्ष्मणके स्वरूपोंको रच दिया ॥

सीतां मायामयीं ॥ वा० रा० ६-८१-२९ ॥

मेघनादने मायामयी सीताको रचकर मारडाला ॥

राघवः शोकमूर्छितः ॥ वा० रा० ६-८३-१० ॥

सीताके वधको सुनकर राम शोकसे मूर्छित हुआ ॥

गन्धर्वनगराकारः पुनरन्तरधीयत ॥

म० भा० ७-१०३-१०४ ॥

फिर गन्धर्व नगरके समान घटोत्कच अदृश्य हो गया। वह राक्षसी माया है ॥

ब्राह्मीं मायां चासुरीं विप्र मायां ॥

हे विप्र, असुरोंकी आसुरी माया, देवोंकी दैवी, योगियोंकी ब्राह्मी माया है ॥

दिव्यांमायां ॥ म० भा० १–१९७–१४॥

व्यासने द्रुपदको दिव्यदृष्टि दी, जिससे द्रुपदने मनुष्यरूप अर्जुनको इन्द्ररूपसे देखा ॥

मायां वा० रा० ६–१११–९ ॥

यमराज मायासे रामचन्द्र बन गया है॥

प्रयत्नान्निर्मितां धात्रा दिव्यां मायामयीमिव ॥ वा० रा० १–४९–१४॥

जैसे ब्रह्मा दिव्य मायाको रचकर उसके द्वारा स्वयं समष्टि स्वरूपसे अनन्त व्यष्टि स्वरूप धारण करता है, तैसे ही गौतमकी शापरूप मायासे यह अहल्या स्थूल देहयुक्त श्वास प्रश्वास लेती हुई, फल मूलका आहार करती हुई तप कर रही है। यह अहल्या सब प्राणियोंको देखती है, और सब प्राणि इसको नहीं देखते हैं, यही ऋषिकी अद्भुत शापरूप माया है, यह शापकी अवधि राम आने तक थी। विश्वामित्र, राम, लक्ष्मण जब समीप कुटिमें गये तब अहल्या बैठी तप करती हुई दृष्टी गोचर हुई। राम लक्ष्मणने अहल्याके चरणोंमें शिर नमायकर प्रणाम किया, फिर

अहल्याने आतिथ्यसत्कार करके फलमूल दिये। राम लक्ष्मणने खाये॥

छायां पश्यन्॥ म० भा० १२-३३३-३९॥

मुक्त शुकके छायामय प्रतिरूप शुकको पुत्ररूपसे व्यास देखता भया। यह ब्राह्मी माया है॥

छायापत्नी सहायः॥ हरिवंश० २-३४-४१॥

देवमाया पत्नीके साथ है॥

नारायणो देवः स्वकां छायां समाश्रित्य॥
तत्प्रेरितः प्रकुरुते जन्म नानाप्रकारकं॥
मत्स्य० पु० १५४-३५९॥

ब्रह्मा अपनी छाया रूप मायाको आश्रय करके उसमायासे प्रेरित हुआ नाना प्राणियोंके आकारमें जन्म धारण करता है, यह सब जगत् ब्रह्माका विवर्तरूप है॥

भगवान्नीहारमसृजत्प्रभुः॥ म० भा० १-६३-७३॥

मत्स्यगन्धाके समागमके लिये, समथ भगवान् पराशर ऋषिने, दिनमें अन्धकार रच दिया, और चार कोस तक दुर्गन्धीका नाश कर सुगन्धीयुक्त मत्स्यगंधाको कर दिया। योगियोंकी यही माया है॥

उतदथ्योऽन्तर्हिते चैव कदाचिद्देव मायया ॥ म० भा० १२-३४१-८० ॥

देवमायासे उतथ्य मुनि अन्तर्धान हुआ ॥

दिव्यामायामयंरथं ॥ म० भा० ३-४२-७ ॥

इन्द्रने दश हजार घोडोंके सहित रथ भी दिव्य मायासे रचा था। इन्द्र समस्त प्राणियोंके रूप धारण करता है ॥ म० भा०-१३-४०-१....३० ॥ इन्द्रका वज्र मायासे व्याघ्र बनकर राजपुत्रको मार कर अन्तर्धान हो गया ॥

तव तं भाविनं क्लेशमवगम्यात्ममायया ॥
आत्माश्वपाकतांनीतो दर्शितंतत्स्वपक्वणं ॥

मार्कण्डेय पु० ८-२४९ ॥

धर्मने कहा, हे हरिश्चंद्र, जो यह क्लेश तेरेको हुआ, सो मैंने चाण्डालका रूप धारण करके, अपनी मायासे रच कर तेरेको दिखाया था, सो मैं वह चाण्डाल हूँ। मैंने तेरी परीक्षा की है, अब तू स्वर्ग चल ॥

आश्चर्यभूतंददृशे चित्रं पटगतं तथा ॥

म० भा० १५-३२-२०

जैसे वस्त्र पर चित्र होते हैं, तैसे ही मरे हुए दोनों पक्षके वीरोंका धृतराष्ट्र, युधिष्ठिर आदिको दर्शन कराया, योगमायासे व्यासने। सब विधवायें अपने २ पतियोंके साथ स्वर्गमें गईं ॥

मायैषा देवराजेन महेन्द्रेण प्रयोजिता ॥

म० भा० १८-३-३६ ॥

देवराज इन्द्रने मायासे नरक रचकर, युधिष्ठिरको दिखाया ॥

प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्म-मायया ॥

भ० भा० ६-२८-६ ॥

हे अर्जुन, मैं अपनी मायाका आश्रय करके, अपनी मायाके द्वारा जन्म धारण करता हूँ ॥

पश्य मे पार्थ रूपाणी शतशोऽथसहस्रसः ॥

म० भा० ६-३५-५ ॥

कृष्णने कहा, हे अर्जुन, मेरे सैकडों तथा असंख्यरूपों को देख। यही कृष्णका मायाजालमय विराट् है ॥

दैवी मायाह्येषा गुणमयी मम मायादुरत्यया ॥ माययाऽपहृतज्ञाना आसुरंभावमाश्रिताः ॥

म० भा० ६-३१-१४ ॥

देवके आश्रित यह दैवी मेरी माया वडी अद्भुत है। अपने वस्तिविक अधिष्टान स्वरूपको भूलना, और कल्पित अधिष्ठित

मायाको अपना स्वरूप मानना ही ज्ञानका नाश होना है, तथा प्राण धारण करता हुआ, जन्ममरणको प्राप्त होता है ॥

मायाह्येषा मया सृष्टा यन्मां पश्यसि नारद ॥ सर्वभूतगुणैर्युक्तं नैवं त्वं ज्ञातुमर्हसि ॥

म० भा० १२-३३९-४५ ॥

धर्मपुत्र नारायणऋषिने कहा, हे नारद, मैंने इस मायामय विराट्को रचा, जिसका तू दर्शन करता है। वह मायामय है, म सब प्राणियोंके स्वरूपोंसे युक्त हूँ, तथा तू मेरेको इस प्रकार से नहीं देख सकता क्योंकि यह सब विवर्तरूप है ॥

मायां न सेवे ॥ म० भा० ५-६९-५ ॥

अनेक रूपधारी मायाको ब्रह्म मानके न सेवे ॥

अविद्या वै महत्यस्ति यामिमां संश्रिता प्रजाः ॥

म० भा० ५-१३५-१ ॥

वह अविद्या महान् है जिसका आश्रय सब प्रजा कर रही है ॥

महामाया वैष्णवी मोहितं यया ॥ अविद्यया जगत्सर्वं ॥

विष्णु पु० ५-१-७१ ॥

व्यापक महा माया है, जिस अविद्यासे सब जगत् मोहित है ॥

दग्ध्वा मायामयं पाशं॥ अग्नि पु० २९-७६ ॥

मायामय पाशको ज्ञानसे भस्म करके मोक्ष जाय ॥

एषाह्यन्तरहिता मायादुर्विज्ञेया सुरैरपि॥
यथा यं मुह्यते लोकोह्यत्र कर्मैवकारणं ॥

हरिवंश० २-३२-४० ॥

यह माया आदि-अन्त-रहित मध्यमें, या मनमें रहनेवाली है। माया तो देवताओं से भी दुर्विज्ञेय है, जिस प्रकार, यह प्राणि समूह मोहको प्राप्त होता है, इसमें उसका कर्म ही कारण है, कर्म मायारूप है ॥

अविद्यया मनसा कल्पिताः ॥

श्रीमद्भा० ५-१२-९ ॥

स्वाभाविक अविद्यासे सब जीव कल्पित हैं ॥

नयावदेतां तनुभृन्नरेन्द्र विधूय मायां
वयुनोदयेन ॥ श्रीमद्भा० ५-११-१५ ॥

हे नरेन्द्र, इस मायाको जबतक ज्ञानोत्पत्तिके द्वारा नाश नहीं किया, तब तक जीव देह धारण करता है ॥

पश्यन्बन्धंच मोक्षं च मायामात्रं न
वस्तुतः ॥ श्रीमद्भा० ७-१३-६ ॥

बन्ध मोक्ष, माया मात्र है, तथा विचार करके देखा जाय तो, वास्तवमें बन्ध नहीं और मोक्ष भी नहीं है, यह विवर्त मात्र है ॥

यदिदं मनसावाचा चक्षुर्भ्यां श्रवणादिभिः नश्वरं गृह्यमाणं च विद्धि मायामनोमयम् ॥

श्रीमद्भा० ११-७-७ ॥

जो यह विश्व मन, वाणी नेत्र श्रोत्र आदि इन्द्रियोंसे ग्रहण किया जाता है, उस सबको नाशवान् तथा मनसे ही कल्पित माया स्वरूप जानना ॥

माया संकेतरूपं तदभिज्ञानं भ्रमात्मकं॥

ब्रह्म वै० पु० कृ० खं० उ० ७४-७ ॥

माया संकेत मात्र है उसका यथार्थ ज्ञान होना ही भ्रमरूपकी निवृत्ति है ॥

मायाजालेन मोहितः सर्वं मायामयम्॥

वराह पु० ९०-१२५-१७० ॥

मायाजालसे सब जगत मोहित है। सब जगत् माया स्वरूप है ॥

नह्येषा प्रकृतिर्जैवी विकृतिश्च विचारतः ॥ विकारोनैव मायैषा सदसद्व्यक्तिवर्जिता ॥

लिंग पु० ८७-१३ ॥

यह माया जीवका मूल स्वरूप नहीं है, और यह कार्य भी नहीं है, सत् असत् भेद रहित, अनिर्वचनीय है ॥

अहो माया जगत्सर्वं मोहयत्येतदद्भुतं ॥

ब्रहन्नारदीय पु० पू० ६-२८ ॥

यह माया सब जगत् को मोहित करती है, यही आश्चर्य-मय है, सो ही अद्भुत घटना है ॥

नासद्रूपा न सद्रूपा माया नैवोभयात्मिका ।
अनिर्वाच्या ततोज्ञेया भेदबुद्धिप्रदायिनी ॥

बृहन्नारदीय पु० पूर्वार्ध ३३-६९ ॥

यह माया सत् नहीं और असत् नहीं, तथा दोनों प्रकारके रूपवाली भी नहीं है, उससे विलक्षण भेदबुद्धि करनेवाली और अनिर्वचनीय रूप जानना ॥

शुक्त्यां रजतबुद्धिश्च रज्जुबुद्धिर्यथोरगे ॥ मरीचौ जलबुद्धिश्च मिथ्यैव नान्यथा ॥ शश-विषाणमेवैतज्ज्ञानं संसार एवच ॥ मायाजाल-मिदं सर्वं जगदेतच्चराचरं ॥ मायामयोऽयं संसारो ममता लक्षणो महान् ॥

स्कन्द पु० १ (केदार खण्ड १) ३३-३७-७३ ॥

शुक्तिमें चाँदीबुद्धि, रज्जुमें सर्पबुद्धि, और मृग तृष्णा में जलबुद्धि, तथा शशाके कानमें सींगबुद्धि जैसे ये सब मि-

थ्या ज्ञान है, तैसे ही संसारमें सत्यबुद्धि होना ही भ्रम ज्ञान है, यह सब प्रपंच मायाजालरूप मिथ्या है, यह जगत् तृष्णा लक्षणवाला मायारूप महान् अज्ञान है ॥

असच्च सदसच्च ॥ म० भा० १३-१४-२४१ ॥

सत् नहीं और असत् नहीं तथा उभयात्मिक सत् असत् भी नहीं किंतु अनिर्वचनीय है ॥

अपां फेनोपमं लोक विष्णोर्मायाशतैर्वृतं॥
चित्रभित्ति प्रतीकाशं नलसारमनर्थकम् ॥
तमः श्वभ्रनिभं दृष्ट्वा वर्षबुद्बुदसंनिभम् ॥
नाशप्रायं सुखाद्धीनं नाशोत्तरमिहावशम् ॥

म० भा० शान्तिपर्व १२ अध्याय ३०१ श्लोक ५९-६० ॥

व्यापक प्रजापतिकी सहस्रों मायाके भेदोंसे घिरा हुआ, यह संसार जलके फेनकी समान, भींत पर रचे हुए चित्रकी समान, नल नामके पोले घासके समान सार रहित, नाशवान है, और अन्धकार युक्त गुहाके समान, तथा वर्षाकाल के जलके बुद्बुदोंके तुल्य, क्षण २ में उत्पत्तिनाश होनेवाला सुखरहित, और परिणाममें नाशवान तथा पराधीन है ॥

ज्ञानाधिष्ठानमज्ञानं त्रींल्लोकानधितिष्ठति ॥ विज्ञानानुगतं ज्ञानमज्ञानेनोपकृष्यते ॥

म० भा० १२-२१५-२५ ॥

ज्ञानस्वरूप रुद्र अधिष्ठानमें अज्ञानरूप माया अधिष्ठित होकर, तीनों लोकोंके ऊपर विराजती है। जाग्रतादि तीनों अवस्थाओंमें अज्ञानात्मक माया व्यापक है। अनन्त शक्तिस्वरूप रुद्रसे विकास पानेवाली मायामें चिदाभास अज्ञानके वशमें होता है॥

तस्य मायापिद्धांगा नष्टज्ञाना विचेतसः ॥

म० भा० १२-२१३-३ ॥

उस महेश्वरकी मायासे जिनकी इन्द्रियें जड होगई हैं, तथा जिनका ज्ञान नष्ट हो गया है॥

तस्यां स भगवानास्ते विदधद्वेव मायया ॥

म० भा० २-११-१६ ॥

उस सत्यलोक सभामें वह ज्ञान, वैराग्य, धर्म, यश सम्पन्न भगवान् ब्रह्मा समष्टिरूपसे, रुद्रमाया को स्वीकार करके विराजमान है॥

तस्य मायया मोहितः ॥

लिंग० पु० पू० ४९-९ ॥

उस देवकी मायासे व्यष्टि उपाधिक जीव मोहित है॥

मायया देव सूक्ष्मया तव मोहितः ॥

म० भा० १२-२८४-१८४ ॥

दक्षने कहा हे रुद्रदेव, मैं आपकी सूक्ष्म मायासे मोहित हो गया हूँ॥

पश्य मायाप्रभावोऽयमीश्वरेण यथाकृतः ॥ ये हन्ति भूतैर्भूतानि मोहयित्वात्मना यथा ॥
म० भा० ३-३०-३२ ॥

अघटित-घटना-पटीयसी, रुद्रकी अद्भुत मायाका प्रभाव तो देख, अपनी मायासे प्राणी मात्रको मोहित करके, देहाभिमानी प्राणियों के द्वारा उन प्राणियों का नाश करता है, आप स्वतंत्र हुआ सम्पूर्ण कर्म प्राणियोंसे ही कराता है ॥

देव देवस्य मायया ॥
म० भा० १३-१४-२४९ ॥

महादेवकी मायासे सब जगत् उत्पन्न हुआ है ॥

तमः ॥
म० भा० १२-१९-१३ ॥

तम नाम माया का है ॥

नीहारेण हि संवीतः ॥ म० भा० १२-२९८-२७ ।

मायासे ढका ॥

योनिजालं ॥
म० भा० १२-३१८-९१ ॥

जगत् उत्पत्तिकर्त्ता मायाजाल है ॥

गुणजालं ॥
म० भा० १२-३०७-१५ ॥

मायाजाल कपट, छल, मिथ्या, इन्द्रजाल, ज्ञान, प्राण, बुद्धि, विष्णु, प्रकृति, अव्यक्त, अव्याकृत, तम, नीहार, गुहा, ब्रह्म, गुण, सत् असत् विलक्षण अनिर्वचनीय माया, कुहक,

शक्ति, अविद्या, वरुण, आकाश; आप, सलिल आदि नाम मायाके पर्य्यायवाची शब्द हैं ॥

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्
अतर्क्यमविज्ञेयंप्रसुप्तमिव सर्वतः ॥

मनुस्मृति० १-५ ॥

यह सब जगत् उत्पत्तिके पहिले सुषुप्तिके समान सर्वत्रसे दुर्विज्ञेय निर्विशेष बीजरूप तम था, यह तम अनुमान आदि चिह्न रहित अगम्य था ॥

ततः स्वयम्भूर्भगवान व्यक्तोऽव्यञ्जयन्निदं ॥
महाभूतादि वृत्तौजाः प्रादुरासीतमोनुदः ॥

मनु० १-६ ॥

उस महाप्रलयके अनन्तर तथा जगत् रचनाके कुछ पूर्व, इस विश्वकी उत्पत्तिके लिये, सर्वशक्तिसम्पन्न अद्वैत सुख स्वरूप महेश्वरने, भूतादि समूहकी वृद्धि करने के लिये, अपनी एक देशवर्ती वीज सत्ताको, जगत के आकार में आनेके लिये, मैं एक हूँ यही बीज शक्तिका क्षोभक है, उस संकल्पीमें संकल्प क्षुब्धित हुआ अर्थात् वहुत होऊँ यही संकल्प क्रियाके रूपमें विकास करने लगा, वह प्रलयका अन्त और जगत् रचना का आदि था ॥

पुरुषः प्रकृतिर्बुद्धिर्विषयाश्चेन्द्रियाणिच॥
अहंकारोऽभिमानश्च समूहो भूतसंज्ञकः ॥

म० भा० १२–२०५–२४॥

समष्टि आत्मा पुरुष, और अव्यक्त, महान् (सूत्रात्मा) अहंकार (विराट्) पंचभूतके सहित शब्दादि विषय, तथा, दिशा, सूर्य आदि अधिदेव और सब ज्ञानकर्मेन्द्रिय समूहका नाम भूत है ॥

योऽसावतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः ॥ सर्वभूतमयोऽचिन्त्यः सएवस्वयमुद्बभौ ॥

मनु० १–७॥

जो एकरस अखण्ड अनुभवगम्य सूक्ष्म, अनादि सर्वप्राणिस्वरूप, मैं एक मायिक हूँ बहुत होऊँ, वह स्वयं संकल्पी बना, उस संकल्पीकी क्रियाशक्ति कारणके आकरमें आनेके लिये तैयार हुई। अर्थात् स्वयं मायिक विवर्तरूपसे विकास होनेके लिये सन्मुख हुआ ॥

सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षु र्विविधाः प्रजाः ॥ अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥

मनु० १–८॥

उस मायिकने अपनी संकल्पक्रिया देहसे नाना प्रकारकी प्रजाओंको रचनेकी इच्छा की । वह क्रिया अव्याकृतके रूपमें

प्रगट हुई । सबके पहिले इस अव्याकृत कारणको प्रगट किया, फिर उस प्राण शक्तिमें बहु संकल्पमय बीजको स्थापन किया ॥

तदण्डमभवद्धमं सहस्रांशु समप्रभम् ॥
तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥
मनु० १-९ ॥

जो जड संकल्प क्रियाकी अभिव्यक्ति अव्याकृत के सहित चेतनका बहु आत्मक चिदाभासका एक तादात्म्य सम्बन्ध हुआ, यह सम्बन्ध कारण अवस्थासे सूक्ष्म अवस्थामें प्रगट होनेके लिये सन्मुख हुआ । वह अवस्थारूप तेज करोडों सूर्यके समान प्रकाशवाला (अण्ड) अवकाश स्थान, सत्यलोक रूप आकाश हुआ । उस अव्याकृत गुहामें समस्त लोकोंके सहित सब प्राणियोंका पितामह, अर्थात् स्वयं महेश्वर ही ब्रह्मारूपसे प्रगट हुआ । अव्याकृत का प्रथम विकास हिरण्यगर्भ सूक्ष्मदेह प्रगट हुई, उस देहमें महेश्वर ब्रह्मा नामसे विराजमान हुआ ॥

निष्प्रभेऽस्मिन्निरालोके सर्वतस्तमसावृते ॥
बृहदण्डमभूदेकं प्रजानांबीजमव्ययं युगस्यादौ निमित्तं तन्महद्दिव्यं प्रचक्षते ॥ यस्मिन्संश्रुयते सत्यं ज्योतिर्ब्रह्म सनातनम् ॥ अद्भुतंचाप्यचिन्त्यंच सर्वत्र समतां गतं अव्यक्तं कारणं

सूक्ष्मं यत्तत्सदसदात्मकम् ॥ यस्मात्पितामहो-
जज्ञे प्रभुरेकः प्रजापतिः ॥

म० भा० १-१-२९...३२ ॥ मार्कण्डेय पु० १०१-२१...२३॥

इस विश्वके पूर्व सर्वत्र तम ही रूप अव्यक्त था, उस सृष्टिके आरम्भमें सब प्रजाओंका विभागरहित बीजरूप महातेजोमय (अण्ड) एक अव्याकृत प्रगट हुआ। जो अव्यक्त कारण सूक्ष्म है सो ही सत् असत् स्वरूप अनिर्वचनीय है, ऐसा वेदवेत्ता कहते हैं। जिसमें न उत्पन्न हुआ, उत्पन्न हुवासा प्रतीत होवे सो ही अद्भुत, अनादि, अचिन्त्य, सर्वव्यापक सत्य स्वरूप रुद्र है, जिस अव्याकृतसे समष्टि स्वरूप समर्थ प्रजापति पितामह प्रगट हुआ है ऐसा हमने सुना है॥

आसीत् तमोमयंसर्वमप्रज्ञातमलक्षणं॥
तत्र चैको महानासीद्रुद्रः परम कारणं ॥
आत्मना स्वयमात्मानं संचिन्त्य भगवान्
विभुः ॥ मनः संसृजते पूर्वमहंकारंच पृष्टतः॥
अहंकारात् प्रजानाति महाभूतानि पंच च ॥
तस्माद्भगवतो ब्रह्मा तस्माद्विष्णुरजायत ॥

भविष्य पु० २-२-२-३-४-६ ॥

विश्वरचनाके पूर्व सर्व चिह्नरहित, दुर्गम्य अवस्थावाला तम ही था, उस महाप्रलयमें, एक महा कारण उत्तम रुद्रही

था। व्यापक भगवान रुद्रने स्वयं अपनेको अव्याकृतके द्वारा श्रेष्ठ विचारकर प्रथम ब्रह्माको रचा, फिर पीछेसे विराट् को ब्रह्माने रचा, उस विराट्से पंचमहाभूतों को रचा। मन नाम ब्रह्मा का है, और अहंकार नाम विराट् का है। उस रुद्र भगवान् से ब्रह्मा, और ब्रह्मासे (विष्णु) विराट् हुआ एसा जो जानता है, वही उत्तम जानता है॥

तम एव खल्विदमग्रआसीत्॥ तस्मिँ-स्तमसि क्षेत्रज्ञ एव प्रथमोऽध्यवर्तत इति॥

यह प्राचीन सांख्यसूत्रका कर्ता पंचशिखाचार्य भीष्मके वहुत पहिले हुआ है। यह सूत्र इस समय सांख्यकारिकाकी माठर (बादरायण) वृत्तिके अन्तमें है। इस विश्वके पहिले निश्चय, तमही था। उस तममें सबके पहिले सर्वज्ञ समर्थ क्षेत्रज्ञ प्रगट हुआ॥

संमोहकं तमो विद्यात्कृष्णमज्ञानसंभवम्॥

म० भा० १२-२१२-२१॥

जो (कृष्णं) अन्धकारके समान है, उस अविद्यारूप तमको मोहका उत्पन्न करनेवाला जाने॥

तमसोऽन्ते महेश्वरः॥ म० भा० १२-२१६-१६॥

मायासे रहित तुरियरूप महेश्वर है॥

अव्यक्तं क्षेत्रमित्युक्तं ब्रह्मा क्षेत्रज्ञमुच्यते॥

ब्रह्माण्ड पु० ३-३७॥

अव्यक्तेच पुरे शेते पुरुषस्तेनचोच्यते ॥

ब्रह्म पु० २८-६८ ॥

अव्यक्तको क्षेत्र कहा है, और ब्रह्माको क्षेत्रज्ञ कहा है। अव्याकृतरूप ब्रह्मलोक पुरमें समष्टिरूपसे विराजमान है इसलिये ब्रह्माको पुरुष कहा है ॥

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः॥ ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥

मनु० १-१० ॥

व्यापक अव्याकृतको नार इस नामसे कहा है, क्योंकि नेता अधिष्ठान रुद्रसे अव्यक्त प्रगट हुआ है। जो विद्यमान जगत् है, उसकी उत्पत्तिके पहिले सो अव्याकृत इस ब्रह्माका भू पद्म–आसन–ब्रह्मलोक आदि नामवाला निवास स्थान हुआ, इस हेतुसे ही ब्रह्मा नारायण कहा जाता है ॥

ब्रह्मा ब्रह्मस्वरूपं ॥

ब्रह्म वै० पु० पू० खं० उ० ८६-४९ ॥

ब्रह्मा ब्रह्मस्वरूप है ॥

ब्रह्मा नारायणाख्यस्तु सचाकाशे भवे-त्स्वयं ॥ व्यक्ताऽव्यक्तो महादेवस्तस्य सर्वमिदं जगत् ॥

ब्रह्माण्ड पु० ६-६६ ॥

ब्रह्मा नारायण नामसे प्रसिद्ध है सो ही आकाशरूप अव्य-क्तमें स्वयं प्रगट हुआ और प्रगट अप्रगट महादेव ब्रह्मा है, उस ब्रह्माका यह चराचर जगत् व्यष्टिस्वरूप है ॥

नारायणाख्यो भगवान् ब्रह्मलोक पिता-
महः ॥ विष्णु पु० १-३-३ ॥

भगवान् ब्रह्म लोकपितामह ब्रह्मा नारायण नामसे प्रसिद्ध है ॥

स ईश्वरो व्यष्टिसमष्टिरूपोऽव्यक्तस्व-
रूपः प्रकटस्वरूपः ॥ विंष्णु पु० ६-५-८६ ॥

वह ब्रह्मा समष्टिव्यष्टि स्वरूप है, वही अप्रगट और प्रगट स्वरूप है ॥

हिरण्यगर्भं पुरुषं प्रधानं व्यक्तरूपिणं ॥
हिरण्यगर्भं कर्ताऽस्य भोक्ता विश्वस्य पूरुषः ॥
लिंग पु० उ० ७-१६ ॥

अव्याकृतका प्रथम मुख्य व्यक्तस्वरूप ब्रह्मा पुरुषको जानो, इस संसारकी उत्पत्ति आदि कर्ता और भोक्ता पुरुष ब्रह्मा है ॥

अव्यक्तात्पूर्वमुत्पन्नो महानात्मा महा-
मतिः ॥ म० भा० १४-४०-१ ॥

महात्मा महामति, ब्रह्मा अव्यक्तसे प्रथम ही प्रगट हुआ ॥

ब्रह्मा प्रभुरेकाकी तिष्ठति ब्रह्मचारी ॥
म० भा० १२-१९०-१ ॥

सर्वशक्तिसम्पन्न अद्वितीय परिणामरहित समष्टिरूपसे ब्रह्मा विराजमान है ॥

अनादिनिधनो ब्रह्मा नित्यमक्षय एवच॥

ब्रह्मपुराण ५३-२४ म० भा० १२-३१२-२ ॥

ब्रह्मा सबका कारण परिणामरहित नित्य अनादि स्वरूप है ॥

धर्मज्ञानं तथैश्वर्य्यं वैराग्यमितिसात्विकं ॥

वराह पु० १८७-९० ॥

धर्म, ज्ञान, यशआदि ऐश्वर्य्य, वैराग्य ये चारों सात्विक हैं। ब्रह्माके अप्रतिहत ये चारों जन्मसिद्ध ऐश्वर्य हैं ॥

ब्रह्मा विश्वसृजोधर्मो महानव्यक्तमेवच॥
उत्तमां सात्त्विकीमेतां गतिमाहुर्मनीषिणः ॥

मनु० १२-५० ॥

जगत् रचनेवाला, रचकर धारण पोषण करनेवाला, सूत्रात्मा देहधारी ब्रह्मा, और अव्याकृत ये दोनों सबके मूल कारण उत्तम सात्त्विक स्वरूपवाले हैं, ऐसा वेदज्ञ महर्षि कहते हैं ॥

रुद्रो नारायणश्चैव सत्वमेकं द्विधाकृतं॥
लोके चरति कौंतेय व्यक्तिस्थं सर्वकर्मसु॥

म० भा० १२-३४१-२७

कृष्णने कहा हे अर्जुन, एक (सत्त्वं) आत्मस्वरूपके माया द्वारा दो भाग किये, एक माया अधिष्ठान महेश्वर, और दूसरा अव्याकृतमें अधिष्ठित क्षेत्रज्ञ ब्रह्मा हुआ, जो ब्रह्माण्डमें भिन्न २ दैत्य, देवादि स्वरूपसे विचरता हुआ सब कर्मोंमें प्रत्येक व्यक्तिरूपसे स्थित है ॥

सत्त्वस्य ॥ म० भा० १२-१३-६ ॥

सत्त्वका अर्थ आत्मा है ॥

एको रुद्रो न द्वितीयः ॥

स्कन्द पु० उ० ४-८७-८९ ॥

एक ही अद्वितीय रुद्र है, द्वैतको स्थान नहीं है ॥

प्रजापतिपतिर्ब्रह्मा पूर्वेषामपिपूर्वजः ॥

विष्णु पु० १५-५-५ ॥

प्रजापतियोंका भी पति है, और पूर्वजोंका भी पूर्वज ब्रह्मा है ॥

सत्वंब्रह्मा रजोविष्णुर्भजेन्महेश्वरस्तमः ॥

पद्म पु० ५-१०८-६ ॥

अव्याकृतरूप तमका अधिष्ठान महेश्वर है, समष्टि आत्मा सत्वरूप ब्रह्मा है, और विविधरूपसे विराजमान (विष्णुः) विराट् रजोरूप है ॥

सत्वंबह्मा रजोविष्णुः ॥

स्कन्द पु० ७-१०५-६० ॥

विद्यास्वरूप ब्रह्मा है, और अविद्यारूप विराट् है ॥

शान्तंशिवं सत्वगुणं ॥

पद्म पु० ५-१०९-६८ ॥

शिव (सत्व) तुरिय आत्मा (गुणं) मूलस्वरूप शान्त है ॥

सत्वस्थो भगवान् ब्रह्मा ॥

पद्म पु० १-१४-८८॥

ब्रह्मा समष्टि आत्मरूपसे स्थित शान्त स्वरूप है ॥

विराजमसृजद्ब्रह्मा सोऽभवत्पुरुषो विराट् ॥ सम्राट् स शतरूपस्तु वैराजस्तु मनुः स्मृतः ॥ द्विधाकृत्वा स्वकं देहमर्द्धेनपुरुषोऽभवत् ॥ अर्धेन नारी सा तस्य शतरूपा व्यजायत ॥

ब्रह्माण्ड पु० ५-३३-३४ ॥

ब्रह्माने विराट्को रचा, सो पुरुष विराट् प्रगट हुआ, सो ही शतरूप सम्राट् हुआ, अर्थात् अनन्त स्वरूप हुआ, सो ही मनुवैराजरूप विराट्का पुत्र हुआ, उस मनुरूप विष्णु वैराजने अपनी देहके दो भाग करके विभक्त किया, आधेसे पुरुष हुआ, और उस मनुके आधे देहसे शतरूपा नारी प्रगट हुई। जो एक मनु था सो ही स्त्री और मनु स्वायम्भुव मनु हुआ ॥

अयं लोकस्तु वै सम्राडंतरिक्षं विराट् स्मृतं ॥ स्वराडसौ स्मृतो लोकः ॥

ब्रह्माण्ड पु० १६-१७ ॥

यह भूमि लोक ही सम्राट् है और अन्तरिक्ष ही विराट् है, तथा वह द्युलोक ही स्वराड् है ॥

प्रकृतिर्भूतधात्री सा कामाद्वै सृजतः प्रभोः ॥ सा दिवं पृथिवीं चैव महिम्ना व्याप्य सुस्थिता ॥ ब्रह्मणः सा तनुः पूर्वा दिवमावृत्यतिष्ठतः ॥ ब्रह्माण्ड पु० ५-३३-३४ ॥

ब्रह्माकी स्वाभाविक शक्तिरूप सावित्री है, उसने ब्रह्माकी इच्छा से सृष्टि रची। ब्रह्माका जो प्रथम देहरूप सावित्री है, वह महिमासे व्यापक होकर, भूमि, अन्तरिक्ष, द्यौ को सर्वत्रसे घेर कर सुन्दर अग्नि, वायु, सूर्यमण्डल रूपसे स्थित हुई, उन अग्नि आदिमें स्वयं चेतन देवरूपसे विराजमान हुआ ॥

विराजमसृजद्विष्णुः सोऽसृजत्पुरुषं विराट् ॥ पुरुषं तं मनुं विद्यात्तस्यमन्वंतरं स्मृतं ॥

ब्रह्माण्ड पु० १-५५ ॥

(विष्णुः) ब्रह्माने विराट्को रचा, उस विराट्ने पुरुषको रचा, उस पुरुषको मनु जानो और उस मनुका ही मन्वंतर कहा जाता है ॥

विराजमसृजद्ब्रह्मा सो भवत्पुरुषो विराट् ॥ सम्राट् च शतरूपा वैराजः स मनुः स्मृतः ॥ स वैराजः प्रजासर्गं ससर्ज पुरुषो मनुः॥ प्राणो दक्ष इति ज्ञेयः संकल्पो मनुरुच्यते ॥

लिंग पु० ७०-३७३-१७४-१७७ ॥

ब्रह्माने विराट्को रचा, सो विराट् पुरुष हुआ, और सम्राट् शतरूपा हुई, तथा विराट्का पुत्र मनुवैराज हुआ। वह वैराज पुरुष मनु प्रजाकी सृष्टिको रचता है। प्राण ही दक्ष प्रजापति है ऐसा जानना, और संकल्प ही मनु कहा जाता है। प्राणरूप विराट् से मनरूप मनु प्रगट हुआ, तथा मनसे वाणीरूप पुत्री प्रगट हुई, वह मन और वाणीने असंख्य सृष्टि रची॥

अयंमनो विष्णुर्नामभविष्यति ॥

वराह पु० १७-७१ ॥

यह मनरूप विराट् विष्णु नामवाला होयेगा ॥

मनोर्नाम मनुत्वं ॥ वराह पु० ३१-१ ॥

मनरूप विराट् ही मनुनाम को प्राप्त हुआ ॥

अव्याकृतं प्रधानं हि तदुक्तं वेदवादिभिः॥ हिरण्यगर्भः प्राणाख्यो विराट् लोकात्मकः स्मृतः ॥

लिंग पु० २४-१६ ॥

अव्याकृतको प्रधान, सूत्रात्माको प्राण कहा है वेदवेत्ताओंने, और तीनलोकको विराट् स्वरूप कहा है। समष्टि प्राणाभिमानी ब्रह्मा, मनअभिमानी अथर्वा प्रजापति है, और मनके संकल्पाभिमानी मनु है, तथा वाणी अभिमानी सावित्री, उषा, सरस्वती, शतरूपा हैं ॥

बृहत्वाद्विष्णुरुच्यते ॥ म० भा० ५-७०-३ ॥

महान् होनेसे विष्णु कहा है ॥

ब्रृहत्वाच्चस्मृतो ब्रह्मा परत्वात्परमेश्वरः ॥

कूर्म पु० ४-६० ॥

बडा होनेसे ब्रह्मा कहा है, और सत्यलोकवासी होनेसे परमेश्वर कहा है ॥

विष्णुनापरमेष्ठिना ॥ म० भा० ३-१०३-१२ ॥

उत्तम ब्रह्मलोक स्थानमें निवास करनेसे व्यापक ब्रह्मा है ॥

एकः स्वयम्भुर्भगवानाद्यो ब्रह्म सनातनः

म० भा० १२-२८०-३ ॥

अद्वितीय आदी सनातन स्वयंभू भगवान् ब्रह्मदेव है ॥

ब्रह्मा स भगवान्नुवाच परमेश्वरः ॥

म० भा० १३-७४-१६ ॥

ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ म० भा० १३-८५-८७ ॥

उस परमेश्वर भगवान् ब्रह्माने कहा, परमात्मा ब्रह्माकी कृपासे ॥

सत्यं ॥ म० भा० १-३७-५॥

ब्रह्मा ही सत्यरूप है ॥

महेश्वरः परोऽव्यक्तादण्डमव्यक्तसंज्ञितं ॥
अण्डाज्जज्ञेविभुर्ब्रह्मा सर्वलोक नमस्कृतः ॥

ब्रह्माण्ड पु० १-५-१०८ ॥ लिंग पु० ७०-६१ ॥

अव्यक्तसे परे महेश्वर है, अव्याकृतका अण्ड नाम है, उस अव्यक्त अण्डसे सबलोकपूज्य व्यापक ब्रह्मा प्रगट हुआ ॥

पंचविंशतितमोविष्णुः ॥ चतुर्विंशतितमोऽव्यक्तः ॥ म० भा० १२-३०२-३८ ॥

अव्यक्त चौवीसवाँ तत्त्व है और (विष्णु) जीव पुरुष पच्चीसवाँ है ॥

अविद्यामाहुरव्यक्तं सर्गप्रलयधर्मि वै॥
सर्गप्रलयविर्मुक्तां विद्यां वै पंचविंशकः ॥

म० भा० १२-३०७-२ ॥

अविद्या को अव्यक्त कहते हैं, वह अविद्या उत्पत्ति प्रलय धर्मवाली है। और उत्पत्तिप्रलय धर्मसे रहित विद्याको पच्चीसवाँ पुरुष कहा है ॥

षड्विंशं विमलंबुद्धमप्रमेयं सनातनं ॥
सततं पंचविंशञ्च चतुर्विंशऽञ्च वुध्यते ॥
म० भा० १२-३०८-७ ॥

छब्बीसवाँ निर्मल ज्ञानस्वरूप अप्रमेय अविनाशी रुद्र है। वह रुद्र निरंतर पच्चीसवें जीवको ओर चौवीसवें अव्यक्तको जानता है ॥

व्यक्तं विष्णुस्तथाऽव्यक्तं पुरुषः काल एवच ॥ गरुड पु० २५-४ ॥

व्यष्टि देह उपाधिक विष्णु देह व्यापी जीव है, और समष्टिदेहव्यापी काल पुरुष–ब्रह्मा है ॥

आत्माक्षेत्रज्ञ इत्युक्तः संयुक्तः प्राकृतैर्गुणैः ॥ तैरेवतुविनिर्मुक्तः परमात्मेत्युदाहृतः ॥
म० भा० १२-१८७-२३ ॥

मायाके चौवीश तत्त्वोंसे संयुक्त आत्मा ही क्षेत्रज्ञ है ऐसा कहा है, उनसे निर्मुक्त हुआ ही क्षेत्रज्ञ परमात्मा है, ऐसा कहा है ॥

मायाविष्टस्तथा जीवो देहोऽहमिति मन्यते ॥ मायानाशात्पुनः स्वीयंरूपं ब्रह्माऽस्मि मन्यते ॥ गरुड पु० ३०-२३६ ॥

मायाबद्ध हुआ जीव देहादिके सुख दुःख धमको अपना मानता है, मैं देह हूँ, और मायाके नाश होनेसे फिर अपने रूपको जानता है तब मैं ब्रह्म ँ ऐसा ध्यान करता है। व्यष्टि उपाधिक जीव और समष्टि उपाधिक ब्रह्मा है ॥

तस्मिन्नण्डे सभगवानुषित्वा परिवत्सरम् ॥ स्वयमेवात्मानो ध्यानात् तदण्डमकरोद्विधा ॥

मनु० १-१२॥

उस अव्यक्त अण्डेमें विकास होने पर ब्रह्मा भगवानने निवास किया, फिर स्वयं ही अपने चेतनरूपके चिन्तवनसे, ब्रह्माने उस अव्याकृतके कार्य जड और क्रियारूपसे दो भाग किये ॥

ताभ्यां स शकलाभ्यां च दिवंभूमिञ्च निर्म्ममे ॥ मध्येव्योमदिशश्चाष्टावपांस्थानं चशाश्वतम् ॥

मनु० १-१३॥

उस ब्रह्माने उस कार्यक्रियामय खण्डोंसे द्यौभूमिको रचा। उन दोनोंके बीचमें आकाशको रचा। उस अन्तरिक्षमें आठ दिशा और जलका भण्डार समुद्र, तथा मेघरूप चिरस्थायी स्थान रचा। अव्यक्तकी सूक्ष्म अवस्थाके चार भेद, सत्यलोक, तपलोक, जनलोक, महर्लोक हैं, और स्थूल विराट् अवस्थाके

तीनभेद—द्युलोक, अन्तरिक्ष, भूमि हैं, फिर इन तीनों लोकोके अभिमानी भूमिके अग्निको, आकाशके वायु—चन्द्रमाको—द्युलोकके सूर्यको रचा ॥

अग्निवायुरविभ्य स्तुत्रयं ब्रह्म सनातनं ॥
दुदोह यज्ञसिद्धयार्थं मृग्यजुःसामलक्षणं ॥

मनु० १–२३ ॥

फिर ब्रह्माने यज्ञ उपासना ज्ञान क्रियाकी सिद्धिके लिये, अग्नि, वायु, सूर्यमेंसे क्रमपूर्वक ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और चन्द्रमासे अथर्वणवेदके सहित तीनो अनादि (ब्रह्म) वेदको प्रगट किया ॥

फिर ब्रह्माने महाप्रलय पूर्वके लय हुए जीवोंको कर्मानुसार प्रगट किये, ब्राह्मणको मुखसे, क्षत्रियको वाहुसे, वैश्यको मध्य-भाग जंघासे, शूद्रको पगसे प्रगट किये। ब्रह्माके एक दिनमें चौदह मनु और इन्द्र—तथा सप्तऋषि होते हैं, एक मनुकी आयु तीसकरोड, सडसठलाख, वीश हजारकी होता है। एक मनुके दूसरे मनुके वीचमें खण्डप्रलय सत्तावीस हजारकी होती है, इस प्रकार प्रत्येक मनुका अन्तर जानना ॥

यदा स देवो जागर्ति तदेदं चेष्टते जगत् ॥
यदास्वपिति शान्तात्मा तदा सर्वं निमीलति ॥

मनु० १–५२ ॥

जिस कल्परूप रात्रिके अन्तमें ब्रह्मा जागता है, उस समय जगत् ब्रह्मासे उत्पन्न होकर, आहार, विहार आदि चेष्टामें प्रवृत्त होता, और जब अपने दिनरूप कल्पके अन्तमें इस सब जगत् का नाश करता है, तब उस विश्वको अपनेमें लय करके, सर्व उपाधिरहित समष्टि व्यापकरूप ब्रह्मा सोता है ॥

निराकाशे तोयमये सूक्ष्मे जगतिगह्वरे ॥

हरीवंश पु० ३-११-३ ॥

पंचभूतादि आकाश रहित अव्याकृतमय बीज अवस्थारूप गुहामें ब्रह्मा सोता है ॥

मायाशय्यां ॥ विष्णु पु० ६-४-८ ॥

मायाऽऽकाशे ॥ अग्नि पु० १०१-९ ॥

ब्रह्मा बीज सत्ता विकारी रूप शेषशय्या पर सोता है ॥ मायारूप आकाशमें सोता है ॥

सहस्रशीर्षा पुरुषो रुक्मवर्णो ह्यतीन्द्रियः ॥ ब्रह्मा नारायणाख्यस्तु सुष्वाप सलिले तदा ॥

ब्रह्माण्ड पु० ५-१४० ॥ लिंग पु० ७०-१७ ॥ कूर्म पु० ७-३ ॥
शिव पु० ७-११-१३ ॥

ब्रह्मा अपने समष्टिस्वरूपमें कल्पके अन्त समय व्यष्टि जीवों को लय करता है, जीवोंके भोगनेसे जे कर्म संस्कार शेष रहे

वे ही कर्त्ताओंके भेदसे असंख्य फणयुक्त कर्मराशी ही शेष-नाग है, अनन्ताकाशव्यापी सर्व उपाधिरहित, शुद्ध तुरीय ब्रह्मरूप क्षीरसागरके एक देशमें कर्मसमूहात्मक शेप पर, अनन्त व्यष्टि प्राणियोंका, एक समष्टिस्वरूप होकर शयन करता है। कर्मफल भोग रहित होना ही सोना है। यह समष्टि पुरुष ब्रह्मा अनन्तप्राणिभेदसे असंख्य शिर, नेत्र हाथ चरणवाला है। और सृष्टिके सौन्दर्य आदि ऐश्वर्य्य भोगोंका स्मरण करने-वाला चिह्न ही समष्टि ऐश्वर्य है। यह पुरुष निद्रासे जगत्के आकारमें जाग्रत होगा, तब मैं ऐश्वर्य्य भोगनेमें आऊँगा, प्रलय अवस्थामें अभोग्य होनेसे चरणरूप निरादरके समान बैठा हूँ। व्यष्टि प्राणिसमूहके विकारी इन्द्रियोंके धर्मसे रहित, अतीन्द्रिय समष्टि पुरुष निर्मल ब्रह्मा नारायण नामसे प्रसिद्ध है। अव्या-कृत व्यापक कारणमें जब वह सोता है, तब कल्प प्रलय होता है। शौनक और सूत पुत्रके, तथा जनमेजयके सर्पयज्ञके कुछ कालके पीछे सात्वत-भागवत वैष्णव नामका अद्वैतवादी मत प्रचलित हुआ, उसने ब्रह्माके प्रथम नारायण नाम आदि महि-माको, धर्म पुत्र नारायणमें जोड दिया और सब वैदिक आदि कर्मोंके स्थानमें भक्तिमार्ग ब्रह्मा उपासक प्रह्लाद ध्रुवको विष्णु-भक्त बना दिया। इसलिये ही ब्रह्माके स्थानमें सर्व नवीन अष्टा-दश पुरणोंमें नारायण-विष्णु, कृष्ण, बलराम, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध आदि नाम भरे पडें हैं। प्राचीन पुराण याज्ञवल्क्य, भीष्म, धृत-राष्ट्रने पढे थे। उस समय युधिष्ठिर, बलरामका जन्म भी नहीं

था। उन प्राचीन पुराणोंके बहुत कुछ श्लोक और सृष्टि प्रलय-मनु आदि सप्त ऋषियोंकी कथा भी नवीन पुराणोंमें है, जो वेदके अनुकूल श्लोकादि प्रमाण अष्टादश पुराणोंमें मिलते हैं उनको ही मैंने इस ग्रंथमें लिया है ॥

एकार्णवे तु त्रैलोक्ये ब्रह्मा ब्रह्मविदांवरः
भोगिशय्यागतः शेते त्रैलोक्यग्रास बृंहितः ॥
शतं हि तस्य वर्षाणां परमायर्महान्मनः ॥
एकमस्यव्यतीतं तु परार्धंब्रह्मणोनघ ॥ तस्यां-
न्तेऽभून्महाकल्पः पद्मइत्यभिविश्रुतः ॥ द्विती-
यस्यपरार्धस्य वर्तमानस्यवैनृप ॥ वाराहइति
कल्पोयं प्रथमः परिकल्पितः ॥ ब्रह्मा नारायणा-
ख्योऽसौकल्पादौ भगवान् यथा ॥ अतीत
कल्पावसाने निशासुप्तोत्थितः ॥ सत्वोद्रिक्त-
स्तथा ब्रह्मा शून्यं लोकमवैक्षत ॥ तोयान्तः
स महीं ज्ञात्वा निमग्नां वारीसंप्लवे ॥ प्रविचि-
न्त्यतदुद्धारंकर्तुकामः प्रजापतिः ॥ विष्णुरूपं
तदा कृत्वा पृथ्वीं वोढं स्वतेजसा ॥ मत्स्यकूर्मा-
दिकां चान्यां वाराहीं तनुमाविशत् ॥

पद्म पुराण, सृष्टि खण्ड अध्याय ३ श्लोक २०...२९॥

जब एक प्राण–शक्तिरूप समुद्रमें तीन लोकके लय होनेका समय आया तब ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ ब्रह्मा तीन लोकके विस्तार चराचरको भक्षण करके, शेषरूप मायाशय्या पर सो गया। महा संकल्पवाले उस ब्रह्माकी सौ वर्षकी उत्तम आयु है। इस ब्रह्माका एक परार्ध–पचास वर्षका आयु व्यतीत हुआ। हे अनघ, उस पचास वर्षके अन्तमें पद्म नामका महा कल्प हुआ ऐसा हमने सुना है। पचास वर्षका अन्त और इक्यावन वर्षके द्वितीय परार्धका आरम्भ ही वर्तमान कल्पका प्रथम दिन है। पुलस्त्य मुनिने कहा, हे राजन्, यह इक्यावन वर्षका पहिला वराह कल्प कहा है। जैसे भगवान् ब्रह्मा नारायण नामसे प्रसिद्ध हुआ प्रत्येक कल्पके आदिमें सृष्टि रचता है, तैसे ही इस वर्त्तमान कल्पके पहिले व्यतीत पद्म कल्पकी रात्रिसे उठ कर शान्त स्वभावयुक्त समर्थ ब्रह्मा सत्य लोकको अन्य लोकोंसे रहित देखता भया। फिर अव्याकृतके मध्यमें त्रैलोक्य ब्रह्माण्डको अव्यक्त समूहमें सूक्ष्म रूपसे मग्न हुआ जानकर उसके विकासरूप उद्धारकी इच्छावाले ब्रह्मा विचार करके वायु रूपको धारण करके विचरने लगा, फिर सूर्यरूपको धारण करके त्रिलोकीको उसने अपने प्रकाशसे धारण किया, उस प्रजापतिने मत्स्यरूप धारण करके वैवस्वत मनुको दर्शन दिया। यह कथा शतपथ ब्राह्मण और महाभारतके वन पर्वमें है। कूर्मरूप सूर्य है। यही सूर्य प्राणियोंके उत्तम जीवरूप जलको आठ मास पर्यन्त अपनी किरणों द्वारा आहार करता है, इस लिये उसे वराह कहा है। इन सबमें ब्रह्माने प्रवेश किया है॥

अहं प्रजापतिर्ब्रह्म मत्परं नाधिगम्यते ॥
मत्स्यरूपेणयूयंचमयाऽस्मान्मोक्षिता भयात्॥

म० भा० ३-१८७-५२॥

मत्स्यरूपी देवने कहा, हे मनु, मैं ब्रह्मा हूँ, मेरेसे परे और कुछ भी दूसरी वस्तु देखनेमें नहीं आती है। मैं सब वस्तु स्वरूपसे जगत्में व्याप्त हूँ। मैंने महामत्स्यका रूप धरके तुमको इस खण्डप्रलयके भयसे बचाया है॥

सर्व सलिलमेवासीत्पृथिवी तत्र निर्मिता॥
ततः समभवद्ब्रह्मा स्वयंभूर्दैवतैः सह ॥ स
वराहस्ततो भूत्वा प्रोऽजहार वसुंधरां ॥ अस्र-
जच्च जगत्सर्वं सहपुत्रैः कृतात्मभिः ॥

बाल्मीकीय रा० अयोध्या काण्ड २—सर्ग ११०-३-४॥

सब अव्यक्त रूप ही था। उस अव्याकृतमें स्थूल ब्रह्मा-ण्डको रचा। फिर उस त्रैलोक्यकी उत्पत्तिके पीछे स्वयंभू ब्रह्मा देवताओंके सहित अग्नि, वायु सूर्यरूप से प्रगट हुआ। उस सूर्यरूप ब्रह्माने वराह रूपको धारण करके फिर जलकी तरल अवस्थाको घनीभूत करके भूमिका उद्धार किया। त्रिका-लज्ञ पवित्र आत्मा सप्त पुत्रोंके सहित ब्रह्माने इस सब चराचर जगत्को रचा॥

एषोऽत्र भगवान श्रीमान्सुपर्णः सम्प्रकाशते ॥ वराहेणैव रूपेण भगवान् लोकभावनः ॥ म० भा० ३-१४२-५९-६० ॥

यह प्रत्यक्ष शोभायमान् भगवान् सुन्दर किरण समूह स्वरूप सूर्य उत्तम प्रकाशित है। प्राणिमात्र पर दया करनेवाले सूर्यने वराहरूप धारण करके भूमिका उद्धार किया ॥

नराणामयनाच्चापि ततो नारायणः स्मृतः ॥ म० भा० ५-७०-१० कूर्म पु० ४-६२॥

नराणां स्वापनं ब्रह्म तस्मान्नारायणः स्मृतः ॥ त्रिधाविभज्यचात्मानं सकलः संप्रवर्त्तते ॥ ब्रह्माण्ड पु० ५-२७ ॥

कार्यक्रियाका नेता अव्याकृतमें निवास करता है, इस लिये ब्रह्म नारायण कहा जाता है, और सब प्राणियोंका जो निवास स्थान है, सो ही ब्रह्म नारायण है। ब्रह्माने अपनी सूत्रात्मा देहके तीन प्रकारसे विभाग किये, जिन अग्नि, वायु, सूर्यसे सब जगत्की उत्पत्ति, पालन, संहार कार्य भली प्रकार होता है ॥

वायुर्ब्रह्माऽनलोरुद्रो विष्णुरापः प्रकीर्तितः ॥ या देवी स स्वयं विष्णुर्यो विष्णुः

सवै चन्द्रमाः ॥ यः कालः स स्वयं ब्रह्मा यो रुद्रः स च भास्करः ॥ स्कन्द पु० ७-१०५-६१-६८ ॥

वायु ब्रह्मा है, अग्नि रुद्र है, जल विष्णु है, जो उमादेवी है सो ही स्वयं विष्णु है, जो विष्णु है सो ही चन्द्रमा है। जो काल है सो ही स्वयं ब्रह्मा है, जो रुद्र है सो ही सूर्य है। सत्यलोकवासी ब्रह्माकी महिमा अग्निरूप कालका नाम ब्रह्म है; वायुका नाम विष्णु है, और सूर्यका नाम रुद्र है तथा चन्द्रमाका नाम उमा—विष्णु है। जो तीन देव पुराणोंमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश, कहे हैं, वेही, वेदोंमें अग्नि वायु सूर्य नामसे कहे हैं॥

घोरा तु या तनु सास्य सोऽग्निर्विष्णुः सभास्करः ॥ अघोरपुनरेवास्य आपो ज्योतींषि चन्द्रमाः ॥ म० भा० द्रोणपर्व ७-२०२-१०८॥

इस रुद्रका जो घोर देह है सो ही अग्नि, व्यापक विद्युत और वह सूर्य है; यहाँ पर विद्युत्का नाम विष्णु है। फिर इस रुद्रका जो अघोर देह है, सो ही जल, धर्मरूप नक्षत्र मण्डल, और चन्द्रमा है। जो रुद्र है सो ही ब्रह्मा है।

त्रिविष्टपं ब्रह्मलोकं लोकानां परमेश्वरः ॥ वा० रा० १-६७-७॥

सम्पूर्ण लोकोंका परमेश्वर ब्रह्मा, ब्रह्मलोकमय स्वर्गमें गया। ब्रह्माने प्रथम सृष्टिरचना मूंजवान–कालकूट–हिन्दुकुशसे पामीर–क्रौंचवन–कारा कुर्म–कैलाशके विस्तृत मेदानमें की थी॥

एषा सरस्वती पुण्या नदीनामुत्तमा-नदी॥ प्रथमा सर्व सरितां नदी सागर-गामिनी॥ म० भा० १३–१४६–१७॥

यह सरस्वती नदी पवित्र है, और सब नदियोंमें उत्तम है। इसका सब नदियोंमें प्रथम नाम लिया जाता है, और यह महा नदी समुद्रगामिनी है॥

ब्रह्मलोकादपक्रान्ता सप्तधा प्रतिपद्यते॥ वस्वोकसारा नलिनी पावनी च सरस्वती॥ जम्बूनदी च सीता च गंगासिन्धुश्च सप्तमी॥ म० भा० ६–६–४७–४८॥

जो ब्रह्मलोकसे जल गिरा सो ही सात नदियोंके रूपमें विभक्त हुआ, १ वस्वौकसारा २ नलिनी, ३ पावनी ४ सरस्वती ५ जम्बू नदी, ६ सीता और सातमीत सिन्धु नदी है। वस्वौकसारा लोहित्य–ब्रह्मपुत्र है। नलिनी–काली, शारदा, टनकपुर मण्डीमें वहती हुई अयोध्यामें आई। प्लक्षवन कैलासके समीपवर्ती सरोवरसे सरस्वती नदी प्रगट होकर कुरुक्षेत्र, पुष्कर, काठियावाड, सौराष्ट्र देशके समुद्रमें मिल गयी। जम्बू नदी–यमुना है। शतद्रु

सतलज ही पावनी नदी है। सिन्धु नदी प्रसिद्ध कराचीके समीप समुद्रमें मिली है। और सीता, यास्कन्द नगरके समीप बहती हुई रूसके मीठे समुद्र (एरल)में गिरती है, इस सीताका नाम-सीहुनू-जफँशाँनू-सीर दर्या है ॥

सरस्वती पुण्यतमा नदीनां ॥

म० भा० ७-६३-४॥

सब नदियोंके मध्यमें अति पवित्र सरस्वती महा नदी है॥

समुद्रं पश्चिमंगत्वा सरस्वत्यब्धिसंगमं ॥
आराध्ययतु देवेशं ततः कान्तिमवाप्स्यति॥

म० भा० ९-३५-७७॥

समुद्रके तट पर जहाँ सरस्वती और समुद्रका संगम होता है, तहाँ जाकर जो कोई भी देवोंके ईश्वर रुद्रकी आराधना करे तो दिव्य तेजको पाता है॥

हिमवन्तं गिरिं प्राप्य प्लक्षात्तत्रविनिर्गता ॥ अवतीर्णा धरापृष्टे मत्स्यकच्छपसंकुला ॥ ग्राहडिण्डमसम्पूर्णा तिमिनक्रगणैर्युता ॥ हसंती च महादेवी फेनौघैः सर्वतो दिशं ॥ वाडवं वह्निमादायहयवेगेन निसृतः॥

हरिणी वज्रिणीन्यंकुः कपिला च सरस्वती ॥
पानावगाहनान्नृणां पंचस्रोताः सरस्वती ॥

स्कन्द पु० प्रभासखं ७-३३-४१...५४ ॥

ब्रह्माकी आज्ञासे सरस्वती देवी, हिमालय शिखर पर आई और उसी कैलासके प्लक्ष वनमें महा सरोवरके रूपमें (चाक्षुष मन्वंतरका यही प्लक्ष सरोवर अव तिब्वतके नाम से है) प्रगट हो कर और्वं मुनिके कोपरूप वडवानलको घटमें भर कर एक देवी रूपसे आगे, तथा दूसरी नदी रूपसे—भूमिके पृष्ट भागमें, अवतीर्ण हुई, महा प्रवाहवाली, मगर—सूँस—तिमिंग—कच्छप, मत्स्य जल सर्पादि प्राणियोंके सहित फेनतरङ्गयुक्त अश्ववेगके समान वडवानलको लेकर, प्लक्षसे निकली, हरिणी, वज्रणी, न्यंकु, कपिला और सरस्वती मनुष्योंके स्नान पान करनेके लिये सरस्वतीके पाँच नदी रूप प्रवाह हुए, वह महानदीका जल वडे वेगसे पश्चिम समुद्रमें जानेके लिये पर्वतोंका चूर्ण करता हुआ वह रहा था, उस नदीके आगे कन्या रूपसे सरस्वती देवी चलती थी, बीचमें एक महा पर्वत आया, उसका देवता कन्यासे बोला, हे सुन्दरी तू नदी देवता है, और मैं पर्वत देवता हूँ तेरे साथ मैं विवाह करूँगा, देवीने कहा॥

यदि मां त्वं परिणये रुदन्तीमेकिकां तथा
गृहाण वाडवं हस्ते यावत्स्नानं करोम्यहं ॥
एवमुक्ते स जग्राह तं नगेन्द्रोऽपवर्जितं॥ कृत-

स्मरस्तत्स्पर्शात्क्षणाद्भस्मत्वमागतः ॥ ततः प्रभृतितेतस्य पाषाणा मृदुतांगताः ॥ गृहदेव-कुलार्थाय गृह्यन्ते शिल्पिभिः सह ॥ दग्ध्वा कृतस्मरं देवी पुनरादाय वाडवं ॥ समुद्रस्य समीपे सास्थिता हृष्टतनूरुहा ॥

स्कन्द पु० ७-३३-८८-९१ ॥

अकेली रोती हुई मेरेको विवाह करनेकी यदि तू इच्छा करता है, तो, मैं जब तक स्नान करूँ तब तक तू मेरे दोनों हाथोंमें जो वडवानलका घट है उसको ले ले, फिर पर्वतने देवीके हाथोंमेंसे घटको लेते ही उसी क्षण पर्वत भस्म हो गया। वे पाषाण उस दिनसे अती कोमल चीकने हुए। यह भस्म-राशी योधपूर राज्यके मकरानाकी खान है, उस दिनसे गृह-देवता सप्त मातृका आदिकी मूर्ति कारीगर बनाने लगे। उसको भस्म करके फिर देवीने वडावानलके घडेको लेकर, उस देवीके प्रसन्नतासे देहके रोम खड़े हुए, फिर प्रभासवाले समुद्रके समीप स्थित हुई। फिर कैलासवासी रुद्र सरस्वती और समुद्रके संगम पर विराजमान हुआ। सो ही स्थान विनशन (प्रभास क्षेत्र) और सोमनाथ ज्योतिर्लिंग है। शर्य्यणावती देश (कुरुक्षेत्र) में सरस्वती पाँच धारा होकर प्रभासमें गयी। जो मत्स्य देश (जयपुरसे तीस मील पर मेड़ विराट् गाँव है, सो ही विराट्की राजधानी है) मेंसे पुष्कर, मकराना, नागोर, योधपुर, पाली,

आबु, जालोर, पंचभद्रा-धन्नीधर, पालनपुर, सिद्धपुर, वीरमगाम राजकोट, जामनगर, रैवताचल (गिरनार) पर्वतके चारों ओर सरस्वतीके प्रवाह प्रभासमें मिले। यह सरस्वती चाक्षुष मनुमें पूर्ण थी। फिर वैवस्वत मन्वंतरमें प्लक्षसे प्रगट होकर प्रभासमें मिली। मेरु (पामीर प्रदेश) के भाग पश्चिम दक्षिण भागमें, मूंजवान्-हेमकूट (हिन्दुकुश) के समीपवर्ती प्रदेशसे उत्पन्न हुई गौमती (गोमल गुल्म) नदी सिन्धु नदीमें मिलती है, कौंचगिरि (काराकुरम्) श्वेतगिरि (कोहकाफ) तंगण (तिब्बत) देश, कैलास, मान सरोवर, राक्षस हृदय प्लक्षवन (तीर्थापुरिसे लेकर जयन्ति पर्वत पर्य्यन्त मैदानही प्लक्षवन है यही वन पहिले प्लक्ष सरोवर था अब तो तीन भाग हो गये १ मान सरोवर २ राक्षस सरोवर ३ बिंदु सरोवर) जो नदियें सदानीरा (काली-शारदा) में गिरकर सरयूमें मिलती हैं, और सतलजमें इस समय नदियें मिलती हैं, वे सब प्रथम प्लक्ष सरोवरमें गिरती थीं। उस प्लक्षसे महा नदी सरस्वती प्रगट होकर, शर्य्यणावति (कुरुक्षेत्र) देश, मत्स्य (अलवर, जयपुर, मेड विराट्) देश, गोपवन (शीकरके समीप गणेशतीर्थ) महाधारा मरुस्थल-मारवाड (मकराना) होकर धन्नीधर तथा आनर्त (काठियावाड) सौराष्ट्रके विनशन् सोमनाथ प्रभासक्षेत्रवर्ती समुद्रमें मिल गयी। दूसरी धारा पुष्कर, आबु, राधनपुर, वीरमगाम वढवान् होकर बडे प्रवाहमें मिली। तीसरी विहाणीके समीप मिली। चतुर्थ धारा नागोर होकर पंचभद्राके समीप मिली। पाँचवी जामनगर होकर सर-

स्वतीमें मिली। इस प्रकार सरस्वती पांच धारवाली चाक्षुप मन्वंतरमें थी, फिर उसी प्रकार वैवस्वत मन्वतरमें थी। फिर कुछ कालक्रम (भूकम्प आदिसे) प्लक्ष सरोवरका बहुत भाग पर्वत और मैदानके रूपमें हो गया। कुछ अवशेष भाग था वह जल-टापूरूप बिन्दुओंके आकारवाला हो गया। फिर भगीरथने रुद्रकी कृपासे सरस्वतोके पश्चिम प्रवाहरूप मुखको बन्ध करके, बिन्दु सरोवरके पूर्वमुखको खोलकर गंगाको पूर्व समुद्रमें मिला दिया। जो सरस्वतीके संगम पर सोमनाथ ज्योतिर्लिंग रूपसे स्थित था सो ही रुद्र, काशीमें विश्वेश्वर सातवाँ ज्योतिर्लिंगरुपसेसे विराज-मान हुआ। शतद्रु (सतलज) नदी पहिले कच्छके समुद्रमें मिलती थी, उस संगम पर कोटेश्वर शिव है, फिर कालक्रमसे अब सिन्धुमें मिलती है। विपाशा (बियास) नदी, इरावती (रावी) नदी, चन्द्रभागा (चिनाव) नदी, वितस्ता (जेलम) नदी, सिन्धु, गोमती, कुभा (कुरम) नदी, क्रमु (काबुल) नदी, सुसर्त (स्वात्) नदी, ये सब वैदिक नदियां हैं। सृष्टि उत्पत्ति प्लक्षमें हुई। फिर मूल वैदिक प्रजा, कैलाससे लेकर मूञ्जवान् गिरि गोमती नदी पर्य्यन्त फैल गयी। और यवही प्रथम प्रजाका अन्न था। उस जौ में, दधि, सोमलताके रसको मिलाकर वह अग्निमें आहुति देती थी॥

पवित्रा गोमती नाम नदी यस्याभव-त्प्रिया॥ तस्मिन्कर्माणि सर्वाणि क्रियन्ते धर्म-कर्तृमिः ॥

भ० भा० ३-२१९-१९॥

उस अग्निकी पवित्र गोमती नामकी नदी प्रिय पत्नी है। यज्ञात्मक धर्म कर्म करनेवाले द्विजातिगण, उस नदीके दोनों तट पर निवास करके सब वैदिक यज्ञादि धर्म करते हैं। जब गोमती के पूर्वतटवाली प्रजा, गांधार, काश्मीर, कुल्लू आदि देशमें वसने लगी कि, पश्चिम तट वाली प्रजा भी, समुद्रमेंसे प्रगट हुई पर्वतयुक्त भूमि पर वसने लगी, और कैलास, प्लक्ष-वासी प्रजा, सरस्वतीके तीरमें वास करती हुई आर्जीकीया (त्रिगर्त, शिवि, अम्बष्ट) देशमें, और शर्य्यणावतो (कुरुक्षेत्र) ब्रह्मावर्त नैमीषारण्य, तक वस गयीं। ब्रह्मा, अग्नि, सूर्य, वायु, वरुण, रुद्र, इन्द्रादिका नाम असुर और देव है। पश्चिमवासी आर्य प्रजा ऐलबुर्ज पर्वतके चारों तरफ वास करती हुई, ब्रह्मादिके असुर नामको पवित्र मान कर अग्निहोत्रके द्वारा पूजने लगी, और देव नामको अपवित्र मानकर नन्दा करने लगी। फिर यह प्रजा जैसे २ समुद्र हटता गया, तैसे २ ही आगे वसने लगी, असुर नामसे ये देश आसुरीयन (पेलेस्टाइन) हुआ। ये सब वैदिक प्रजा अग्निहोत्र करती थी। फिर धीमे २ देहाध्यासी मृतक शवको समाधिमें गाडकर उस समाधि पर अग्नि, सूर्यादि देवोंके चित्र रचकर मूर्दाका उत्सव मनाने लगी। फिर बहुत कालके पीछे, ब्रह्मा, वरुण, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि आदिको मन्दिरोंमें पूजते, आर्ती, धूप, वादित्र वजाते हुए नाच गायनके सहित, न्यू (ब्रह्मा, प्रजापति, मनु) रा (सूर्य—अग्नि) मर्डिन (वरुण) आदि नामको जपते थे। फिर कुछ कालके पीछे आसिरीयन्, मेसो-

पोटामीयाका भक्तिमार्गी व्यापारी वर्ग, खजूर आदि पदार्थ नावोंमें भरके मलबार आदि बन्दरोंमें माल बेचकर, काली-मिर्ची, एलायची, नालीयर, सुपारी आदि पदार्थ लेजाने लगे। नावोंका माल उतारने और भरनेका काम चमार, कोली आदि जातियोंका था। आसुरीयन प्रजासे भक्तिमार्ग मलबार, द्रविडी अन्त्यज वर्गमें फैल गया, फिर उन जातियोंके मध्यमें डोम, कारीपुत्र शठकोप बडा भक्त हुआ। फिर तो अयंगर जातिमें वह मार्ग धीमे २ घुस गया। फिर वह जाति ब्राह्मण बन गयी, फिर नारायण, विष्णुका नाम स्मरण करना, वेद गायत्रीका खण्डन करने और प्रपणी आदि द्रविड भाषाके ग्रन्थोंको वेद मानने लगे फिर रामानन्दने, रामायनमः—इस तारक मन्त्रकी रचना करी। निम्बार्क, मध्वने कृष्णकी भक्ति चलाई। भारत खेतमें भक्ति मार्गरूप अनेक जातिका घास ऊगा, वैदिक अग्निहोत्रादि कर्म-रूप बीजांकूर घाससे ढक गया। फिर पूर्ववासी आर्य प्रजा, ब्रह्मादिके देव नामको पवित्र मानकर अग्निहोत्रसे पूजने लगी, और असुर नामकी निन्दा करने लगी। प्रथम गोमतीके नैमी-षारण्यवासी ऋषि मंत्रयोग बलसे नवीन गोमती लाये, फिर बडे २ अश्वमेघादि यज्ञ होने लगे, फिर जनमेजयके पुत्र शता-नीकके कुछ काल पीछे पाशुपत और सात्त्वत् मत चमकने लगे, फिर उनमेंके माथुरव्रात्य संघसे महावीर जैन प्रवर्तक हुआ, तथा मगधव्रात्य संघसे बुद्ध, बौद्ध मार्गका प्रवर्तक हुआ। फिर प्रजा दश आना बौद्ध—जैन बन गयी और चार आना

सौर, शाक्त, वैष्णव, वीरशैव थी, तथा दो आना वैदिजा प्रजा शेष रही थी। फिर शंकराचार्यने इनका खण्डन कर वैदिक धर्मकी प्रजामें जाग्रति की और चार धामके नाम और चार मठ स्थापन किये। तीन सौ वर्षके पोछे शठकोप मत प्रवर्तक रामानुज हुआ, फिर अनेक पन्थ हुए। फिर उन आसुरी प्रजासे पारसी जाति बनी, पारसीसे यहूदि जाति बनो; फिर यहूदिसे इसाई, फिर ईसाईसे मुसलमान पन्थ चला। हम आर्य किसी स्थानसे नहीं आये। हमारा मूल स्थान सरस्वती महा नदी है। जैसे २ राजे पूर्व दक्षिण अनार्य देशमें बसते गये, तैसे २ ही आर्य प्रजाकी वस्ति होती गयी। और देव उपासक धर्ममें ब्रह्मा, रुद्र, अग्नि, वायु, सूर्य, इन्द्र, वरुण, मित्र, भग, पूषा, विष्णु, यम आदि देवोंकी अग्निहोत्रके द्वारा पूजा और सूक्तोंके द्वारा उपासना, और समष्टि व्यष्टि अभेद ज्ञानरूप उपासना होती थी॥

तदग्निहोत्रं सृष्टं वै ब्रह्मणा लोककर्तृणा॥

म० भा० १४–१०८–४५॥

कृष्णने कहा, हे राजन्, उस अग्निहोत्रको जगत्को रचने वाले ब्रह्माने प्रथम धर्मरूप उत्पन्न किया है॥

अग्निरेको द्विजातीनां निश्श्रेयसकरः परः॥ गुरुर्देवो व्रतं तीर्थं सर्वमग्निर्विनिश्चितं॥

शिव पु० ३–१५–६४॥

द्विजाति मात्रका एक अग्निहोत्र ही उत्तम कल्याण करनेवाला है, तथा अग्नि ही गुरु, देवता, व्रत, तीर्थ, जो कुछ भी शुभ कर्म है सो सब अग्नि ही स्वरूप है॥

यस्मिन्वेदाश्च यज्ञाश्च यस्मिन्देवाःप्रतिष्ठितः ॥ म० भा० १२–२२५–२५ ॥

जिस अग्निहोत्रमें सब वेद और सब यज्ञ, तथा जिस अग्निमें सब देवता स्थित हैं॥

इहाग्निसूर्यवायवः शरीरमाश्रितास्त्रयः ॥
त एव तस्य साक्षिणोभवंति धर्मदर्शिनः ॥
म० भा० १२–३२१–५५ ॥

इस लोकमें रहकर अग्नि, वायु, सूर्य, ये तीन देवता प्राणियोंके देहका आश्रय करके स्थित हैं। वे ही मनुष्योंके किये हुये धर्मको देखनेवाले तथा उस जीवके साक्षी हैं॥

अत्रिणात्वथसामर्थ्यं कृतमुत्तमतेजसा ॥
द्विजेनाग्निद्वितीयेन जपता चर्मवाससा ॥
म० भा० १३–१५६–८–१३ ॥

अत्रि एक ब्राह्मण था, उसको अग्निके अतिरिक्त और किसीकी सहायता नहीं थी। वह मुनि बकरा, हरणिके चर्मको धारण करनेवाला था। उसने सूर्य चन्द्रमा आदिके स्वरूपको

धारण करके जगत्का पालन किया था। गायत्रीका जप करनाही उपासना है। अग्निहोत्र करना ही कर्म है॥

गगने दृश्यते सूर्यो हृदये दृश्यते हरः॥

स्कन्द पु० ७-१२-३९॥

आकाशमें सूर्य दीखता है, और प्रत्येक प्राणिके हृदयमें शिव दीखता है॥

शिव आत्मा शिवो जीवः शिवादन्यन्न किंचन॥ स्कन्द पु० ब्रह्मोत्तर खं० ३-५५॥

शिव ही समष्टि आत्मा है, शिव ही व्यष्टि जीव है। शिवसे भिन्न और कुछ भी नहीं है॥

योऽसौ क्षेत्रज्ञसंज्ञो वै देहेऽस्मिन्पुरुषः परः॥ स एव सोमो मन्तव्यो देहिनां जीवसंज्ञकः॥ वराह पु० ३५-११॥

जो वह सूर्य मण्डलस्थ क्षेत्रज्ञ नामवाला उत्तम पुरुष है सो ही प्राणियोंके इस स्थूल देहमें जीव नामवाला सोम है, इस प्रकार विचारने योग्य है॥

यत्सर्वप्राणिहृदयं सर्वेषां च हृदिस्थितं॥ यच्च सर्वजनैर्ज्ञेयं सोऽहमस्मीति चिन्तयेत्॥ हारितस्मृति ७-७॥

जो सब प्राणियोंका स्वरूप है सो ही ब्रह्म सब प्राणियोंके हृदयमें विराजमान है। जो सबके जानने योग्य है, सो ही मैं हूं, इस प्रकार चिन्तवन् करे ॥

जीवस्त्वं साक्षिणो भोगी स्वात्मनः प्रति-बिम्बकं ॥ ब्रह्म वै० पु० ग० खं ३-७-७४-११४ ॥

हे जीव, तू अपने शुद्ध साक्षी स्वरूपका ही प्रतिबिम्ब है॥

स्त्रीपुन्नपुंसकं रूपं यो बिभर्ति स्वमायया॥ ब्र० वै० पु० ग० खं० ३-३३-३४ ॥

अपनी मायासे जो स्त्री, पुरुष, नपुंसक रूप धारण करता है सो ही ब्रह्म है॥

तद्बीजं देहिनामाहुस्तद्बीजं जीव सं-ज्ञित ॥ कर्मणा कालयुक्तेन संसारपरिवर्तनं ॥ म० भा० १२-२१३-१३ ॥

जो समष्टि बीज प्राणियोंका बीजरूप व्यष्टि है, सो ही जीव नामसे है। कर्मोंके द्वारा समय आने पर आत्मा जन्मके चक्रमें भ्रमण करता है॥

प्रतिरूप समन्वितः ॥ म० भा० १२-२८४-३३॥

प्रतिरूपं यथैवाप्सु तापः सूर्यस्य लक्ष्यते ॥

सत्त्ववत्सु तथा सत्त्वं प्रतिरूपं स पश्यति ॥

म० भा० १२–२५३–३ ॥

शिवका प्रतिरूप वीरभद्र है । प्रकाशवान् सूर्यका किरण मण्डल, जैसे जलमें दीखता है तैसे ही अन्तःकरणयुक्त बुद्धिमें (सत्त्वं) जीवरूप प्रतिबिम्ब है॥

प्रतिरूपकैः ॥ म० भा० १२–५६–५४ ॥

बनावटी–कल्पित रूपोंसे॥

प्रतिरूपकः ॥ मनु० ११–९ ॥

आभास ॥ शून्यं ॥ म० भा० १२–२५४–१४ ॥

शून्यनाम मिथ्या कल्पित–प्रतिबिम्ब है॥

अनेन प्रतिबोधेन प्रधानं प्रवदन्ति तत् ॥

म० भा० १२–३१८–७१ ॥

जो अव्याकृत इस प्रतिबिम्ब चिदाभाससे युक्त होती है, सो ही प्रधान है॥

मित्रं पुरुषं वरुणं प्रकृतिं ॥

म० भा० ३१७–३९ ॥

मित्ररूप अधिष्ठान पुरुषको जीव रूपसे, आवरण करनेवालीको प्रकृति कहा है॥

क्षेत्रज्ञो भूतात्मा ॥ मनु० १२–१८ ॥

जो सूर्यस्थित प्रेरक है, सो ही शरीरोंमें उत्पन्न होनेवाला जीव है ॥

समाहारं क्षेत्रं ॥ स्थितो मनसि यो भावः सवै क्षेत्रज्ञ उच्यते ॥ म० भा० १२-२१९-४० ॥

चोवीस समूहको क्षेत्र कहा है, और जो अन्तःकरणमें अहंकार भाव स्थित है, सो ही क्षेत्रज्ञ नामका जीव है ॥

कर्मानुमानाद्विज्ञेयः स जीवः क्षेत्रज्ञ-संज्ञकः ॥ म० भा० १२-२५२-११ ॥

जो कर्मके अनुमानसे जानने योग्य है, सो ही जीव क्षेत्रज्ञ नामसे प्रसिद्ध है। जैसे सूर्य ईश्वर तेरह मास, सात ऋतु, तीन लोक और एक वर्षरूप चोवीस कलायुक्त है और चन्द्रमा सोलह कलायुक्त जीव है, तैसे ही ब्रह्मा क्षेत्रज्ञ, समष्टि चोवीस तत्त्व (१ अव्यक्त २ महान् ३ अहंकार ४ नभ ५ वायु ६ अग्नि ७ जल ८ भूमि, दशेन्द्रियें, पांच प्राण और एक मन हैं। और जीव क्षेत्रज्ञ, व्यष्टि, सोलह कलायुक्त (दशेन्द्रियें पाँच प्राण और एक बुद्धि) है ॥

वृत्तिहीनं मनःकृत्वा क्षेत्रज्ञं परमात्मनि ॥ एकीकृत्य विमुच्येत योगोऽयं मुख्य उच्यते ॥

दक्षस्मृति ७-२६ ॥

विषयोंसे मनको रोककर व्यष्टि जीवको समष्टि ब्रह्मामें एक अद्वैत भावसे धारण करके संसारसे छूट जाय, यही मुख्य योग है॥

उत्तिष्ठ नरशार्दूल दीर्घबाहो धृतव्रत ॥
किमात्मानं महात्मानमात्मानं नावबुध्यसे ॥

वा० रा० युद्धकाण्ड ६ ॥ सर्ग ८३-४३ ॥

लक्ष्मणने कहा हे रामचन्द्र, नाशवान् सीताके वधसे तू क्यों मूर्छित हुआ शोक करता है। हे धृतव्रत, नरसिंह, लम्बी भुजावाले राम, जीव आत्माको परमात्माका अभेद स्वरूप क्या तू अपनेको नहीं जानता है ? जब तू जीवको परमेश्वरका स्वरूप मानता है, तो, तू शोकको त्यागकर उठ, युद्ध कर॥

अहं ब्रह्म परं धाम ब्रह्माहं परमं पदं ॥
एवं समीक्षन्नात्मानमात्मन्याधाय निष्कले॥

श्रीमद्भागवत १२-५-११ ॥

हे परिक्षत, तेरेको सर्पका विष नहीं व्यापेगा, मैं ब्रह्म परम धाम हूँ, मैं ब्रह्म परम स्वरूप हूँ, इस प्रकार अपने जीवात्माको निष्कल तुरीय शिवमें अभेद रूपसे स्थित करके देख॥

योऽन्तरात्मा परं ब्रह्म स विज्ञेयो महे-
श्वरः॥ एष देवो महादेवः केवलः परमं शिवः॥

तदेवक्षरमद्वैतं तदानित्यं परं पदं ॥ तमेवात्मानमन्वेति यः स याति परम्पदं ॥ मन्यंते स्वमात्मानं विभिन्नं परमेश्वरात् ॥ न ते पश्यन्ति तं देवं वृथा तेषां परिश्रमः ॥

पद्म पुराण० ३-६०-३४-३८ ॥

जो अन्तरात्मा परब्रह्म है उसको ही महेश्वर जानना; यह देव ही महादेव केवल उत्तम सुखरूप है। सो ही अद्वैत अविनाशी देव है, सो ही एकरस उत्तम स्वरूप है। उस ही अभेद रूप आत्माका ध्यान करता है, जो कोई भी, वह उत्तम तुरीय स्वरूपको प्राप्त होता है। जे अपने जीवरूपको परमेश्वरसे भिन्न मानते हैं, वे उस रुद्रको नहीं देख सकते, किंतु उनका सब कर्म, उपासना ज्ञान, रूप परिश्रम निष्फल है ॥

आत्मैव देवता सर्वा सर्वमात्मन्यवस्थितं ॥ आत्मा हि जनयत्येषां कर्मयोगं शरीरिणां ॥

मनु० १२-११९ ॥

एक व्यापक समष्टि आत्मा ही सब देवादि स्वरुपसे, अधिदैव सूर्यादिमें—अध्यात्म इद्रियोंमें अधिभौतिकोंमें स्थित है। समष्टि आत्मा ही इन व्यष्टि देहके अभिमानी जीवोंका रूप धारण करके उनके कर्म योगके अनुसार शुभाशुभ फल सन्मुख कर देता है॥

दम्भोदर्पोऽथ रागश्च भक्तिः प्रीतिः प्रमोदनं ॥ द्युतं च जनवादश्च सम्बाधा स्त्रीकृताश्च ये ॥ म० भा० १४-३७-१३ ॥

दम्भ, दर्प, प्रीति, भक्ति—नाच गायन, और प्रसन्न करना, जूआ, परनिन्दा, स्त्रियोंको फसानेका जाल रचना, ये सब रजोगुणी हैं॥

वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ॥ धर्मक्रियात्मचिन्ता च सात्विकं गुणलक्षणं ॥ मनु० १२-३१ ॥

वेदोंका पठन, तप, पवित्र, प्राणायाम, गायत्रीजप, परधन परस्त्री त्यागी, यज्ञादि धार्मिक क्रिया, अपने कल्याणके लिये नित्य आरण्यक ग्रन्थोंका श्रवण मनन निदिध्यासन ही ज्ञान है। ये लक्षणवाले पुरुष ही सत्वगुणी हैं॥

यत्र गत्वा न शोचन्ति न च्यवन्ति व्यथंतिच ॥ ते तु तद्ब्रह्मणः स्थानं प्राप्नुवन्तीह सात्विकाः ॥ म० भा० १२-२६३-२४ ॥

जिस ब्रह्मलोकमें प्राप्त होकर शोक मोह नहीं करना पड़ता है, और पुनर्जन्म भी नहीं होता है, जहाँ किसी प्रकारका दुःख

नहीं है, तहाँ वे वैदिक धर्मको पूर्ण पालनेवाले सात्विक जन जाते हैं॥

ते ब्रह्मभवनं पुण्यं प्राप्नुवतीह सात्विकाः

म० भा० १३-१०२-४९॥

नास्ति ब्रह्मसमो देवो नास्ति ब्रह्म समो गुरुः॥
नास्ति ब्रह्मसमं ज्ञान नास्ति ब्रह्मसमं तपः॥

स्कन्द पु० ७-१०५-९॥

ब्रह्मके समान, देव, गुरु, ज्ञान, तप, नहीं है। सब ही ब्रह्माकी प्राप्ति है, और ब्रह्मासे भिन्न कुछ भी नहीं है॥

ऋग्यजुः साम जाप्यानि संहिताध्ययनानिच॥ क्रियते ब्रह्माणमुदिश्योपासना सा वैदिकश्च॥ पिता यः सर्वदेवानां भूतानां च पितामहः॥

स्कन्द पु० ७-१०७-१३-५३॥

ऋग्, यजु, साम आदि संहिताओंका पाठ, यज्ञ-जप आदि कुछ भी कर्म किया जाता है, सो सब ही ब्रह्माके निमित्त उपासना वैदिक है॥ जो सब देव-दैत्यादि प्राणिमात्रका पिता है, सो ही ब्रह्मा है॥

सत्विका ब्रह्मणः स्थानं राजस्या शक्र लोकतां॥ प्रयांति भुकत्वा भोगान्हि तमस्या पितृलोकतां॥

स्कन्द पु० १-८८-१०॥

सात्विक पुरुष ब्रह्माके लोकमें जाते हैं, रजोगुणी इन्द्र-लोकमें जाते हैं और पुण्यात्मा यमके स्वर्गमें और पापी यमके नरकमें जाते हैं॥

इमं लोकं मातृभक्त्या पितृभक्त्या तु मध्यमं ॥ मनु० २-२३३ ॥

मातृभक्त इस भूमि पर जन्म लेता है, और पिताभक्त यम लोकमें जाता है॥

रामो दाशरथिश्चैवलक्ष्मणोऽथ प्रतर्दनः॥
म० भा० सभापर्व २-८-१७ ॥

दशरथपुत्र राम, और लक्ष्मण, तथा प्रतर्दन आदि बहुत राजे यमके स्वर्गमें निवास करते हुए यमराजकी उपासना करते हैं॥

सत्यं ब्रह्म सनातनं ॥ म० भा० १-६४-३ ॥

वेदाः सहाङ्गा विद्याश्च यथाह्यात्मभुवं प्रभुं ॥ ब्रह्माण बोधयन्ति ॥ वा० रा० २-१४-४९ ॥

ब्रह्मा अनादि सत्य ज्ञानरूप है। जैसे समष्टि स्वरूपसे व्यष्टि धारण करनेवाले समष्टि समर्थ ब्रह्माकी अङ्गोके सहित चारों वेद और आरण्यक ज्ञान पूर्ण ग्रन्थ स्तुति करते हैं॥

आधिपत्यं विमाने वै ऐश्चर्येण तु तत्समाः ॥ भवन्ति ब्रह्मणातुल्या रूपेण विष-

येण च ॥ तत्र तेह्यवतिष्ठन्ते प्रीतियुक्ताश्च संयमान् ॥ आनन्दं ब्रह्मणः प्राप्य मुच्यन्ते ब्रह्मणा सह ॥ ब्रह्माण्ड पु० ६-३२-३३ ॥

ऐश्वर्यसे युक्त विमानमें उस ब्रह्माके समान ही ज्ञानियोंका अधिकार है, जे संन्यासी रूप विषयमें ब्रह्माके समान होते हैं उस ब्रह्मलोकमें वे यति आनन्दयुक्त निवास करते हैं। ब्रह्मामें सायुज्य मुक्तिको प्राप्त हुए ज्ञानी कल्पके अन्तमें ब्रह्माके साथ ही ब्रह्मामें मुक्त होकर जन्ममरणसे सर्वदाके लिये छूट जाते हैं॥

विशन्ति यतयः शान्ता नैष्ठिका ब्रह्मचारिणः॥
योगिनस्तापसाः सिद्धा जापकाः परमेष्ठिनः॥
कूर्म पु० ४४-६॥

आरण्यक ग्रन्थोंका अभ्यास करके व्यष्टिको समष्टि रूपसे ध्यान करनेवाले संन्यासी, विषयशान्त नैष्ठिक ब्रह्मचारी, योगी, वदिक व्रत करनेवाले, सिद्ध, ये सब ब्रह्माके उपासक ब्रह्मामें प्रवेश करते हैं॥

यश्च पैतामहं स्थानं ब्रह्मराशिसमुद्भवं ॥
गुहायां पिहितं नित्यं तद्दमेनाभिगम्यते ॥
भ० भा० १२-१६०-३२ ॥

जो नित्य ब्रह्माका सत्यलोक है, जो वेदका उत्पत्ति भण्डार ब्रह्मा है, जो नित्य सत्यलोकवासी है, वह ब्रह्मा अविनाशी, अव्याकृत गुहामें समष्टि ईश्वर—और व्यष्टि जीव भावसे प्रत्येक प्राणियोंके हृदयमें है। उसको अन्तर्मुख वृत्तियोंके द्वारा जाना ज़ाता है॥

च्यवंतं जायमानं च गर्भस्थं चैव सर्वशः॥
स्वमात्मानं परं चैव बुध्यन्ते ज्ञानचक्षुषा॥

म० भा० ३-१८३-८४ ॥

अपनी आत्मा गर्भसे गिरे, या गर्भसे प्रगट होय, और गर्भमें निवास करे, ऐसा होने पर भी उन ज्ञानियोंका आत्मा किसी भी अवस्थामें होय, अपनी आत्माको अभेदरूपसे, ज्ञान-नेत्रके द्वारा समष्टिस्वरूप परमात्मा मानते हैं॥

सत्वं वहति शुद्धात्मन्परं नारायणं प्रभुं ॥
प्रभुर्वहति शुद्धात्मा परमात्मानमात्मना ॥

म० भा० १२-३०१-७७ ॥

ज्ञानीको इन्द्र अपनेमें धारण करके शुद्धात्मा नारायण प्रभुके पास ले जाता है। यहां पर नारायण नाम विराट् अभि-मानी प्रजापति अथर्वाका है। फिर विराट्रूप प्रजापति अपने द्वारा उस उत्तम शुद्धात्मा ज्ञानीको परमात्मा—ब्रह्माके पास पहुँचा देता है॥

परमात्मानमासाद्यतद्भूतायतनामलाः ॥
अमृतत्वाय कल्पान्ते न निवर्तन्ति वै विभो ॥

म० भा० १२-३०१-७८ ॥

हे विभो—राजन्—परमात्मा—ब्रह्माको प्राप्त होने पर वे ज्ञानी निर्मल हुए मोक्षको प्राप्त होते हैं, तथा, उस ब्रह्मलोकसे फिर ज्ञानियोंका पुनरागमनरूप जन्म नहीं होता है॥

जगत्यनित्ये सततं ॥ म० भा० ७-२-११ ॥

यह जगत् निरंतर असत्य है॥

प्राप्नोति ब्रह्मणः स्थानं यत्परं प्रकृते-ध्रुवं ॥ नास्य देवा न गन्धर्वा न पिशाचा न राक्षसाः ॥ पदमन्ववरोहन्ति प्राप्तस्य परमां गतिं ॥

म भा० १२-२२९-२५ ॥

ज्ञानी सब कामनाओंका पूर्ण फल ज्ञानको प्राप्तकर, अविद्यासे रहित नित्य सत्यलोकको पाते हैं, मोक्षको प्राप्त हुएके स्वरूपको, देव, यक्ष, राक्षस, पिशाच गन्धर्व आदि कोई भी नहीं पा सकते॥

ब्रह्माणमिवदेवेशमिन्द्रोपेन्द्रौ ॥

म० भा० ९-३४-१८ ॥

जैसे देवेश्वर ब्रह्माकी इन्द्र और विष्णु उपासना करते हैं॥

स्वयम्भूरिवभूतानां ॥ वा० रा० १-७७-५५ ॥

जैसे उत्तम होनेवाले देव, दैत्यादि प्राणियोंके मध्यमें ब्रह्मा उत्तम है॥

स्वायम्भुवं यथास्थानं सर्वेषां श्रेष्ठं॥

म० भा० १३-२६-८१॥

सब देवताओंके लोकोंके मध्यमें, जैसे ब्रह्माका लोक उत्तम है॥

सृज्यते ब्रह्ममूर्तिस्तु रक्षते पौरुषी तनुः॥
रौद्री भावेन शमयेत्तिस्रोऽवस्थाः प्रजापतेः॥

म० भा० ३-२७२-४७॥

ब्रह्माकी तीन अवस्था हैं, अग्निरूप ब्रह्मा जगत्को रचता है, वायु रूप विष्णु पालन करता है, सूर्यरूप रुद्र संहार कर्ता है। ये तीन देव ब्रह्माकी महिमा हैं॥

स्वयम्भूरसृजच्चाग्रे धातारं॥

म० भा० १२-२९३-१०॥

ब्रह्माने अग्निवायु, सूर्यादिके पहिले विराट्को रचा॥

प्रजापतीनां विषयान्ब्रह्मणो विषयांस्तथा॥

म० भा० १२-३०१-९॥

प्रजापतियोंके सुखोंसे ब्रह्माके सुख उत्तम हैं॥

सिद्धाश्च मुनयो देवः प्रजाप्रतिः। विष्णुः सहस्रशीर्षश्च देवो चिन्त्यः समागमत्॥

तज्ज्योतिः स्तूयमानं स्म ब्रह्माणं प्राविशत्तदा ॥
राजाप्येतेन विधिना भगवन्तं पितामहं ॥
यथैव द्विजशार्दूलस्तथैव प्राविशत्तदा ॥
स्वयम्भुवमथो देवा अभिवाद्य ततो ब्रुवन् ॥
ब्रह्मोवाच-महास्मृतिं पठेद्यस्तुतथैवोनु स्मृतिं शुभाम् ॥ तावप्येतेन विधिना गच्छेतां मत्स-लोकताम् ॥

म० भा १२-२००-१३-२१-३६-२७-३० ॥

कुरुक्षेत्रमें पिप्पलादका पुत्र गायत्री जप करता था। उस ऋषिके पास राजा इक्ष्वाकु आया। राजाने जापकसे जपका आधा भाग ले लिया, उसके अनन्तर-सिद्ध और मुनिगण आये, तथा देवदेव ब्रह्मा आया। वह कैसा है? विष्णुरूपसे व्यष्टि शरीरोंमें प्रवेश करके असंख्य शिरनेत्रादि अवयववाला है, जिसकी महिमाको अशुद्ध अवैदिक कर्म करनेवाले नहीं जानसकते, सो ही अचिन्त्यदेव है। जब वह ब्राह्मणकी ज्योति ब्रह्माके देहमें प्रविष्ट हुई, तब सबोंने उसकी प्रशंसा की। उस जापककी उत्तम मोक्ष गतिको देखकर, इक्ष्वाकुने भी अपनी देह योग-विधिसे त्यागकर भगवान ब्रह्माके स्वरूपमें ब्राह्मणके समान रूप हो गया। उन दोनोंकी मोक्ष देखकर सब देवता फिर ब्रह्माको नमस्कार करके कहने लगेः योगियोंके समान ही

निष्काम गायत्रो जपवाले ब्राह्मण और राजाको मोक्ष दिया है। फिर भगवान् ब्रह्माने कहा हे देवताओ, तुम सब सुनो, अनादि नित्य श्रुतिरूप चारों वेदोंका जो द्विज पठन करता है, और अनुस्मृतिरूप वेदके अन्तिम भाग आरण्यकका भी श्रवणादि अध्ययन करता है, वह ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी भो इन दोनों विधिसे मेरे लोकमें आते हैं।

प्रयाति संहिताध्यायी ब्रह्माणं परमेष्ठिनं ॥
अथवाग्निं समायाति सूर्यमाविशतेऽपिवा ॥

म० भा० १२-१९९-१९९ ॥

अग्निहोत्रीजन, संहिताध्यायी अग्निके लोकको प्राप्त होते हैं, गायत्रीजापी वेदपाठी सूर्यको प्राप्त होते हैं, और प्रणव और आरण्यकपाठी उत्तम सत्यलोकनिवासी ब्रह्माको प्राप्त होते हैं ॥ सूर्यका नाम विष्णु है म०-भा०-१२-३२७-२०॥ आदिति पुत्र विष्णु है ॥ म०-भा० १२-३२८-५५ ॥ गण्डकी नदोमें स्नान करनेसे सूर्यलोक मिलता है॥ म०-भा०-३-८४-१३ ॥ सूर्यका नाम विष्णु है। विष्णु अव्यक्त प्रधानका नाम है ॥ म०-भा०-३-२७२-४७ ॥ अग्निका नाम विष्णुहै। म०-भा०-३-२२१-२१ ॥ चरणका देवता विष्णु है ॥

ब्रह्मणः सदनादूर्ध्वं तद्विष्णोः परमं पदं ॥
शुद्धं सनातनं ज्योतिः परंब्रह्मेति यं विदुः ॥

म० भा० ३-२६१-३७ ॥

व्यापक (ब्रह्मणः) सूर्यके स्थानसे वह उत्तमस्वरूप शुद्ध अनादि ज्योति परब्रह्म है इस प्रकार जिसको जाननेवाले जानते हैं ॥

ब्रह्मलोकं दुष्प्राप्यं ॥ वा० रा० ६-६६-२४ ॥

संन्यासाश्रमके विना ब्रह्मलोककी प्राप्ति महाकठिन है ॥

तपः श्रुतं च योनिः एतद्ब्राह्मणकारणं त्रभिर्गुणैर्भवति ॥ म० भा० १३-१२१-७ ॥

जाति, वैदिक उपनयनादि संस्कार और वेदाध्ययन करना, इन तीन मूलधर्मोंसे युक्त ब्राह्मण होता है। गुण-मूलजाति और कर्म, उपनयन, गायत्रीके सहित वेदाध्यन ही ब्राह्मणत्व है। तैसे ही प्रजापत्य इष्टरूप विरजा हवन और प्रणव-मंत्र जप, इन तीनोंसे युक्त द्विज संन्यासी है, और वैदिक विधि रहित, काषाय वस्त्रधारी, शुष्क वादविवाद करनेवाले संन्यासी नहीं है। केवल कलिकालके पाषण्डीमत हैं ॥

मुनिः ॥ म० भा० १२-२७७-६ ॥

मुनि नाम संन्यासीका है ॥

संन्यस्य सर्वकर्माणि ॥

म० भा० १२-६०-३० ॥

सर्व कर्मोंका त्याग करे ॥

संन्यस्याग्नीनुदासीनाः पश्यन्ति विगत-
ज्वराः ॥ म० भा० १२-२९६-३१॥

जो द्विज तीनों अग्नियोंकों त्याग कर संन्यास करके जगत से उदासीन होते हैं, वे सब जगत्के शोकसे रहित होते हैं ॥

मौला ॥ म० भा० १२-८३-२०॥

पितामह के समयसे भृत्यवृत्ति होवे सो ही मौला है। इस पदमें मुसलमान् का अल्ला नहीं है तैसे ही उदासोन पदमें वैदिक विधि रहित श्रीचन्द्र खत्रीके चलाये उदासी पन्थका वर्णन नहीं है ॥

संन्यसेत्सर्वकर्माणि वेदमेकं न संन्य-
सेत् ॥ वेदसंन्यासतः शूद्रस्तस्माद्वेदं न संन्य-
सेत् ॥ एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परंतपः॥
उपवासात्परं भैक्षं दया दानाद्विशिष्यते ॥
वसिष्ठ स्मृति १०-४-५ ॥

संन्यासी सब कर्मोंका त्याग करे, वेद त्यागनेसे शूद्र होता है, इसलिये वेदका कभी त्याग नहीं करे। उत्तम वेद सार एकाक्षर प्रणवका जप करे, और प्राणायम ही तप है। भूँके मर-नेसे भिक्षा माँगकर खाना उत्तम है, दानसे दया उत्तम है॥

ब्रह्माश्रमपदे वसेत् ॥
म० भा० १२-३२६-१९ ॥

मोक्षके लिये ब्रह्मविचाररूप संन्यास आश्रममें वास करे॥

चतुर्थोपनिषद्धर्मः अपवर्गमिति नित्यो यतिधर्मः सनातनः ॥

म० भा० १२–२७०–३०–३१ ॥

चतुर्थ उपनिषद् धर्म है, यह संन्यासीका मोक्षरूप नित्य धर्म अनादि है। उपनिषद् आरण्यक ग्रन्थोंसे निकले हैं—ज्ञान-काण्डरूप आरण्यकका पठनपाठन करे॥

प्रणवं चाप्यधीयीत....यतिः स्यात्सम-दर्शनः ॥

म० भा० १३–३६–१४ ॥

आरण्यक रूप वेद पठन करे और संन्यासी बने तब आरण्यक वेद भागका अध्ययन करे और प्रणवका जप करे॥

ब्रह्मयज्ञेस्थितो मुनिः ॥

म० भा० १२–१७५–३३ ॥

संन्यासी प्रणवरूप जपयज्ञमें नित्य स्थित रहे॥

न देवताप्रसादग्रहणं ॥ न बाह्यदेवाभ्य-र्चनं कूर्यात् ॥

स० उ० ६० ॥

देवताओंका प्रसाद न खाय और वैदिक देवताओंसे भिन्न मरे हुए महान् मनुष्योंको मन्दिरस्थित मूर्त्तियोंको प्रणाम तथा पूजा भी न करे॥

अथ नित्यं गृहस्थेषु शालीनेषु चरेद्यतिः ॥ श्रद्दधानेषु श्रोत्रियेषु महात्मसु ॥ अत ऊर्ध्वं पुनश्चापि अदुष्टा पतितेषु च भैक्ष्यचर्य्या विवर्णेषु जघन्या वृत्तिरिष्यते ॥

मार्कण्डेय पु० ४१-९-१० ॥

कुटुम्बयुक्त सुशील, उत्तम, श्रद्धालु, और परस्त्रीगमनरहित वेदज्ञाता, पंचयज्ञ करने वाला परमात्मापरायण ऐसे गृहस्थकी संन्यासीने नित्य भिक्षा लेना। इनके सिवाय जो गृहस्थ दुष्ट और पतित न होवे नित्य गायत्रीजापी वैश्वदेव करनेवाला होवे उसकी भी भिक्षा लेना और इन कर्मोंसे रहितकी भिक्षा नीच वृत्तिवाली है, इसलिये व्रात्योंकी भिक्षा न करे।

हुत्वा प्राणाहुतिः पंचग्रासा नष्टौ समाहितः ॥ आचम्य देवं ब्रह्माणं ध्यायीत परमेश्वरं ॥

कूर्म पु० उ० २९-८ ॥

संन्यासीने प्राणादि मंत्र बोलके पाँच आहुति अपने मुखमें लेवे—फिर व्याघ्रके पगके समान ग्रासोंको शनै २ अनेक भाग करके भोजन करे, फिर आचमन करके परमेश्वर देव ब्रह्माका ध्यान करे॥

सप्तर्षीणां तु यत्स्थानं स्मृतं तद्वै वनौकसां ॥ प्राजापत्यं गृहस्थानां न्यासिनां ब्रह्मणः क्षयम् ॥ ब्रह्माण्ड पु० ७-१८१ ॥

वनवासी वानप्रस्थोंका लोक सप्तऋषियोंका स्थान है, अग्निहोत्री आदि शुभ कर्म करनेवाले गृहस्थोंका प्राप्तिस्थान प्रजापति लोक है, संन्यासियोंका प्राप्तिस्थान ब्रह्माका लोक है ॥

आत्मन्येवात्मनाजात आत्मनिष्ठो प्रजोपिवा ॥ आत्मन्येव भविष्यामि न मां तारयति प्रजा ॥ म० भा० १२-१७५-३६ ॥

ज्ञानीं बालकने पिताको कहा, हे पिता मैं ब्रह्ममें हूँ, ब्रह्मसे उत्पन्न हुआ हूँ मैं पुत्रादि प्रजारहित ब्रह्ममें मग्न हूँ, प्रजा मेरेको नहीं तारेगी, मैं ब्रह्ममें अभेद रूपसे लय हो जाऊँगा, सर्वदाके लिये ॥

एवं त्वं स एवाहं योऽहं स तु भवानपिं ॥ अहं भवांश्च भूतानि सर्वें यत्र गताः सदा ॥

म० भा० ३३४-८ ॥

उपासकने सूर्यस्थ पुरुषसे कहा, जो तुम हो सो ही मैं हूँ, सो ही आप सूर्य मण्डल व्यापी रुद्र हो, सो ही मैं उपासक हूँ, आप प्राणियोंको धारण करते हो, तथा जिस चराचरमें निरंतर

व्यापक हो, और जो प्राणि आपका अभेद रूपसे ध्यान करता है, सो ही आपमें लीन हो जाता है॥

कुलेषु पापरक्षांसि जायन्ते वर्णसंकारत्॥
अपुमांसोऽङ्गहीनाश्च स्थूलजिह्वा विचेतसः॥
म० भा० १२-९०-३३॥

जब वैदिक धर्मका पालक राजा नहीं होता है तब, उत्तम कुलोंमें वर्णसंकरतासे सर्वभक्षी राक्षस स्वधर्ममें नपुंसक अङ्गहीन वेदभाषासे रहित बुद्धिहीन बालक उत्पन्न होते हैं॥

कृतकृत्याः पुनर्वर्णा यदि वृत्तं न विद्यते॥
संकरस्त्वत्र नागेन्द्र बलवान्प्रसमीक्षितः॥
म० भा० ३-१८०-३६॥

युद्धिष्ठिरने कहा, हे नागेन्द्र, सब द्विजाति वर्णोंका वेद-विधिसे उपनयनादि संस्कार होने पर भी उनमें संध्या आदि सदाचारत्याग, और लशुन, पलाण्डु दारु आदि अभक्ष भक्ष-रूप अनाचार देखनेमें आवे तो उनमें वर्णसंकरताका बल अधिक है, ऐसा जान॥

सर्वमेव कलौ शास्त्रं यस्य यद्वचनं द्विज॥
देवता च कलौ सर्वा सर्वः सर्वस्यचाश्रमः॥
विष्णु पु० ६-१-१४॥

हे द्विज कलिमें जो जिस मनुष्यका वचन है सो ही वेदों के परे उसका सब शास्त्र है, और कलियुगमें जो जिसको माने सो ही सब देवता है, सबके मनमाने ही सब आश्रम हैं ॥

धर्मो वै ग्रसतेऽधर्मं यदाकृतमभूद्युगं ॥
अधर्मो ग्रसते धर्मं तदा तिष्यः प्रवर्त्तते ॥

वा० रा० ६-३५-१४ ॥

माल्यवानने कहा, हे रावण, जब सतयुग होता है तब धर्म अधर्मको खा जाता है, और जब कलियुग होता है, तब अधर्म धर्मको खा जाता है ॥

न व्रतानि चरिष्यन्ति ब्राह्मणा वेद-निन्दकाः ॥ न यक्ष्यंति न होष्यंति हेतुवाद-विमोहिताः ॥ विपरीतश्च लोकोऽयं भवि-ष्यत्यधरोत्तरः ॥ एड्रूकान्पूजयिष्यन्ति वर्जयि-ष्यन्ति देवताः ॥ म० भा० ३-१९०-२६-६५ ॥

ब्राह्मण कलिमें वेदकी निन्दा करेंगे, तथा प्रजापत्यादिव्रत नहीं करेंगे, सोमयज्ञादि नहीं करेंगे दूसरेको भी नहीं करायेंगे, पंचयज्ञ भी नहीं करेंगे, परन्तु नवीन युक्तियोंके ऊपर मोहित होकर नीच कर्मोंको करनेकी इच्छा करेंगे। इस प्रकार सब वर्णाश्रमके मनुष्य उत्तमसे नीच और नीच वर्ण

नीचसे ऊँचे होयँगे । सब लोग (एडूकान्) प्रसिद्ध मनुष्योंकी समाधि, हड्डि, पाषाणकी मूर्त्ति बनाकर मन्दिरोंमें पूजँगे—तथा वैदिक ब्रह्मा, अग्नि, वायु, सूर्य, इन्द्रादि देवताओंको नहीं पूजेंगे ॥

इति श्री गुर्जरदेशान्तर्गत राजपीपला संस्थान निवास स्वामी शंकरा-नंदगिरिकृतायां स्मृत्यांदिसिद्धांत परिशिष्टं भाषाटीकायां समाप्तम् ॥

॥ मठको व्यवस्था ॥

॥ ॐ ब्रह्मणे नमः ॥

राजपीपला नगरके मध्यमें जो मठ है, उस मठसे राजा और प्रजाका कुछ भी सम्बंध नहीं है, यह मठ संन्यासियोंका स्वतंत्र है। जो इस मठका अध्यक्ष बनता है, वह यति, अपने २ सेवकोंसे द्रव्य लाकर, मठका जीर्णोद्धार, और अपने भोजनका कार्य व्यवहार चलाता है। मैंने भी मठके जीर्णोद्धार और नवीन कोटडियोंके बनानेमें, तीन हजार रुपये व्यय किये हैं। और चार हजार तीनसौकी मैंने पुस्तकें संग्रह की हैं, तथा बरतन आदि परचूरण सामग्री आठसौ रुपयेकी है। मेरी स्थितिमें जो कोई वेद प्रचारक संन्यासी मिले तो, उसको सब सौंप देऊँ। अथवा मैं जिस कीसीको बैठाल जाऊँ, वही पुस्तक आदि सब सामानका अधिकारी है। यदि कोई न मिला तो, जिल्ला अकोला, मु. पो. रूपराव, हिबरखेड निवासी, नारायण शर्मा

कृपाराम, सबकी स्वतंत्र रूपसे व्यवस्था करेगा, उसके पास मेरा लिखा व्यवस्थापत्र भी रहेगा। यदि वह स्वीकर न करे तो, एक पत्र मेरा मठमें रहेगा और उसकी तीन प्रतियें, निम्न लिखित गृहस्थोंके पास रहेंगी। जानी जमीयतराम नवलराम, जानी चीमनलाल नवलराम, पंड्या त्र्यम्बकलाल नर्मदाशंकर, मलाविया चन्दुलाल जयकिशन। ये सब मेरे देहान्तके पीछे, मठके सहित शंकरानन्द पुस्तकालयकी सुव्यवस्था करें। कोई भी पुस्तक मठमें वांचे, मठके वाहर ले जानेका अधिकार नहीं॥
वि. सं. १९९४ कार्त्तिक शु. १ गुरुवार

(सही) स्वामी शंकरानन्द स्वयंलिखितम्
त्र्यंबकलाल नर्मदाशंकर पंड्या साख. द. स्वयं.

मुद्रक : हरीलाल मगनलाल भट्ट, श्री 'भारती' मुद्रणालय;
खाडीया, गोलवाड—अमदावाद ।